एम.ए. पूर्वार्द्ध

समाजशास्त्र, चतुर्थ प्रश्नपत्र

अपराधशास्त्र एवं दंडशास्त्र

(CRIMINOLOGY AND PENOLOGY)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (M.P.)

2. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt. Shyama Prasad Mukharjee Science & Commerce
   College, Bhopal (MP)

3. Dr Archana Chauhan
   Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College,
   Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr. Anjali Singh
   Director, Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (MP)

4. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal (M.P.)

5. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt. Shyama Prasad Mukharjee Science &
   Commerce College, Bhopal (MP)

6. Dr Archana Chauhan
   Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College,
   Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Amitabh Chaudhary, Former Faculty**,** Mahalaxmi Group Of Institutions Road, Meerut
Untis (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

अपराधशास्त्र एवं दंडशास्त्र

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण विधिक दृष्टिकोण व्यवहारिक दृष्टिकोण सामाजिक दृष्टिकोण विचलन, अपराध और अपचारिता का अर्थ अपराध के प्रकार आर्थिक हिंसक सफेदपोश अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य शास्त्रीय (प्रतिष्ठित) परिप्रेक्ष्य प्रत्यक्षवादी परिप्रेक्ष्य मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य भौगोलिक परिप्रेक्ष्य अपराध की वर्तमान अनुमानित वृद्धि आपराधिक व्यक्तित्व लेबलिंग सिद्धांत	**इकाई 1** : अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण एवं अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य **(पृष्ठ 3–80)**
इकाई–2 संगठित अपराध महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध अपराध महिलाओं के विरुद्ध अपराध बच्चों के विरुद्ध अपराध साइबर अपराध भ्रष्टाचार समकालीन भारत में अपराधियों की बदलती सामाजिक– आर्थिक प्रोफाइल दंड के सिद्धांत प्रतिशोधात्मक सिद्धांत निवारक सिद्धांत सुधारात्मक सिद्धांत दण्ड की निरर्थकता और लागत	**इकाई 2** : अपराध और अपराधियों की चेनिंग प्रोफाइल एवं दंड के सिद्धांत **(पृष्ठ 81–121)**
इकाई–3 सुधार और उसके रूप सुधार का अर्थ और महत्व सुधार के रूप जेलों में सुधार कार्यक्रम भारत में जेल सुधारों का इतिहास जेलों पर राष्ट्रीय नीति	**इकाई 3** : सुधार और उसके रूप एवं जेलों में सुधार कार्यक्रम **(पृष्ठ 123–152)**

कैदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण
जेल उद्योग का आधुनिकीकरण
निजी क्षेत्र की भागीदारी
सुधारात्मक कार्यक्रम

इकाई–4

प्राचीन जेल मैनुअल और जेल अधिनियम
भारतीय समितियां और अधिनियम
बाद के घटनाक्रम
कारागार में कैदियों की भीड़ की समस्या
हिरासत की मानसिकता
जेल अभिरक्षा में बंदियों को यातनाएं
पुलिस, अभियोजन, न्यायपालिका और जेल के बीच अंतर–एजेंसी समन्वय की कमी
मानवाधिकार और जेल प्रबंधन
मानवाधिकार के मुद्दे एवं दायित्व
जेल अधिकारियों की भूमिका
सुधार की बाधाएं और संभावनाएं

इकाई 4 : सुधारात्मक प्रशासन की समस्याएं **(पृष्ठ 153–180)**

इकाई–5

परिवीक्षा
परिवीक्षा क्रियान्वयन
परिवीक्षा का उद्देश्य
अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958
परिवीक्षा प्रक्रिया
पैरोल (कारावकाश)
खुली जेल
पश्च देखभाल और पुनर्स्थापन
पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण
धारा 357 A अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकर योजना
अपराध पीड़ितों को प्रतिकरात्मक अनुतोष

इकाई 5 : कारावास के विकल्प एवं पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण **(पृष्ठ 181–200)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण एवं अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य 3–80

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण
  1.2.1 विधिक दृष्टिकोण
  1.2.2 व्यवहारिक दृष्टिकोण
  1.2.3 सामाजिक दृष्टिकोण
  1.2.4 विचलन, अपराध और अपचारिता का अर्थ
1.3. अपराध के प्रकार
  1.3.1 आर्थिक
  1.3.2 हिंसक
  1.3.3 सफेदपोश
1.4 अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य
  1.4.1 शास्त्रीय (प्रतिष्ठित) परिप्रेक्ष्य
  1.4.2 प्रत्यक्षवादी परिप्रेक्ष्य
  1.4.3 मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य
  1.4.4 समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य
  1.4.5 मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य
  1.4.6 भौगोलिक परिप्रेक्ष्य
1.5 अपराध की वर्तमान अनुमानित वृद्धि
  1.5.1 आपराधिक व्यक्तित्व
  1.5.2 लेबलिंग सिद्धांत
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 अपराध और अपराधियों की चेनिंग प्रोफाइल एवं दंड के सिद्धांत 81–121

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 संगठित अपराध
2.3 महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध अपराध
  2.3.1 महिलाओं के विरुद्ध अपराध
  2.3.2 बच्चों के विरुद्ध अपराध
2.4 साइबर अपराध
2.5 भ्रष्टाचार
2.6 समकालीन भारत में अपराधियों की बदलती सामाजिक– आर्थिक प्रोफाइल
2.7 दंड के सिद्धांत
  2.7.1 प्रतिशोधात्मक सिद्धांत
  2.7.2 निवारक सिद्धांत

2.7.3 सुधारात्मक सिद्धांत
2.7.4 दण्ड की निरर्थकता और लागत
2.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 सुधार और उसके रूप एवं जेलों में सुधार कार्यक्रम 123–152

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 सुधार और उसके रूप
3.2.1 सुधार का अर्थ और महत्व
3.2.2 सुधार के रूप
3.3 जेलों में सुधार कार्यक्रम
3.3.1 भारत में जेल सुधारों का इतिहास
3.3.2 जेलों पर राष्ट्रीय नीति
3.3.3 कैदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण
3.4 जेल उद्योग का आधुनिकीकरण
3.4.1 निजी क्षेत्र की भागीदारी
3.4.2 सुधारात्मक कार्यक्रम
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 सुधारात्मक प्रशासन की समस्याएं 153–180

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 प्राचीन जेल मैनुअल और जेल अधिनियम
4.2.1 भारतीय समितियां और अधिनियम
4.2.2 बाद के घटनाक्रम
4.3 कारागार में कैदियों की भीड़ की समस्या
4.3.1 हिरासत की मानसिकता
4.3.2 जेल अभिरक्षा में बंदियों को यातनाएं
4.4 पुलिस, अभियोजन, न्यायपालिका और जेल के बीच अंतर–एजेंसी समन्वय की कमी
4.5 मानवाधिकार और जेल प्रबंधन
4.5.1 मानवाधिकार के मुद्दे एवं दायित्व
4.5.2 जेल अधिकारियों की भूमिका
4.5.3 सुधार की बाधाएं और संभावनाएं
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 कारावास के विकल्प एवं पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण **181–200**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 परिवीक्षा
5.2.1 परिवीक्षा क्रियान्वयन
5.2.2 परिवीक्षा का उद्देश्य
5.2.3 अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958
5.2.4 परिवीक्षा प्रक्रिया
5.3 पैरोल (कारावकाश)
5.4 खुली जेल
5.5 पश्च देखभाल और पुनर्स्थापन
5.6 पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण
5.6.1 धारा 357 A अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकर योजना
5.6.2 अपराध पीड़ितों को प्रतिकरात्मक अनुतोष
5.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.8 सारांश
5.9 मुख्य शब्दावली
5.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'अपराधशास्त्र एवं दंडशास्त्र' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (पूर्वार्द्ध) के पाठ्यक्रमानुसार किया गया है।

लगातार बदलते सामाजिक परिवेश के चलते अपराधों की संख्या में अनवरत वृद्धि हुई है। ऐसा कोई दिन नहीं जाता जब अपराध की खबर सुनने को न मिलती हो। अपराधों की इसी लगातार बढ़ती संख्या ने क्रिमिनोलॉजी जैसी फील्ड में पेशेवरों के लिए कई अवसर उपलब्ध करवाए हैं। क्रिमिनोलॉजी एक ऐसी शाखा है जिसमें अपराध, अपराधी, अपराधिक स्वभाव और अपराधियों के सुधार का अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही क्रिमिनोलॉजी में अपराध के प्रति समाज का रवैया, अपराध के कारण, अपराध के परिणाम, अपराध के प्रकार और अपराध की रोकथाम का भी अध्ययन किया जाता है। अपराध शाश्वत घटना है। आदिकाल में प्रत्येक समाज में किसी न किसी स्वरूप में अपराध विद्यमान रहा है। नवीन औद्योगिक सभ्यता में अपराध का रूप तथा प्रकार भी बदल गया है। प्रतिदिन नए प्रकार के अपराध होने लगे हैं जिनकी सहज कल्पना करना भी कठिन है। अपराध का निर्धारण समय, काल एवं परिस्थिति के अनुसार होता है। इसका वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए समाज वैज्ञानिकों ने जिस विज्ञान का विकास किया उसको अपराधशास्त्र कहा गया है।

पेनालॉजी यानी दंडशास्त्र अपराध का एक खंड है जो आपराधिक गतिविधियों को दबाने के अपने प्रयासों में विभिन्न समाजों के दर्शन और अभ्यास से संबंधित है। यह आपराधिक मामलों के दोषी व्यक्तियों के लिए शासन के माध्यम से उचित उपचार करके जनमत को संतुष्ट करता है। 'द ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में पेनोलॉजी को 'अपराध और जेल प्रबंधन की सजा का अध्ययन' के रूप में परिभाषित किया गया है और इस अर्थ में यह सुधारों के बराबर है। यह दंड के डर के जरिए आपराधिक इरादे के निषेध के माध्यम से अपराध की रोकथाम के लिए तैयार की गई सामाजिक प्रक्रियाओं की प्रभावशीलता से जुड़ा है। पेनालॉजी का अध्ययन कैदियों के इलाज और दोषी अपराधी के बाद के पुनर्वास से संबंधित है। इसमें परिवीक्षा के पहलुओं के साथ–साथ प्रायश्चित विज्ञान भी शामिल है, जो संस्थानों को सुरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध अपराधियों के सुरक्षित निरोध और प्रशिक्षण से संबंधित है।

अपराधशास्त्र एवं दंडशास्त्र के विभिन्न पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए यह पुस्तक तैयार की गई है। इसके अंतर्गत अपराध जगत से संबंधित विभिन्न तथ्यों का समावेश किया गया है। पुस्तक की प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाइयों के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के अंतर्गत विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए बहु–विकल्पीय प्रश्न दिए गए हैं। इकाइयों के अंत में अध्याय का सारांश दिया गया है और मुख्य शब्दावली के अंतर्गत कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं।

लघु–उत्तरीय व दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न भी अभ्यास के लिए दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

टिप्पणी

पहली इकाई में अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण का विधिवत अध्ययन किया गया है तथा अपराध के प्रकारों को बताया गया है। इसके अतिरिक्त अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्यों का विवेचन किया गया है और अपराध की वर्तमान अनुमानित वृद्धि का विश्लेषण किया गया है।

दूसरी इकाई अपराध और अपराधियों की चेनिंग प्रोफाइल तथा दंड के सिद्धांत पर आधारित है। इसके अंतर्गत संगठित अपराध तथा महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध किए जाने वाले अपराधों की व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त साइबर अपराध तथा भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों का भी इसमें अध्ययन किया गया है।

तीसरी इकाई अपराधियों के सुधार एवं जेलों में किए जाने वाले सुधार कार्यक्रमों पर आधारित है। इसके अंतर्गत सुधार का अर्थ, महत्व तथा रूपों की विवेचना की गई है तथा जेल सुधारों का इतिहास बताया गया है और जेलों के आधुनिकीकरण पर प्रकाश डाला गया है।

चौथी इकाई में सुधारात्मक प्रशासन की समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत प्राचीन जेल मैनुअल और जेल अधिनियम, कारागार में कैदियों की भीड़ की समस्या तथा मानवाधिकार एवं जेल प्रबंधन जैसे विषयों का विवेचन किया गया है।

पांचवीं इकाई में कारावास के विकल्पों पर दृष्टिपात किया गया है और परिवीक्षा, पैरोल, खुली जेलों आदि की विवेचना की गई है तथा पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोणों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'अपराधशास्त्र एवं दंडशास्त्र' के विभिन्न पहलुओं का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। पुस्तक के अध्ययन से छात्र संबंधित मुद्दों से भलीभांति अवगत हो सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की विषयगत जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्द्धन करेगी।

इकाई 1 अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण एवं अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण
  1.2.1 विधिक दृष्टिकोण
  1.2.2 व्यावहारिक दृष्टिकोण
  1.2.3 सामाजिक दृष्टिकोण
  1.2.4 विचलन, अपराध और अपचारिता
1.3. अपराध के प्रकार
  1.3.1 आर्थिक
  1.3.2 हिंसक
  1.3.3 सफेदपोश
1.4 अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य
  1.4.1 शास्त्रीय (प्रतिष्ठित) परिप्रेक्ष्य
  1.4.2 प्रत्यक्षवादी परिप्रेक्ष्य
  1.4.3 मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य
  1.4.4 समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य
  1.4.5 मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य
  1.4.6 भौगोलिक परिप्रेक्ष्य
1.5 अपराध की वर्तमान अनुमानित वृद्धि
  1.5.1 आपराधिक व्यक्तित्व
  1.5.2 लेबलिंग सिद्धांत
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

अपराध एक सापेक्ष अवधारणा है और साथ ही साथ एक बदलती हुई अवधारणा भी है। मानव सभ्यता के विभिन्न चरणों में अपराध के प्रति दृष्टिकोण अलग–अलग रहे हैं और एक निश्चित समय में भी वे विभिन्न समाजों में भिन्न रहे हैं। अपराध के प्रति अभिवृत्ति को सदैव समाज और उसके लोगों द्वारा प्रदर्शित भावनाओं के चरम प्रकार से चिह्नित किया गया है। अपराध का गठन संस्कृति से संस्कृति में और समय–समय पर भिन्न होता है।

पारंपरिक दृष्टिकोण अपराध को सार्वजनिक विधि के उल्लंघन के संदर्भ में परिभाषित करता है, जबकि अपराध का आधुनिक दृष्टिकोण विधि के कार्यात्मक पहलू पर बल देता है। अपराध की सैद्धांतिक व्याख्या में अपराध के प्रति व्यक्तिवादी और पर्यावरणवादी दृष्टिकोण सम्मिलित हैं। अभिप्रेत–विद्यात्मक सिद्धांत (Demonological

Theory) के पूर्व–शास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रारंभ करके; सामाजिक–आर्थिक कारकों पर आधारित अत्यंत प्रशंसनीय सिद्धांतों तक अपराध के विभिन्न दृष्टिकोणों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अपराध के सभी कारणों को निर्धारित करना संभव नहीं है जो सामान्य रूप से अपराध के कारण के सभी सवालों के पूर्ण प्रमाणित उत्तर प्रदान करेंगे। विभिन्न प्रकार के अपराधों में विभिन्न प्रकार की उत्तरदायी स्थितियां होती हैं और उन सभी को एक ही दृष्टिकोण से नहीं समझाया जा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में अपराध के विभिन्न वैचारिक दृष्टिकोणों का अध्ययन किया गया है और साथ ही अपराध के स्वरूप एवं कारणों विषयक विभिन्न परिप्रेक्ष्यों का भी विवेचन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अपराध के वैचारिक दृष्टिकोणों को जान पाएंगे;
- अपराध के विभिन्न दृष्टिकोणों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- विचलन, अपराध और अपचारिता की अर्थवत्ता से जुड़ी कड़ी को समझ पाएंगे;
- अपराध के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर पाएंगे;
- अपराध के कारणों संबंधी परिप्रेक्ष्यों की व्याख्या कर पाएंगे;
- अपराध की वर्तमान अनुमानित वृद्धि की विवेचना कर पाएंगे।

1.2 अपराध के वैचारिक दृष्टिकोण

अपराध के प्रति वैचारिक दृष्टिकोण को समझने के लिए अपराध को भी समझना आवश्यक है। एक अपराध, निषिद्ध करने या समादेशित करने वाली किसी विधि की अवज्ञा का कार्य हो सकता है। लेकिन नागरिक विधि की अवज्ञा एक अपराध नहीं हो सकती है, उदाहरण के लिए, नागरिक विधियों या उत्तराधिकार या अनुबंधों की विधियों की अवज्ञा। इसलिए अपराध का अर्थ केवल विधि की अवज्ञा से बहुत अधिक कुछ होगा। "इसका अर्थ एक ऐसा कार्य है जो विधि द्वारा निषिद्ध है और समाज की नैतिक भावनाओं के लिए विद्रोही है" (स्टीफन, जनरल व्यू ऑफ़ क्रिमिनल लॉ ऑफ़ इंग्लैण्ड, पृष्ठ 3)।

डकैती या हत्या अपराध होगा, क्योंकि ये समाज की नैतिक भावनाओं के विरूद्ध हैं। 'समाज की नैतिक भावना' एक लचीला शब्द है क्योंकि यह समय–समय पर जनमत के विकास और समय की सामाजिक आवश्यकताओं के साथ बदलता रहता है। यह एक देश से दूसरे देश में भिन्न भी हो सकता है। व्यभिचार, अनाचार, सती प्रथा, कन्याभ्रूण हत्या, बहुविवाह आदि दुनिया की प्रत्येक विधिक व्यवस्था में अपराध नहीं हैं। इसका अर्थ है कि अपराध की सामग्री समय–समय पर एक ही देश में और एक ही समय में एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है।

बीते हुए कल का सदाचार आने वाले कल में अपराध हो सकता है। आधुनिक समय में ब्लैकस्टोन से लेकर केनी तक के अपराध को परिभाषित करने के सभी प्रयास

निष्फल साबित हुए हैं। रसेल का मानना है कि– "अपराध को परिभाषित करना एक ऐसा कार्य है जिसे अब तक किसी भी लेखक ने संतोषजनक ढंग से पूरा नहीं किया है। वास्तव में, दाण्डिक अपराध मूल रूप से समुदाय के उन वर्गों द्वारा समय–समय पर अपनाई गई आपराधिक नीति का निर्माण है जो अपनी सुरक्षा और आराम की रक्षा करने के लिए इतने (पर्याप्त) शक्तिशाली या चतुर हैं कि आचरण, जो उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति को खतरे में डाल सकता है, का दमन करने के लिए राज्य में संप्रभु शक्ति कारित कर सकते हैं।" (रसेल, अपराध पर, खंड I (11वां संस्करण), पृष्ठ 18)।

1.2.1 विधिक दृष्टिकोण

डॉ. एलन ने कानून को केवल 'एक आदेश से अधिक कुछ' के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने कहा है, "यह जनमत की शक्ति है जो समाज और उसके सदस्यों के लाभ के लिए जहाँ तक संभव हो, बेहतर नैतिकता को लागू करने का प्रयास करती है"।

मैरेट कानून को सामाजिक संबंधों के आधिकारिक विनियमन के रूप में देखते हैं। कानून एक सापेक्ष शब्द है और प्रकृति में व्यापक है। दूसरे शब्दों में, यह एक भिन्न अवधारणा है जो समाज से समाज में और समय–समय पर बदलती रहती है। इस तर्क के समर्थन में विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, वैधता और निषेध, गर्भपात पर कानून, आदि के हिंदू और मुस्लिम व्यक्तिगत कानूनों के बीच अंतर का हवाला दिया जा सकता है। इस प्रकार, किसी स्थान के आपराधिक कानून को राज्य द्वारा प्रख्यापित मानव आचरण को विनियमित करने वाले विशेष नियमों के निकाय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है और यह समान रूप से उन सभी वर्गों पर लागू होता है जिन्हें यह संदर्भित करता है। हालाँकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कानून केवल एक अंत का साधन है और इसे अपने आप में एक अंत के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। इसका अंतिम उद्देश्य समुदाय की अधिकतम भलाई को सुरक्षित करना है।

प्रभावी होने के लिए, आपराधिक कानून में चार महत्वपूर्ण तत्व होने चाहिए, (1) राजनीतिकता, (2) विशिष्टता (3) एकरूपता, और (4) दंडात्मक मंजूरी।

केवल राज्य द्वारा बनाए गए नियमों का उल्लंघन ही अपराध माना जाता है। आपराधिक कानून की विशिष्टता यह दर्शाती है कि यह अधिनियम को अपराध के रूप में सख्ती से परिभाषित करता है। आपराधिक कानून के प्रावधानों को विशिष्ट शब्दों में बताया जाना चाहिए। आपराधिक कानून की एकरूपता बिना किसी भेदभाव के पूरे देश में समान रूप से लागू होने का सुझाव देती है। इस प्रकार सभी को समान रूप से न्याय प्रदान करती है। इसका उद्देश्य आपराधिक कानून के प्रशासन में न्यायिक विवेक को खत्म करना है। हालाँकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि हाल के विधान अपराधी के सुधार को प्राप्त करने के लिए न्यायिक इक्विटी के माध्यम से अधिक से अधिक न्यायिक विवेक की गुंजाइश प्रदान कर रहे हैं जो कि आपराधिक न्याय का अंतिम लक्ष्य है। अंत में, यह आपराधिक कानून के तहत लगाए गए दंडात्मक प्रतिबंधों के माध्यम से व्यक्त होता है, जिससे समाज के सदस्यों को अपराध करने से रोका जाता है। कोई भी कानून संभवतः पर्याप्त दंडात्मक प्रतिबंधों के बिना प्रभावी नहीं हो सकता।

प्राचीन भारत में आपराधिक कानून की धारणा

प्राचीन भारत के आदिम समाज में न्याय का प्रशासन अपने विभिन्न संघों जैसे कुला, सेरेनी, गिल्ड आदि के माध्यम से आम लोगों के बीच था। राजा उस समय न्याय के

टिप्पणी

प्रशासन में शामिल नहीं थे। धर्म सूत्र में पहली बार यह उल्लेख किया गया था कि न्याय का प्रशासन राजा के प्राथमिक कार्यों में से एक था।'

मनु की व्यापक संहिता में न केवल कानून से संबंधित अध्यादेश शामिल हैं, बल्कि इसमें प्रचलित धार्मिक उपदेशों, कानूनी दर्शन, रीति–रिवाजों, प्रथाओं आदि का पूर्ण संकलन भी है। उन्होंने अपने आपराधिक कानून में झूठे सबूत, बदनामी, व्यभिचार, हत्या, मानहानि, जुआ, हमले, चोरी, डकैती, विश्वास के उल्लंघन को मान्यता दी है। ये व्यक्तियों और संपत्ति के खिलाफ प्रमुख अपराध थे जिन्हें प्राचीन भारतीय आपराधिक कानून के तहत मान्यता दी गई थी। अपराध की गंभीरता और सजा, हालांकि, अपराधी की जाति और पंथ के अनुसार अलग–अलग थी। दंड के मामले में ब्राह्मणों के साथ असाधारण उदारता का व्यवहार किया जाता था।

भारत का प्राचीन आपराधिक कानून सार्वजनिक और निजी गलतियों के बीच अंतर को नहीं पहचानता था। हत्या और हत्याओं को निजी तौर पर गलत माना जाता था। गलती करने वाले के लिए छूट के प्रावधान मौजूद थे : जहां अधिनियम आत्मरक्षा में किया गया था, बिना इरादे के या गलती से या सहमति से। यह एक दुर्घटना का परिणाम था जो अब सामान्य अपवाद के रूप में भारतीय दंड संहिता में शामिल है।

आपराधिक कानून, जैसा कि मनु की संहिता में पाया गया, भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना तक प्रचलित था। आपराधिक न्याय का प्रशासन मुस्लिम शासकों के अधीन काजियों को सौंपा गया था। यह प्रतिशोध, धन, हद या निश्चित सजा, और ताज़ीर या सियासा आदि के रूप में दंड प्रदान करता था जिसका अर्थ अनुकरणीय दंड था। हालाँकि, काज़ियों की धारणाएँ अपराधियों की शक्ति के अनुसार भिन्न थीं, इसलिए कानून में एकरूपता का अभाव था। सामान्य तौर पर, भारत में मुस्लिम शासन के दौरान आपराधिक न्याय प्रशासन को कई अंतर्निहित दोषों का सामना करना पड़ा।

भारत में ब्रिटिश शासन के बाद, दंड कानूनों की एक समान संहिता को लागू करने के प्रयास किए गए। परिणामस्वरूप भारतीय दंड संहिता, 1860 को पारित किया गया, जो 1 जनवरी, 1862 को लागू हुई। आपराधिक कानून पर पहले के सभी नियमों और विनियमों को बदल दिया गया। यह आज भी देश का कानून है।

आधुनिक आपराधिक कानून की मूल बातें

आपराधिक कानून के मूल सिद्धांत समानता, न्याय और निष्पक्षता के नियमों पर आधारित हैं। ये नियम एक तर्कसंगत दंडात्मक नीति के निर्माण के लिए पर्याप्त दिशा–निर्देश प्रदान करते हैं और साथ ही वादियों को न्याय का समान वितरण सुनिश्चित करते हैं।

आपराधिक कानून प्रशासन को नियंत्रित करने वाले मूलभूत सिद्धांतों को संक्षेप में निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) अपराध बनने के लिए किसी 'कार्य' को आपराधिक इरादे से किया जाना चाहिए जिसे कानूनी तौर पर मेन्स री कहा जाता है। यह सिद्धांत लैटिन मैक्सिम में निहित है, 'एक्ट्स नॉन फैसिट रेम निसी मेन्स सिट री'। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि आपराधिक इरादे में कुछ कार्य स्वेच्छा से इस ज्ञान के साथ करना शामिल है कि यह कपटपूर्ण, बेईमान या दूसरे के लिए हानिकारक है। इस

टिप्पणी

प्रकार, कोई भी कार्य अपराध नहीं होगा, बिना सोच या कर्ता के दोषी–मन के। हत्या, महिला के साथ उसकी सहमति के बिना जबरन संबंध, चोरी करने के इरादे से चोरी आदि को अपराध माना जाता है।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि न्यायिक अवधारणा 'एक्ट्स रीस' अपराध के भौतिक पहलू का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि इन्स री, इसका मानसिक पहलू है। मेन्स री की अवधारणा में मन की कई अन्य अवस्थाएँ शामिल हैं, जैसे, इच्छा, इरादा, मकसद आदि। इस प्रकार यह मानसिक दृष्टिकोण और स्थितियों की एक विस्तृत श्रृंखला को शामिल करता है, जिसके अस्तित्व से एक्ट्स रीस को उद्भव मिलता है। कभी–कभी मेन्स री एक अधिनियम के परिणामों की दूरदर्शिता को संदर्भित करता है और अन्य में इसके परिणामों की परवाह किए बिना स्वयं अधिनियम में शामिल होता है।

(2) आपराधिक कानून का एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांत मैक्सिम इग्नोरेंटिया फैसिट एक्ससैट, इग्नोरेंटिया ज्यूरिस नॉन एक्सुसैट 'में सन्निहित है। यह सुझाव देता है कि अपराध के कानून में तथ्य की गलती एक अच्छा बचाव है लेकिन कानून की गलती नहीं है।

(3) अपराधों का कानून वास्तविक कानून की अनुमति नहीं देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वे सभी कार्य जो दंड की ओर ले जा सकते हैं, उन्हें विधिवत अधिसूचित किया जाएगा और किसी को भी ऐसे कार्य के लिए दंडित नहीं किया जाएगा।

(4) आपराधिक कानून का एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि हर किसी को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि उसका अपराध कानून के प्रावधानों के भीतर विशेष रूप से साबित न हो जाए। इसका उद्देश्य अभियुक्त को अपना बचाव करने का हर संभव अवसर देना है।

(5) आपराधिक कानून के तहत एक साथी को मुख्य आरोपी के समान ही माना जाता है और उसे समान रूप से दंडित किया जाता है।

(6) अभियुक्त व्यक्ति को न केवल मुकदमे के दौरान बल्कि मुकदमे से पहले और बाद में भी कुछ अधिकार और सुरक्षा प्रदान की जाती है। इन अधिकारों और सुरक्षा का उद्देश्य एक अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई प्रदान करना और न्यायिक प्रक्रिया के संभावित दुरुपयोग को समाप्त करना है जिसके परिणामस्वरूप न्याय का सूत्रपात होता है। इन अधिकारों में मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश होने का अधिकार, जमानत का अधिकार, 'बंधपत्र पर रिहाई', 'वकील का अधिकार और कानूनी सहायता' आदि शामिल हैं।

मुकदमे के दौरान एक आरोपी को दिए गए सुरक्षा उपाय आत्म–दोष और दोहरे खतरे से सुरक्षा हैं।' पूर्व का सुझाव है कि किसी भी अपराध के आरोपी व्यक्ति को अपने खिलाफ गवाह बनने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दो बार दंडित नहीं किया जाएगा। यह विचार प्रसिद्ध लैटिन मैक्सिम निमो डिबेट बिस वेक्सारी सी कॉन्स्टैट क्यूरी क्वॉड सिट प्रो उना एट ईडेम कॉसा में व्यक्त किया गया है।

टिप्पणी

प्रो. फ्रायड के शब्दों में कहें तो कानून वास्तव में सामाजिक नियंत्रण की एजेंसियों में से एक है, जिसका कुशल प्रवर्तन पूरी तरह से पुलिस, अभियोजकों, अदालतों, न्यायाधीशों, जूरी, परिवीक्षा अधिकारियों आदि जैसे संस्थानों के साथ है। यही कारण है कि आपराधिक कानून की प्रभावशीलता का सही आकलन नहीं किया जा सकता है।

1.2.2 व्यावहारिक दृष्टिकोण

प्रो. एच. सदरलैंड ने प्रतिपादित किया है कि कोई एक सिद्धांत अपराध के कारण के लिए संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे सकता है। अपराध के कारण संबंधी एकल सिद्धांत के अभाव में, अपराधी व्यवहार की व्याख्या हेतु अपराधशास्त्रियों ने अपने स्वयं के सिद्धांत को सही ठहराने के लिए विभिन्न स्पष्टीकरणों की पेशकश की है। अधिकांश क्रिमिनोलॉजिस्टों ने आपराधिक व्यवहार के लिए एक बहु–दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी है जो बताता है कि अपराध एक अकेले कारक के परिणामस्वरूप नहीं, बल्कि विभिन्न कारकों के संयोजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है।

क्लॉसिकल स्कूल के प्रतिपादकों ने अपराध को स्वतंत्र इच्छा के रूप में समझाया और 'अपराधी' के बजाय 'अपराध' के समापन पर अधिक बल दिया। दूसरी ओर, नव–वर्गवादियों ने अपराधी के मानसिक भ्रष्टता के लिए आपराधिकता को जिम्मेदार ठहराया जो उसे सही या गलत आचरण के बीच अंतर करने में अक्षम करता है। प्रत्यक्षवादियों द्वारा समर्थित एक और दृष्टिकोण है जो अपराधी के व्यक्तित्व और उन प्रक्रियाओं पर अधिक बल देता है जो उसे आपराधिक व्यवहार करने में संचालित करती हैं।

सामाजिक व्यवहार के एक भाग के रूप में अपराध

आपराधिकता अनिवार्य रूप से सामाजिक व्यवहार का एक हिस्सा है जो समाज में व्यक्तियों के संबंधों से उत्पन्न होता है। व्यक्ति का जीवन अनुभव, उसकी विभिन्न संगतियाँ, पर्यावरण और विधिक प्रावधान, सभी मिलकर उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसलिए, डोनाल्ड टैफ्ट ने ठीक ही देखा कि लोग सामाजिक संरचना और मूल्यों और उससे प्राप्त संस्थापनों पर प्रतिक्रिया करते हैं। इस प्रकार, व्यवहार चाहे आपराधिक हो या गैर–आपराधिक, उसको संस्कृति और पर्यावरण के संयुक्त प्रभाव के रूप में माना जा सकता है।

आपराधिक व्यवहार का अस्थायी सिद्धांत आपराधिकता पर सामाजिक संस्कृति और मूल्यों के प्रभाव का मूल्यांकन करना चाहता है। इतिहास से प्रकट होता है कि हर समाज में कुछ सामाजिक मूल्यों की बहुत सराहना की जाती है जबकि कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें निंदित या अस्वीकृत किया जाता है। दूसरे शब्दों में, जिन मूल्यों को पोषित किया जाता है, वे समुदाय के सदस्यों को संतुष्टि प्रदान करते हैं, जबकि जो अस्वीकृत होते हैं, उनमें असंतोष होता है। समाज, अपने विधि प्रवर्तन एजेंसियों के माध्यम से स्वीकृत पैटर्न को प्रोत्साहित करने और अस्वीकृत व्यवहारों को हतोत्साहित करने का प्रयास करता है। इन विधिक प्रतिबंधों का आधार समाज के रीति–रिवाजों, धार्मिक उपदेशों, जनमत, रूढ़ियों और परंपराओं में निहित है।' इस प्रकार, स्वीकृत सामाजिक मानदंड जिन्हें अन्यथा वैध आचरण कहा जाता है और अस्वीकृत मानदंड जो किसी दिए गए समाज में गैरविधिक आचरण हैं, इसकी विधिक प्रणाली में परिलक्षित होते हैं। इसलिए, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी विशेष समाज में लागू विधि एक समुदाय के सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करने वाले दर्पण के

रूप में कार्य करती हैं। डोनाल्ड टैफ्ट के अनुसार, "अपराध विज्ञान, सही अर्थों में, केवल उन कृत्यों से संबंधित है जिन्हें आपराधिक विधि के तहत दंडनीय बनाया गया है"। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि विधि केवल निषिद्ध आचरण को परिभाषित करती हैं जो दंडनीय हैं, और जो विशेष रूप से दंडनीय नहीं है, वैध व्यवहार के रूप में अनुमेय होगा। संस्कृति और सामाजिक मूल्य समय और स्थान के अनुसार भिन्न होते हैं। विधि एक परिवर्तनशील अंतर्वस्तु है जो विभिन्न समाजों में उनके स्वीकृत मानदंडों के आधार पर बदलती है।

इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं है कि आपराधिकता वर्तमान विधि और उसके प्रतिबंधों से अत्यधिक प्रभावित है। तथापि, कुछ ऐसे मूल्य हैं, जो अपनी गैर विधिक प्रकृति के होते हुए भी समाज में सम्मान का आदेश देते हैं। भारत में जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है, 'फिर भी स्पष्ट रूप से समाज इसे पूरी तरह से दूर करने के लिए अनिच्छुक है। यह सामान्य ज्ञान है कि भारत में चुनाव जाति के आधार पर लड़े, जीते और हारे जाते हैं। इसी तरह यद्यपि बेटियों को हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के तहत बेटों के साथ समान हिस्से का अधिकार प्राप्त है, फिर भी यह अभी संदिग्ध है कि कितनी महिलाएं हैं, जो वास्तव में अपने भाइयों के साथ संपत्ति में समान हिस्सेदारी के अपने दावे प्रस्तुत करती हैं। इस उदासीनता का स्पष्ट कारण यह है कि हिंदू समाज में अनादि काल से स्वीकृत और जारी मूल्यों को मुट्ठी भर विधायी उपायों से तब तक नहीं हटाया जा सकता जब तक कि समाज के सदस्य स्वेच्छा से उन्हें पूरे दिल से स्वीकार करने के लिए तैयार न हों। भारत में स्वतंत्रता के बाद के युग ने विशेष रूप से राजनीतिक धरातल पर नई स्थितियों का निर्माण किया है। आज लोक कल्याण व्यक्तिगत लाभ के लिए बलिदान किया जाता है। राजनीतिक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा किसी न किसी बहाने से किए जाने पर सामान्य नागरिक के लिए जो अन्यथा दंडनीय होगा, वह क्षम्य है। राजनेताओं व अभिनेताओं द्वारा आयकर चोरी और भ्रष्ट प्रथाओं, घोटालों आदि में उनकी संलिप्तता, अंडरवर्ल्ड अपराधियों के साथ संबंध भ्रष्ट माहौल को पर्याप्त रूप से दर्शाता है। चहेतों पर एहसान हेतु राजनीतिक सत्ता का दुरुपयोग राजनेताओं में आम हो गया है। ऐसा लगता है कि राजनेताओं ने भारत में ब्रिटिश शासन की पिछली परंपराओं से इन लक्षणों को आत्मसात कर लिया था, जब प्रशासक अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकार और शक्ति का उपयोग कर सकते थे। इस प्रकार अतीत की भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति का राजनेताओं और प्रशासकों द्वारा वर्तमान विधि के उल्लंघन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। फर्क सिर्फ इतना है कि आज लोग कम से कम अपनी असंतोष की भावनाओं को आवाज दे सकते हैं जो वे ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान नहीं कर सकते थे।

किसी दिए गए समाज में सामाजिक मूल्य अपराधियों के साथ–साथ गैर–अपराधियों से समान सम्मान प्राप्त करते हैं। लेकिन कभी–कभी, मुट्ठी भर लोगों को ऐसी स्थिति में डाल दिया जाता है कि वे इन स्वीकृत मूल्यों को पूरी तरह से अनदेखा कर देते हैं और निषिद्ध मानदंडों का पालन करते हैं जिन्हें आमतौर पर अपराध कहा जाता है। इस प्रकार, एक व्यक्ति जो आय के किसी भी स्रोत के बिना है, निराशा और घृणा से चोरी या इसी तरह के अपराध करने के लिए मजबूर किया जा सकता है यदि वह आजीविका सुरक्षित करने के अपने वैध प्रयासों में विफल रहता है। हालांकि वह पूरी तरह से जानता है कि वह जो कर रहा है वह निषिद्ध है। विधि द्वारा और समाज के स्वीकृत मानदंडों

के खिलाफ है। इसी तरह, जुआ भले ही अवैध हो और समाज द्वारा अस्वीकृत हो, कई व्यक्तियों द्वारा बिना किसी श्रम के जल्दी से धन प्राप्त करने के उद्देश्य से इसका सहारा लिया जाता है। फिर से, उच्च सामाजिक स्थिति से संबंधित व्यक्ति सफेदपोश अपराधों में लिप्त होते हैं क्योंकि इससे समाज में स्थिति का कोई नुकसान नहीं होता है। इस प्रकार संक्षेप में कहें तो, अपराध समाज में व्यक्तियों के अल्पसंख्यक समूह द्वारा किए गए अपराधी व्यवहार से उत्पन्न होते हैं।

सामाजिक–सांस्कृतिक पैटर्न और आपराधिक व्यवहार

आपराधिक व्यवहार के लिए समाज की सांस्कृतिक संरचना की सामान्य जवाबदेही को निम्न प्रकार से संक्षेपित किया जा सकता है–

1. अमीर और गरीब या उच्च या निम्न जातियों के बीच समाज में व्याप्त सामाजिक–सांस्कृतिक विषमताएं वंचितों को या तो दुख और अपमान से बचने या अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए आपराधिकता का सहारा लेने के लिए मजबूर करती हैं। इस प्रकार, मलिन बस्तियों में विविध अपराध, वेश्यावृत्ति के घर, जुआघर और नशीली दवाओं के कानूनों का उल्लंघन संरचनात्मक मतभेदों के स्वाभाविक परिणाम हैं। संपत्ति से संबंधित अपराध आम तौर पर उन व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं जो बिना अधिक श्रम या काम के पैसा कमाने की तलाश में होते हैं। इसलिए, यह स्पष्ट है कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच असमानता जितनी कम होगी, उस समाज में अपराध की घटनाएं कम होंगी। बीसवीं सदी के भौतिकवाद का प्रभाव मानव समाज पर इतना अधिक है कि दुनिया भर में संपत्ति अपराधों की संख्या में समग्र रूप से वृद्धि हुई है। वंचित वर्ग, जो अपने कड़वे अनुभवों के कारण स्वीकृत सामाजिक मानदंडों की अधिक सराहना नहीं करते हैं, वे खुद को विभिन्न असामाजिक समूहों में संगठित करना पसंद करते हैं और इस तरह खुद को आपराधिकता में डाल देते हैं।

2. समाज के विशेषाधिकार प्राप्त और प्रभावशाली समूहों जैसे राजनेताओं, उद्योगपतियों, वकीलों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, बैंकरों, व्यापारियों आदि द्वारा पैटर्न सेटिंग, कम–विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग से संबंधित व्यक्तियों द्वारा आपराधिक व्यवहार के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह सामान्य ज्ञान है कि भारतीय समाज शीर्ष श्रेणी के व्यवसायियों और उद्योगपतियों की शोषणकारी प्रवृत्तियों के प्रति अत्यधिक सहिष्णु है, जो अक्सर अपने निजी लाभ के लिए सफेदपोश अपराधों और अन्य अवैध तरीकों का सहारा लेते हैं। उच्च सामाजिक स्थिति के व्यक्तियों में रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, कर चोरी, ब्लैकमेलिंग और अटकलें आम हैं। यह सर्वविदित है कि पेशेवर वकीलों के लिए निर्धारित आचार संहिता और उनके अभ्यास के बीच एक बड़ा अंतर है। एक वकील की सफलता और प्रतिष्ठा अत्यधिक हद तक उसके द्वारा जीते गए मामलों की संख्या पर निर्भर करती है। इसके लिए स्पष्ट रूप से मामलों में बहस करने और ग्राहकों के हितों की हर संभव तरीके से रक्षा करने में बहुत कौशल की आवश्यकता होती है। इसमें अक्सर अनैतिक प्रथाओं जैसे कि टालमटोल, सहकर्मियों के साथ अनुचित सौदेबाजी और अन्य अनुचित रणनीति का सहारा लेना शामिल है। समाज के इस प्रतिष्ठित वर्ग द्वारा अपनाए गए इन तरीकों ने अप्रत्यक्ष रूप से समाज की सामान्य धुन के लिए प्रतिमान स्थापित किया। चूंकि अपराधी अक्सर अपने वकील के निकट संपर्क में रहते हैं, इसलिए अपराधी अक्सर बाद वाले के व्यवहार पैटर्न से प्रभावित होते हैं और इस प्रकार अनैतिक प्रथाओं को सीखने की प्रवृत्ति रखते हैं।

3. जहां तक उन राजनेताओं का संबंध है जो खुद को समाज का संरक्षक होने का दावा करते हैं, उनके बारे में कम कहा जाए तो बेहतर है। वे अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने राजनीतिक प्रभाव और उच्च अधिकारियों के साथ संपर्क का उपयोग करने से भी नहीं हिचकिचाते हैं और कभी–कभी नापाक गतिविधियों में शामिल होने के लिए प्रेरित होते हैं जो प्रकृति में आक्रामक और यहां तक कि असामाजिक भी हैं। अक्सर वे अपने निजी फायदे के लिए भ्रष्ट आचरण का सहारा लेते हैं। कभी–कभी वे अपने राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कुख्यात अपराधियों और असामाजिक तत्वों की मदद भी लेते हैं। राजनेता अक्सर अपनी पार्टी के कोड और नैतिकता का उल्लंघन करते हैं, खासकर चुनाव के समय। वे हर तरह की रणनीति और कदाचार में लिप्त हैं जो चुनाव कानूनों के तहत निषिद्ध हैं। जाहिर है, राजनेताओं की ओर से इस तरह के आचरण का उन युवाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जो अपने कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए समान आचरण का पालन करते हैं। कॉलेज या विश्वविद्यालय संघों के किसी भी कार्यालय के लिए चुनाव लड़ने वाले छात्रों के प्रतिद्वंद्वी समूहों के बीच व्याप्त तनाव से यह प्रवृत्ति अच्छी तरह से स्पष्ट होती है। इन चुनावों को लड़ने के लिए हर तरह के अयोग्य तरीके और गलत हथकंडे अपनाए जाते हैं। परिणाम घोषित होने के बाद, आमने–सामने लड़ाई होती है और जीतने वाले उम्मीदवार को पराजित समूह द्वारा धमकियों और हमले का शिकार होना पड़ता है। यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि छात्रों द्वारा इन युक्तियों का पालन किया जाता है क्योंकि वे देखते हैं कि राजनेता भी आम चुनावों के समय इसी तरह की रणनीति का सहारा लेते हैं। इसके अलावा, यह सर्वविदित है कि राजनीतिक नेता स्वयं शैक्षिक संस्थानों में पार्टी के आधार पर चुनाव लड़ने के लिए छात्रों को संरक्षण दे रहे हैं।

भारत के पूर्व प्रधान मंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव के ऐतिहासिक मामले का उल्लेख करना उचित होगा, 'यह दिखाने के लिए कि कैसे राजनेता कानून का उल्लंघन करके अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए अपनी राजनीतिक स्थिति और शक्ति का उपयोग (दुरुपयोग) करते हैं। उन्होंने, अपने साथियों की मदद से, 1993 में हुए 10वीं लोकसभा चुनाव के समय संसद सदस्यों को रिश्वत देकर देश पर शासन करने के लिए सत्ता में बने रहने का अधिकार खरीदने के लिए सफलतापूर्वक कपट–प्रयोग किया। कांग्रेस (आई) पार्टी को साधारण बहुमत के लिए 4 सदस्यों की कमी थी ।

फरवरी 1996 में, सीबीआई में एक शिकायत दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि श्री नरसिम्हा राव ने तीन अन्य लोगों के साथ झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) के चार सांसदों, सूरज मंडल, शिबू सोरेन, साइमन मरांडी और शैलेंद्र महतो का समर्थन हासिल करने के लिए आपराधिक साजिश रची थी। कुछ अन्य लोगों ने उन्हें तीन करोड़ (तीस मिलियन) रुपये से अधिक की रिश्वत दी।

अभिलेखों के आधार पर मनोनीत विशेष न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आरोप तय करने को सही ठहराने और आईपीसी की धारा 120बी सपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 12 या 11 और धारा 13 के तहत उपरोक्त सभी नामित व्यक्तियों के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त सबूत थे।

अभियुक्तों ने अनुच्छेद 105(2) के तहत विशेषाधिकार और उन्मुक्ति का अनुरोध किया क्योंकि उन्होंने आरोप लगाया कि यह कृत्य संसद में मतदान से संबंधित था। विशेष न्यायाधीश ने आरोपी की याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि

कथित आरोप संसद के बाहर रिश्वत देने और लेने के लिए थे और मतदान बिल्कुल भी निर्णय के अधीन नहीं था। विशेष न्यायाधीश के उक्त आदेश के खिलाफ अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, आरोपी ने पांच न्यायाधीशों की सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ का रुख किया।

उच्चतम न्यायालय ने 3:2 के बहुमत से सांसदों को विशेषाधिकार प्रदान करने वाले संविधान के अनुच्छेद 105(2) के तहत आपराधिक अभियोजन के खिलाफ संरक्षण की अनुमति दी और माना कि वे कथित साजिश और रिश्वत देने और लेने के लिए अदालत के प्रति जवाबदेह नहीं हैं। हालांकि, न्यायमूर्ति डॉ. आनंद और न्यायमूर्ति अग्रवाल ने असहमतिपूर्ण निर्णय देते हुए उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को सही ठहराया कि रिश्वत लेने वाले और देने वाले के बीच भेद करने का कोई औचित्य नहीं है। न्यायालय ने देखा कि अनुच्छेद 105 के खंड (2) और (3) सांसद को सदन में संसद की कार्यवाही में भाग लेने के दौरान सदस्य को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए विशेषाधिकार प्रदान करते हैं, लेकिन यह निश्चित रूप से एक सांसद द्वारा रिश्वत या भ्रष्टाचार के मामले तक विस्तारित नहीं होता है।

यह प्रस्तुत किया जाता है कि श्री नरसिम्हा राव के मामले में निर्णय भ्रष्टाचार विरोधी कानून के मूल आधार को रद्द कर देता है और ऐसे अवैध कृत्यों के लिए सांसदों को छूट की अनुमति देने के लिए कोई नैतिक, नैतिक या कानूनी आधार नहीं लगता है, जो अगर एक आम आदमी द्वारा किया जाता है उसे कई दण्डित किया जा सकता है।

ए. आर. अंतुले बनाम भारत संघ का मामला, का हवाला यह दिखाने के लिए भी दिया जा सकता है कि अपीलों, क्रॉस अपीलों, याचिकाओं और समीक्षाओं में भ्रष्टाचार कैसे फंस गया। पूरा मामला 9 जून 1980 से 29 अप्रैल 1988 तक आठ लंबे वर्षों तक चला, जिसमें साधन संपन्न और जोड़–तोड़ करने वाले वादी ने अति–तकनीकी मुद्दों को उठाते हुए अदालत में देरी और याचिका आवेदनों की रणनीति का सहारा लिया। मामले के निष्कर्षों पर टिप्पणी करते हुए प्रोफेसर उपेंद्र बक्सी ने लिखा, हालांकि उनका "सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों के लिए किसी भी अनुचित मकसद को जिम्मेदार ठहराने" का इरादा नहीं था, वह अनुमान लगाएंगे कि "मामले का राजनीतिक रंग न्यायिक दिमाग से दूर नहीं हो सकता था।" यह मामला काफी हद तक दर्शाता है कि कैसे साधन संपन्न वादी अपने खिलाफ भ्रष्टाचार के मुकदमे को विफल कर सकता है और कैसे वह अदालती प्रक्रिया की कठोर तकनीकी से लाभ उठा सकता है।

10 मई 1993 को न्यायमूर्ति रामास्वामी के खिलाफ लाए गए महाभियोग प्रस्ताव का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा, यह दिखाने के लिए कि कैसे सर्वोच्च न्यायालय ने श्री के खिलाफ आरोपों को मंजूरी दे दी थी, इस तथ्य के बावजूद सत्ता में बैठे सांसदों द्वारा नैतिकता और नैतिक मूल्यों के सिद्धांतों को हवा में फेंक दिया गया था। न्यायमूर्ति रामास्वामी। सत्ता में कांग्रेस पार्टी ने महाभियोग प्रस्ताव पर मतदान से दूर रहने की राजनीतिक रणनीति के द्वारा उनकी निंदा होने से बचा लिया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतीय न्यायपालिका के इतिहास में पहली बार सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग के आरोप में कटघरे में खड़ा किया गया और संसद ने जनता की राय से अनसुना कर उसे मुक्त कर दिया। हालाँकि, यह अलग बात है कि बाद में उन्होंने 13 मई, 1993 को इस्तीफा देने का फैसला किया।

4. औद्योगिक मोर्चे पर, श्रमिक संघों की अपने नियोक्ताओं के खिलाफ बेहतर सौदेबाजी की क्षमता अक्सर हिंसा और संघर्ष का कारण बनती है। ये ट्रेड यूनियन नियोक्ताओं को उनकी मांगों को मानने के लिए मजबूर करने के लिए हर तरह के दबाव के हथकंडे अपनाते हैं। इस तरह के तनाव से आम तौर पर मारपीट, धमकी, लूटपाट, आगजनी, नाकाबंदी, घेराव और संपत्ति को नष्ट करने जैसे अपराध होते हैं।

5. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आधुनिक जटिल समाज में कुछ परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिन्हें अनुकूल नहीं माना जाता है, फिर भी उन्हें बने रहने दिया जाता है और जो अंततः आपराधिक व्यवहार के अनुकूल पृष्ठभूमि बनाने में मदद करती हैं। इस प्रकार, भारतीय समाज के संदर्भ में, पुरुषों के साथ महिलाओं के स्वतंत्र अंतर्संबंध को इस सदी के अंतिम चालीसवें दशक तक पक्ष में नहीं देखा गया था। लेकिन आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, महिला शिक्षा, परिवार की वित्तीय बाधाओं और लड़कियों की वैवाहिक समस्याओं के प्रभाव ने भारतीय महिलाओं को पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करने के लिए मजबूर कर दिया है और कभी–कभी वे अपनी वासनापूर्ण इच्छाओं को प्रस्तुत करने के लिए मजबूर हो जाती हैं। पुरुष काउंटर–पार्ट्स और बॉस उनकी इच्छा के विरुद्ध बहुत अधिक हैं। इसने अंततः यौन अपराधों की बहुलता को जन्म दिया है। ऐतिहासिक विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के मामले में कार्यस्थल पर अपने पुरुष मालिकों या सहकर्मियों द्वारा यौन उत्पीड़न के खिलाफ कामकाजी महिलाओं की सुरक्षा के लिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा अलग–अलग दिशा–निर्देश निर्धारित किए जाने के बावजूद, ऐसी अधिकांश घटनाएं अभी भी अप्रतिबंधित हैं या उसमें शामिल पीड़ित महिला के सम्मान और गरिमा के कारण सत्य पता नहीं चलता है।

पूर्वगामी चर्चा हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचाती है कि समाज में समूह संबंधों के अंतःक्रिया के कारण, ये प्रतिष्ठित समूह सामाजिक और असामाजिक दोनों प्रकार के पैटर्न स्थापित करते हैं, जो अंततः समाज के लिए एक सामान्य नैतिक धुन प्रदान करते हैं। इसलिए, यह इस प्रकार है कि सामाजिक संस्कृति उन प्रतिमानों और व्यवहारों से उत्पन्न होती है जो व्यक्ति विभिन्न सामाजिक संस्थानों जैसे परिवार, स्कूल, धर्म, पड़ोस, खेल के साथी, दोस्तों और सहकर्मियों के साथ जुड़कर सीखते हैं। क्रिमिनोलॉजिस्ट इन सामाजिक समूहों और उप समूहों के प्रभावों पर उचित ध्यान देने के लिए है जो अंततः किसी दिए गए समाज की सांस्कृतिक स्थिति को निर्धारित करते हैं।

जनजातीय मानदंड और आपराधिकता

भारत में आदिवासियों द्वारा किए गए अपराध इस बात को और स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों का आपराधिकता पर सीधा असर पड़ता है। इन जनजातियों के बीच कई अपराध उनके सदियों पुराने रीति–रिवाजों में निहित सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं के कारण होते हैं। आदिवासियों के सामाजिक–सांस्कृतिक लोकाचार जैसे अंधविश्वास, जादू टोना में विश्वास, छोटे–मोटे झगड़े, यौन भोग और शराब के अत्यधिक सेवन के कारण नशा, विशेष रूप से त्योहारों के मौसम में, हत्या, बलात्कार, आगजनी, अपहरण जैसे अपराधों को जन्म देता है। डकैती, आदि' उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के भील और भिलाला आदिवासियों के बीच भागकर विवाह करने का प्रचलन है। तबाल भगोरिया टोपी में एक साथ मिलते हैं जो होली के त्योहार के साथ मेल खाता है जिसमें युवा लड़के और लड़कियां एक साथ नृत्य करते हैं और लड़का अपनी पसंद की लड़की के साथ भाग जाता है, बशर्ते वह भी उसे मंजूरी दे और जब

वे वापस लौटते हैं, तो दोनों पति–पत्नी के माता–पिता उनकी शादी की व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार, पलायन जो भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध है, इस आदिवासी समाज के स्वीकृत मानदंडों में से एक है और इसे कभी भी अपराध के रूप में नहीं देखा जाता है। इसी तरह, पूर्व–वैवाहिक यौन संबंध, जो कि भारत के दंड कानून के तहत कानूनी रूप से निषिद्ध आचरण है, बिहार के बस्तर और छोटानागपुर क्षेत्र के गोंड जनजातियों के गोटुल यानी युवा छात्रावासों में व्यापक रूप से प्रचलित है। वास्तव में, यह आदिवासियों द्वारा अपने युवाओं को भावी वैवाहिक जीवन के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए एक महत्वपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक संस्था के रूप में माना जाता है। फिर से, बच्चे के जन्म, विवाह, विवाह, धार्मिक और कृषि त्योहारों के अवसर पर शराब परोसना और यहां तक कि मृतक के अंतिम संस्कार में शामिल होने वालों को भी भारत के लगभग सभी हिस्सों में प्रचलित आदिवासी प्रथा का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाता है। इस प्रकार इन निषिद्ध आचरणों, जो कि अपराध हैं, के लिए अनुमोदन का वास्तविक कारण जनजातीय समाज की अजीबोगरीब भावनाओं में निहित है, क्योंकि उनकी व्यावहारिक स्थितियाँ हैं। इस प्रकार, आदिवासी अपराध मूल रूप से शिक्षा की कमी और अज्ञानता और पर्याप्त ज्ञान की कमी के कारण सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या है। इसलिए जनजातीय लोगों की लोककथाओं और सांस्कृतिक विरासत में हस्तक्षेप किए बिना उनके बीच सामाजिक–आर्थिक जागृति पैदा करने की आवश्यकता है।

सामाजिक अव्यवस्था के उत्पाद के रूप में अपराध

शिकागो स्कूल के प्रोफेसरों पार्क एंड बर्गर ने सामाजिक नियंत्रण निर्माण में सामाजिक अव्यवस्था को "स्व–नियमन में संलग्न होने के लिए एक समूह की अक्षमता" के रूप में परिभाषित किया। संस्थागत नियंत्रण की कमी के कारण कमजोर सामाजिक बंधनों के परिणामस्वरूप भी अपराध होता है। कानूनों की नैतिक वैधता से इनकार अपराधियों को उनके अवैध व्यवहार के लिए एक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

यह आगे कहा जाना चाहिए कि प्रत्येक समाज का सांस्कृतिक रूप से निर्धारित लक्ष्य होता है। चाहे वह समाजवाद, साम्यवाद या सामाजिक व्यवस्था का कोई अन्य रूप हो। समाज के सदस्य विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निर्धारित मानदंडों का पालन करते हैं। इस प्रयास में, कुछ व्यक्ति अपने साथी का शोषण करने में सफल होते हैं, जबकि अन्य सामान्य आचरण से विचलित हो जाते हैं और अपराध में उधार देते हैं जो समाज के लिए हानिकारक और आक्रामक दोनों है। इस प्रकार अपराध की कुछ श्रेणियों में सामान्य संस्कृति का प्रभाव सबसे प्रत्यक्ष और विशिष्ट होता है।

सदरलैंड ने सामाजिक अव्यवस्था पर आपराधिक व्यवहार के अंतर संघ के अपने सिद्धांत की स्थापना की। उनका मानना था कि अपराध और सामाजिक अव्यवस्था समाज के स्वीकृत मूल्यों का परिणाम है। एक अन्य क्रिमिनोलॉजिस्ट हीली ने अपराध के कारण भावनात्मक असंतुलन को जिम्मेदार ठहराया और इस प्रकार अपराधियों पर संघ के प्रभाव को स्वीकार किया। उन्होंने बताया कि बच्चों में इच्छाओं की पूर्ति न होने से निराशा होती है और फलस्वरूप वे मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान होते हैं। इस प्रकार, इन भावनात्मक असंतुलन से बचने के प्रयास में, वे अपराधी बनने के लिए प्रवृत्त होते हैं। शेल्डन इस बात पर भी जोर देते हैं कि पुरुषों की जन्मजात प्रवृत्ति जैसे कि छोटा स्वभाव, विलंबित परिपक्वता, आदि अपराध–कारण का एक स्रोत हैं। डब्ल्यू ए बोंगर,

हालांकि, खराब और दयनीय आर्थिक स्थितियों और समाज के पूंजीवादी व्यवस्था में आपराधिकता का पता लगाता है। मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, सभी मानव व्यवहार आर्थिक कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं। फ्रेडरिक एंगेल्स ने इस तथ्य की पुष्टि की और इंग्लैंड में अपराध की घटनाओं में वृद्धि को जिम्मेदार ठहराया (उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को वर्ग शोषण के कारण दयनीय स्थिति सर्वहारा वर्ग के लिए लुभाना। यह अवधारणा कि अपराध अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण के कारण होता है। अंततः पश्चिम में कट्टरपंथी अपराध के सिद्धांत का विकास हुआ।

अपराध और अपराधियों पर अलग–अलग विचारों का मूल्यांकन हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि इनमें से प्रत्येक सिद्धांत केवल कुछ प्रकार के अपराध की व्याख्या करता है जबकि इसमें कुछ अन्य प्रकार के अपराध का उत्तर नहीं होता है। इस प्रकार, हीली और शेल्डन के विचार सफेदपोश अपराधों की घटनाओं के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं देते हैं जिनका अन्यथा डब्ल्यू ए द्वारा संतोषजनक उत्तर दिया जाता है। यह अनुमान लगाना उचित होगा कि अपराध का सांस्कृतिक सिद्धांत अस्थायी और सामाजिक मूल्य के विचारों पर आधारित है। हर व्यवहार का जवाब यह सिद्धांत दे सकता है चाहे वह आपराधिक हो या गैर–आपराधिक, और इस प्रकार सभी अपराधों के लिए यह एक संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रदान करता है।

अब यह आम तौर पर स्वीकार कर लिया गया है कि प्रत्येक अपराधी अपने व्यक्तित्व के साथ–साथ सामान्य संस्कृति के अपने अजीब सामाजिक अनुभवों का भी उत्पाद है। इसका अर्थ है मानव व्यवहार में 'कारण और प्रभाव' के नियमों की स्वीकृति और शास्त्रीय स्कूल के स्वतंत्र इच्छा सिद्धांत का खंडन। यह विचार कि अपराध कई कारकों की परस्पर क्रिया का परिणाम है, अपराध–कारण की व्याख्या करने के लिए अधिक तार्किक प्रतीत होता है। हालांकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यदि अपराध की अवधारणा पर भरोसा किया जाता है, तो इसका मतलब यह होगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पसंद के अनुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र है और इन परिस्थितियों में, अपराध की रोकथाम असंभव होगी। इसके विपरीत, यदि अपराधों को कम करने वाली स्थितियों को जाना जा सकता है, तो वे अपराधों को खत्म करने या कम से कम उन्हें काफी हद तक कम करने में मदद कर सकते हैं। इसके अलावा, अपराध की पृष्ठभूमि का दंडात्मक नीति पर सीधा प्रभाव पड़ता है क्योंकि दंडात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य पर्याप्त साधनों के माध्यम से अपराधियों का पुनर्वास करना है। यह कहा जाना चाहिए कि एक वर्ग के रूप में अपराधियों में बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति शामिल होते हैं जो वयस्क या बच्चे, पुरुष या महिला, चतुर या अज्ञानी, मानसिक रूप से स्वस्थ या भावनात्मक रूप से परेशान, सफेदपोश अपराधी या हिंसक अपराध करने वाले, वेश्याएं, दलाल और कई हो सकते हैं। अन्य प्रकार के अपराधी। अपराधियों की इन श्रेणियों में से प्रत्येक अजीबोगरीब परिस्थितियों का एक उत्पाद है और इसलिए, उन्हें दंडित करने से वांछित उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती है। इसलिए, अपराधियों के सुधार के ठोस सिद्धांतों पर दंड नीति को फिर से आकार देना समझदारी होगी ताकि सजा का उद्देश्य पूरी तरह से पूरा हो सके। यह दृष्टिकोण शायद दंडात्मक न्याय के लिए सबसे उपयुक्त योगदान होगा।

रॉबर्ट के. मेर्टन ने सामाजिक सिद्धांत और सामाजिक संरचना पर अपने दिलचस्प अध्ययन में देखा है कि सामाजिक संरचना सांस्कृतिक मूल्यों को काफी प्रभावित करती है और जब व्यवहार का सांस्कृतिक विनियमन कमजोर होता है, तो यह आपराधिकता के लिए एक प्रजनन आधार प्रस्तुत करता है।' संयुक्त राज्य अमेरिका में आपराधिकता

की समस्या का उल्लेख करते हुए, डोनाल्ड टैफ्ट ने उपयुक्त रूप से देखा कि आपराधिक पैटर्न सामान्य संस्कृति के उत्पाद हैं और ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा महत्वपूर्ण हैं।

टिप्पणी

ऑस्टिन टी तुर्क ने जोर देकर कहा है कि सामाजिक संघर्ष और सामाजिक अव्यवस्था सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य और अपरिहार्य हिस्सा था। यदि कोई सामाजिक अव्यवस्था नहीं थी, तो यह इस तथ्य का संकेत होगा कि सत्ता में बैठे लोगों द्वारा व्यक्तियों को अत्यधिक नियंत्रित या मजबूर किया जा रहा है। इसके विपरीत, बहुत अधिक संघर्ष और अत्यधिक अव्यवस्था भी समाज की प्रगति के लिए स्वस्थ नहीं होगी।

सामाजिक अव्यवस्था के बारे में बात करते हुए, तुर्क सांस्कृतिक मानदंडों और सामाजिक मानदंडों के बीच अंतर करता है। उनके अनुसार, सांस्कृतिक मानदंड निर्धारित करते हैं कि व्यवहार क्या है या अपेक्षित नहीं है जबकि सामाजिक मानदंड समाज में वास्तविक व्यवहार का प्रतिनिधित्व करते हैं। सत्ता में अधिकारियों के लिए, सांस्कृतिक मानदंड आमतौर पर समाज के लिए बनाए गए कानूनों में परिलक्षित होते हैं और सामाजिक मानदंड उन कानूनों का प्रवर्तन होते हैं। ये सामाजिक मानदंड विषयों के वास्तविक व्यवहार पैटर्न का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंडों के बीच का अंतर न केवल संघर्ष को प्रेरित करता है, बल्कि सामाजिक अव्यवस्था को भी जन्म देता है जो अंततः कानून तोड़ने और व्यक्तियों के अपराधीकरण के लिए आधार प्रदान करता है।

भारत के संदर्भ में, भारतीय समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक वर्जनाओं का अपराध पर प्रभाव कमोबेश प्रत्यक्ष और विशिष्ट है। भारतीय समाज जटिल और प्रतिस्पर्धी होने के कारण काफी संघर्ष है जो अक्सर अपराध का रूप ले लेता है। अपराधियों के अलावा, गैर–अपराधियों में भी शोषण की प्रवृत्ति व्याप्त है जो उनकी सामान्य संस्कृति में आपराधिक तत्वों को दर्शाती है। यह अपराध में काफी वृद्धि और साथ ही अपराध से निपटने के लिए दंडात्मक एजेंसियों की अप्रभाविता के लिए जिम्मेदार है। एकमात्र उपाय जो दिखाई देता है, वह है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में ध्वनि शिक्षा के माध्यम से जनजागृति की आवश्यकता। कानूनी साक्षरता पर जोर देने वाला एक एकीकृत शैक्षिक कार्यक्रम शायद आम लोगों और विशेष रूप से ग्रामीण जनता के बीच कानून और सही आचरण के प्रति सम्मान पैदा करने के लिए उपयोगी हो सकता है। इस प्रकार, दंडात्मक उपायों के बजाय रोकथाम पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। जैसा कि थॉमस फुलर ने ठीक ही कहा है, 'दंड देना और रोकना नहीं है, पंप पर श्रम करना और रिसाव को खुला छोड़ना है।' यह ध्यान में रखना चाहिए कि अपराध एक इलाज योग्य विचलन है क्योंकि हर आदमी अच्छा पैदा होता है और यह केवल इसलिए होता है आधुनिक युग के तनाव और तनाव जो उसे अपराधी बना सकते हैं।

अपराधी न केवल मानसिक रूप से विक्षिप्त या भावनात्मक रूप से परेशान व्यक्ति होता है बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियों का शिकार भी होता है। उसके असामाजिक व्यवहार के लिए शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण और आर्थिक जैसे विविध कारक जिम्मेदार हैं। इसलिए, उसे एक बीमार व्यक्ति की तरह ही व्यक्तिगत उपचार की आवश्यकता होती है। अपराधियों का प्रभावी सुधार सुनिश्चित करने की दृष्टि से, अपराध की गंभीरता और प्रकृति के अनुसार उनका वर्गीकरण अत्यंत

आवश्यक है। डॉ. एम.जे. सेठना ने अपराधियों को उनके उपचार और सुधार की दृष्टि से चार व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत करने का सुझाव इस प्रकार दिया है–

1. मानसिक और विक्षिप्त अपराधियों को बिना किसी दंड की आवश्यकता के उपचार की आवश्यकता होती है;
2. कठोर और आदतन अपराधियों को दंडित करते समय सुधार करने की आवश्यकता है;
3. सफेदपोश अपराधियों को बिना किसी उपचार के दंडित करने की आवश्यकता है; तथा
4. पहले अपराधियों, यातायात कानून–उल्लंघनकर्ताओं आदि को न तो सजा और न ही उपचार की आवश्यकता है, बल्कि केवल परिवीक्षा पर नसीहत या रिहाई की आवश्यकता है।

अपराधियों का उपरोक्त वर्गीकरण, सबसे वैज्ञानिक और तार्किक होने के अलावा, अपराध के समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर आधारित है और अपराध की रोकथाम और अपराधियों के सुधार के लिए रणनीति तैयार करने के लिए एक ठोस आधार प्रदान करता है। यह ध्वनि धारणा पर आधारित है कि मानव स्वभाव जटिल है और इसे पूरी तरह से समझना संभव नहीं है। हालाँकि, यह महसूस किया गया है कि सभी मनुष्य किसी स्थिति में समान रूप से प्रतिक्रिया नहीं करते हैं। इस प्रकार दो व्यक्ति एक ही अपराध कर सकते हैं, लेकिन प्रत्येक कार्य अपने सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और पर्यावरणीय प्रभावों में दूसरे से भिन्न होता है। इस बुनियादी समझ ने अपराधियों के समुदाय में उनके पुनर्समाजीकरण और पुनर्वास के लिए व्यक्तिगत उपचार विधियों के नवाचार को प्रेरित किया है। अपराधियों के प्रति उपचार की प्रतिक्रिया अपराध के प्रति सामाजिक प्रतिक्रिया के अनुरूप होनी चाहिए।

संक्षेप में, जैसा कि दुर्खीम एमिल ने कहा है कि आपराधिकता सभी समाजों में बनी रहती है और अपराध से पूरी तरह रहित समाज का होना असंभव है। इसलिए, सभी समाज कुछ नियम बनाते हैं और उनके उल्लंघन के लिए दंडात्मक दंड प्रदान करते हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपराध की उत्पत्ति समाज में होती है और यह सामाजिक संगठन की एक मूलभूत शर्त है। सामाजिक मानदंडों और आर्थिक मानकों में परिवर्तन और प्रगतिशील बदलाव कानूनों और नियमों में एक साथ परिवर्तन की आवश्यकता है। लेकिन जब सत्ता, धन या नियंत्रण के कारकों में अचानक परिवर्तन होता है, तो सामाजिक मानदंडों को अक्सर उलट दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप अराजकता और अपराधों की बहुलता होती है। इस प्रकार, अचानक सामाजिक परिवर्तन के समय विद्यमान अराजकता की स्थिति सामान्य स्थिति को बाधित करती है और लोगों के व्यवहार के अपराध और आपराधिकता की दिशा में आगे बढ़ने की संभावना अधिक होती है।

1.2.3 सामाजिक दृष्टिकोण

अपराधी के व्यक्तित्व और उस पर जैविक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक कारकों के प्रभाव के अलावा, विभिन्न सामाजिक और पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रभाव पर विचार करना आवश्यक है जिसके भीतर अपराध उत्पन्न होते हैं। अमेरिकी अपराधियों ने अपराध के कारणों की समस्या को निष्पक्ष रूप से देखना पसंद किया। उन्होंने अपराधी की

टिप्पणी

सामाजिक स्थितियों के लिए आपराधिकता को जिम्मेदार ठहराया। इस प्रकार अमेरिकी दृष्टिकोण ने इस तर्क का समर्थन नहीं किया कि अपराध अपराधियों के व्यक्तित्व लक्षणों के कारण होते हैं। अपराध की समाजशास्त्रीय अवधारणा की उत्पत्ति का पता उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लगाया जा सकता है जब समाजशास्त्रियों ने इसके आर्थिक परिप्रेक्ष्य में अपराध–कारण का गहन अध्ययन किया। वे पहले समय में यह सुझाव देने वाले थे कि अपराध की अवधारणा को अपराध विज्ञान के अध्ययन के उद्देश्य के लिए अपने सख्त कानूनी दायरे से आगे बढ़ाया जाना चाहिए। अपराध के कारण के लिए कानूनी दृष्टिकोण आचरण के एक पाठ्यक्रम को निर्धारित करता है जिसके तहत कानून के उल्लंघन को दंडात्मक परिणामों के साथ पूरा किया जाता है। लेकिन समाजशास्त्री एक कदम आगे बढ़ते हैं और सुझाव देते हैं कि अपराध का कारण काफी हद तक सामाजिक संबंधों पर निर्भर करता है और कभी–कभी व्यक्ति जानबूझकर कानून का उल्लंघन करते हैं, यह जानते हुए कि वे अपने गैरकानूनी कृत्य के लिए दंडात्मक परिणामों का सामना करने के लिए उत्तरदायी हैं। राजनीतिक उथल–पुथल के समय यह घटना अधिक स्पष्ट है। ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं जब लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री आदि जैसे प्रख्यात राजनेताओं को भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई में ब्रिटिश कानूनों का उल्लंघन करने के लिए मजबूर किया गया था। वर्तमान राजनेताओं और ट्रेड यूनियनवादियों की ओर से भूख–हड़ताल, घेराव, धरना, आत्मदाह, आदि जैसी दबाव रणनीति का सहारा लेने की प्रवृत्ति, समाज के जिम्मेदार सदस्यों द्वारा जानबूझकर कानून के उल्लंघन के ज्वलंत उदाहरण हैं।

अपराध का समाजशास्त्रीय सिद्धांत दावा करता है कि ऐसे व्यक्ति हैं जो कानून द्वारा निर्धारित स्थापित मानदंडों और परंपराओं के अनुरूप नहीं हैं। ये व्यक्ति समाज के सामान्य मानकों के ढांचे के भीतर खुद को समायोजित नहीं करते हैं और कमोबेश सामाजिक मानदंडों के प्रति उदासीन होते हैं। उदाहरण के लिए, यह सर्वविदित है कि नैतिकता या कानून के नियम किसी को किसी की सहमति के बिना दूसरों की संपत्ति लेने की अनुमति नहीं देते हैं, फिर भी ऐसे लोग हैं जो इस तरह की गतिविधियों में लिप्त हैं। इस विचलित आचरण का कारण इस तथ्य में पाया जाना है कि या तो इन व्यक्तियों ने अपने माता–पिता या परिवार के अन्य सदस्यों को चोरी करते देखा है या उन्हें अपने वरिष्ठों द्वारा दूसरों से संबंधित चीजों को लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार अपराधियों में चोरी करने और चोरी करने की एक अजीबोगरीब आदत विकसित हो जाती है। यह पर्याप्त रूप से प्रदर्शित करता है कि पारिवारिक संबंध जैसे पर्यावरणीय कारक कभी–कभी अपराधी व्यवहार में योगदान कर सकते हैं।

अपराध की समाजशास्त्रीय परिभाषा का प्रयास करने वाले रैफेल गैरोफेलो शायद पहले कानूनवादी थे। उन्होंने उन सभी कृत्यों को अपराध के रूप में नामित किया, जिन्हें कोई भी सभ्य समाज अपराधी के रूप में मान्यता देने से इंकार नहीं कर सकता है और सजा के द्वारा निवारण योग्य है। उन्होंने देखा कि अपराध एक अनैतिक और हानिकारक कार्य है जिसे जनता की राय में 'आपराधिक' माना जाता है क्योंकि यह नैतिक भावना की इतनी अधिक चोट है कि ईमानदारी और दया की प्राथमिक परोपकारी भावनाओं में से एक या दूसरे द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है। इसके बाद, एक प्रख्यात अमेरिकी न्यायविद रोस्को पाउंड ने अपराध–दमन से संबंधित 'सामाजिक–हितों' के अपने सिद्धांत पर काम किया। उन्होंने अपने सिद्धांत को इस

बुनियादी धारणा पर स्थापित किया कि कानूनी घटना कुछ भी नहीं बल्कि सामाजिक घटना है और इस प्रकार उन्होंने न्यायशास्त्र को सामाजिक इंजीनियरिंग के विज्ञान के रूप में माना।' उन्होंने जोर देकर कहा कि जीवन, स्वतंत्रता, सुरक्षा, धर्म, सामाजिक संस्थाओं और सामान्य प्रगति में हित प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रमुख विचार हैं। समाजशास्त्रीय रूप से, इन हितों की समाज द्वारा स्पष्ट रूप से कल्पना की जाती है और कोई भी कार्य जो उनके कार्यान्वयन की धमकी देता है, दमनकारी उपायों की मांग करता है। इस प्रकार इन सामाजिक हितों को समाज द्वारा संरक्षित किया जाता है और दंड, नैतिक संयम और पारंपरिक दमन द्वारा बचाव किया जाता है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर, अपराध को एक ऐसे कार्य के रूप में परिभाषित किया गया है जो उस समूह की एकजुटता के विरुद्ध है जिसे व्यक्ति अपना मानता है।

उपरोक्त अवलोकन के आलोक में, यह निष्कर्ष निकालना आसान है कि अपराध की अवधारणा के बारे में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इसकी कानूनी परिभाषा की तुलना में अधिक यथार्थवादी है। अक्सर यह कहा गया है कि अगर हमारे पास कोई आपराधिक कानून नहीं होता तो हमारे पास कोई अपराध नहीं होगा, लेकिन यह कानून का एक बड़ा उत्थान है। यह सच है कि चोरी से संबंधित कानून के निरसन के साथ, चोरी करना अब अपराध नहीं रहेगा, फिर भी इसके लिए सार्वजनिक आक्रोश होगा। इस प्रकार 'हालांकि व्यवहार का नाम बदल दिया जाएगा, फिर भी व्यवहार और सामाजिक प्रतिक्रिया अभी भी वही रहेगी, क्योंकि व्यवहार से क्षतिग्रस्त सामाजिक हित अभी भी अपरिवर्तित रहेंगे'। इसके विपरीत, हालांकि सफेदपोश अपराध सभी कानूनी प्रणालियों के तहत दंडनीय है, फिर भी जो लोग झूठे विज्ञापन, जमाखोरी, कर चोरी आदि में लिप्त हैं, उनके कार्य असामाजिक होने के बावजूद सामाजिक स्थिति नहीं खोते हैं। इस प्रकार, समाजशास्त्री इस बात पर जोर देते हैं कि प्रत्येक अपराध में तीन आवश्यक तत्व शामिल होते हैं, अर्थात्–

1. मूल्य जो राजनीतिक रूप से प्रभावशाली कानून निर्माताओं द्वारा सराहना की जाती है;
2. पर्यावरणीय विविधताओं के कारण समाज में हितों का टकराव; तथा
3. अपराधियों द्वारा बल प्रयोग और जबरदस्ती के उपाय।

समाजशास्त्रियों का तर्क है कि किसी भी अन्य सामाजिक व्यवहार की तरह आपराधिक व्यवहार भी कुछ पर्यावरणीय परिस्थितियों से उत्पन्न होता है। इसलिए, अपराध–दर में भिन्नता विभिन्न प्रणालियों के तहत सामाजिक संगठन में भिन्नता के कारण होती है। कुछ विशिष्ट कारकों की गणना करते हुए, सदरलैंड ने सुझाव दिया कि गतिशीलता, संस्कृति संघर्ष, पारिवारिक पृष्ठभूमि, विचारधाराओं, जनसंख्या घनत्व, रोजगार और धन के वितरण आदि में भिन्नता का अपराध के कारण पर गहरा असर पड़ता है। हालाँकि, यह बताया जा सकता है कि उपरोक्त सूची संपूर्ण नहीं है, बल्कि केवल उदाहरण है और ये कुछ मुख्य स्थितियां हैं जो सीधे अपराध–दर को प्रभावित करती हैं।

डॉ. वाल्टर रेकलेस ने अपराध–कारण की समस्या के लिए अपने बीमांकिक दृष्टिकोण के माध्यम से देखा कि अपराधी का पता लगाने या रिपोर्ट किए जाने की संभावना, उसकी उम्र, लिंग, नस्ल, व्यावसायिक और द्वारा निर्धारित समाज में उसकी स्थिति पर निर्भर करती है। सामाजिक स्थिति और निवास, आदि।

टिप्पणी

आपराधिक व्यवहार का समाजशास्त्रीय सिद्धांत

यह सिद्धांत पहले से मानता है कि अपराधी समाज की उपज हैं। समाजशास्त्रीय कारकों का प्रभाव व्यक्तियों पर इतना अधिक होता है कि वे अपने पर्यावरण और तत्काल सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर या तो अपराध से दूर हो जाते हैं या इसे अपना लेते हैं। प्रो सदरलैंड ने अपराधियों का गहन अध्ययन किया और आपराधिक व्यवहार के लिए दो प्रमुख स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए, अर्थात्–

1. अपराध की घटना के समय संचालित होने वाली प्रक्रियाएं जिन्हें उन्होंने अपराध की गतिशील व्याख्या कहा; तथा
2. अपराधी के पहले के जीवन–इतिहास में चलने वाली प्रक्रियाएं जिन्हें उन्होंने अपराध की ऐतिहासिक या सामान्य व्याख्या कहा।

अपराध–कारण की गतिशील व्याख्या को बाद में मनोवैज्ञानिकों, जीवविज्ञानियों और मनोचिकित्सकों ने समर्थन दिया और वास्तव में अपराध के लिए व्यक्तिपरक दृष्टिकोण का आधार बनाया। यह सुझाव देता है कि आपराधिक व्यवहार का कारण तत्काल अनुकूल स्थिति में निहित है जिसे अपराधी आपराधिक कृत्य के लिए अनुकूल पाता है। उदाहरण के लिए, सार्वजनिक धन के गबन या दुर्विनियोजन का अपराध केवल वे व्यक्ति ही कर सकते हैं जो बड़ी मात्रा में धन का प्रबंधन करते हैं। इसी तरह, चोरी का अपराध अक्सर एकांत घरों में किया जाता है जिसे अपराधी कई दिनों तक बंद या मानव रहित पाते हैं। फिर से, उन घरों में यौन अपराध आम हैं जहां परिवार के सदस्यों की संख्या सीमित है और गोपनीयता और अकेलेपन के अवसर आसानी से उपलब्ध हैं।

यह सच है कि अपराधी की व्यक्तिगत परिस्थितियाँ अपराध के कारण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, फिर भी ये 'स्थितियाँ' किसी व्यक्ति को अपराध करने के लिए प्रेरित करने के लिए शायद ही पर्याप्त हो सकती हैं यदि उसके पिछले जीवन के अनुभव अन्यथा भिन्न हों। इसलिए, एक अपराध आमतौर पर तब उत्पन्न होता है जब कोई व्यक्ति अपने पिछले अनुभवों से किसी विशेष स्थिति को इसके लिए अनुकूल मानता है।

आपराधिक व्यवहार की ऐतिहासिक या सामान्य व्याख्या के संबंध में, सदरलैंड ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले–

(1) आपराधिक व्यवहार सीखा जाता है 'और विरासत में नहीं मिलता है।

(2) आपराधिक व्यवहार सीखने की प्रक्रिया अपराधी की अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत के माध्यम से संचालित होती है और उनके साथ उनका जुड़ाव।

(3) व्यक्ति पर सबसे बड़ा प्रभाव उसके अंतरंग व्यक्तिगत समूह का होता है जो उसके आचरण को कई तरह से ढालता है।

(4) मानव समाज में आपराधिकता को सदरलैंड के डिफरेंशियल एसोसिएशन के सिद्धांत के माध्यम से सबसे अच्छी तरह से समझाया जा सकता है, जो यह मानता है कि आपराधिक और गैर–आपराधिक संघ हैं और ये दोनों ताकतें लगातार प्रतिकार कर रही हैं। आपराधिक व्यवहार का परिणाम तब होता है जब कानून के उल्लंघन के अनुकूल परिस्थितियां कानून तोड़ने के प्रतिकूल परिस्थितियों से अधिक हो जाती हैं।

(5) आपराधिक व्यवहार और आपराधिक विरोधी व्यवहार के संबंध में इसकी अवधि, प्राथमिकता या तीव्रता के संबंध में भिन्न हो सकते हैं।

(6) कुछ क्रिमिनोलॉजिस्टों ने आर्थिक जरूरतों, पुरुषों की अधिग्रहण प्रवृत्ति और सामाजिक स्थिति प्राप्त करने और जीवन में आनंद लेने की इच्छा के संदर्भ में आपराधिक व्यवहार की व्याख्या करने का प्रयास किया है। लेकिन यह तर्क अस्थिर है क्योंकि यह समान रूप से वैध व्यवहारों पर भी लागू होता है। इस प्रकार, चोरी एक व्यक्ति द्वारा मौद्रिक लाभ के लिए की जा सकती है, लेकिन इसी तरह के परिणाम कठिन श्रम के माध्यम से ईमानदारी से मजदूरी अर्जित करने से प्राप्त होते हैं।

डिफरेंशियल एसोसिएशन का सिद्धांत

1939 में एडविन सदरलैंड द्वारा डिफरेंशियल एसोसिएशन का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया था। सिद्धांत का दावा है कि अपराध दूसरों के साथ जुड़कर सीखा जाता है। उनके अनुसार, व्यावहारिक शिक्षा अन्य लोगों के साथ व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से होती है। अपराध के संदर्भ में इस सीख में अपराध करने की तकनीक और उनके प्रतिबद्ध होने के लिए दृष्टिकोण और तर्कसंगतता या औचित्य दोनों शामिल हैं। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति के माता–पिता भूखों को खिलाने या कुछ प्रकार के पीड़ितों जैसे बड़े स्टोर या धनी व्यवसायी से गरीबों की जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ प्रकार की चोरी को स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार, व्यक्ति गरीबों या जरूरतमंदों के लिए सहानुभूति सीख सकता है और साथ ही यह महसूस कर सकता है कि चोरी आम तौर पर गलत है। इस तरह के अलग–अलग और परस्पर विरोधी अनुभव उसे आपराधिकता की ओर ले जा सकते हैं यदि वह उन विचारों के प्रति अधिक उजागर होता है जो अपराध के समर्थन में हैं, जो इसके खिलाफ हैं। संक्षेप में कहा गया है, विभेदक संघ का सिद्धांत इस विषय पर केंद्रित है कि कानून के उल्लंघन के प्रतिकूल प्रभावों की तुलना में कानून के उल्लंघन के अनुकूल होने पर एक व्यक्ति अपराधी बन जाता है।

ऊपर से, यह कहा जा सकता है कि अपराध के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की अनिवार्य विशेषता यह है कि यह अपराध को समाज में संचालित सामाजिक प्रक्रियाओं के परिणाम के रूप में मानता है। भारतीय संदर्भ में, प्रारंभिक हिंदू समाज को अनिवार्य रूप से एकीकृत परिवार प्रणाली का श्रेय दिया गया था जहां व्यक्ति के पास स्वतंत्र अस्तित्व के लिए सीमित गुंजाइश थी। समाज की एकरूपता ने असफल को आत्मनिर्भर बना दिया और इसलिए अपराध की घटनाएं दुर्लभ थीं। हालांकि, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सभ्यता और आर्थिक प्रगति की प्रगति के साथ, भारतीय समाज का स्वरूप मौलिक रूप से बदल गया है और परिवार की संस्था अब अलग हो गई है और इसके विघटन से कार्रवाई की स्वतंत्रता हो गई है ताकि हर कोई खुद को परस्पर विरोधी हितों के अनुकूल बना सके। समाज की। इसके परिणामस्वरूप पहले की अवधि की तुलना में आधुनिक समय में अपराध की बहुलता हुई है।

प्रो. थॉर्स्टन सेलिन ने कहा, "एक व्यक्ति के समूह का आचरण मानदंड एक हिस्सा है, जो किसी विशेष स्थिति के लिए एक प्रतिक्रिया की अनुमति दे सकता है जबकि दूसरे समूह का मानदंड शायद बहुत विपरीत प्रतिक्रिया की अनुमति दे सकता है। उदाहरण के लिए, द्विविवाह एक दंडनीय अपराध है। भारतीय दंड संहिता की धारा

टिप्पणी

494 के तहत यदि हिंदू, ईसाई और पारसी दोनों में से किसी एक के द्वारा किया जाता है, लेकिन इस धारा के प्रावधानों का मुस्लिम पुरुषों के मामले में कोई आवेदन नहीं है, जिन्हें एक से अधिक पत्नियों से शादी करने की अनुमति है, लेकिन यह मुस्लिम महिलाओं पर लागू होता है। इस प्रकार, हमेशा कार्रवाई और प्रतिक्रिया का आदान–प्रदान होता है और व्यक्ति ज्यादातर परिस्थितियों की श्रृंखला से अपराधी बन जाते हैं।

इसके अलावा, कुछ आपराधिक व्यवहार हमारे दैनिक जीवन में इतने अधिक फैले हुए हैं कि हम लगभग भूल ही जाते हैं कि वे अपराध हैं। कारण यह है कि इस तरह के आचरण से उनके साथ किसी प्रकार का सार्वजनिक आक्रोश नहीं होता है। इस प्रकार, जिन व्यक्तियों को यातायात कानूनों के उल्लंघन के लिए दंडित किया जाता है, उनका समाज द्वारा उपहास नहीं किया जाता है। इस दृष्टि से अपराधियों को जन समर्थन के बिना अधिक से अधिक अल्पसंख्यक–समूह माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह है कि समाज के सही सोच वाले सदस्य कुछ व्यवहार संबंधी विचलनों पर तीखी प्रतिक्रिया नहीं करते हैं, लेकिन इसका निश्चित रूप से यह मतलब नहीं है कि वे इस तरह के अपराधी आचरण के लिए कोई सराहना करते हैं।

अपराध के कारणों के लिए बहु–कारक दृष्टिकोण

आपराधिक व्यवहार के लिए एक विलक्षण सैद्धांतिक स्पष्टीकरण तैयार करने के लिए अलग–अलग विचारों को प्रतिपादित करने वाले अपराधियों की ओर से बार–बार प्रयास करने के बावजूद, कोई भी परिकल्पना इस मुद्दे का संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकी। अंततः, समाजशास्त्रियों ने अपराध के कारण की व्याख्या करने के लिए 'बहु–कारक दृष्टिकोण' का उपयोग किया। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का मानना है कि अपराध विभिन्न कारकों के संयोजन का एक उत्पाद है जिसे सामान्य प्रस्तावों के संदर्भ में नहीं बताया जा सकता है। इस दृष्टिकोण को प्रख्यात अमेरिकी क्रिमिनोलॉजिस्ट विलियम हीली के लेखन से समर्थन मिलता है, कई कारण सिद्धांत पर अपने विचार व्यक्त करते हुए, प्रो हीली ने देखा कि यह एक या दो कारक नहीं हैं जो एक व्यक्ति को योग्य बनाते हैं, लेकिन यह कई और कारकों का एक संयोजन है। हालाँकि, वह इस बात से सहमत थे कि किसी विशेष अपराध से जुड़े सभी अभिनेताओं का उस अपराध के कारण के रूप में समान महत्व नहीं हो सकता है। अपराध पर उनके प्रभाव की सीमा अलग–अलग हो सकती है, कुछ अपराध पर अधिक प्रभाव डालते हैं जबकि अन्य कम से कम।

इस सिद्धांत की अल्बर्ट कोहेन ने इस आधार पर तीखी आलोचना की है कि यह एक भी स्पष्टीकरण नहीं देता है जो अपराध–कारण की व्याख्या कर सके। इसके अलावा, यह विश्वास करना भ्रांतिपूर्ण है कि अपराध केवल निंदनीय परिवेश में ही उत्पन्न होते हैं। कोहेन के अनुसार अपराध के लिए बहु–कारक दृष्टिकोण की सबसे बड़ी कमी यह है कि इस सिद्धांत के अनुयायी अपराध के 'कारणों' के साथ 'कारकों' को भ्रमित करते हैं।

पूर्वगामी विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि समाजशास्त्री अपराध को पर्यावरणीय विचलन और बदलती सामाजिक परिस्थितियों का एक उत्पाद मानते हैं। आपराधिकता और इनमें से कुछ शर्तों के बीच अंतर्संबंध पर निम्नलिखित शीर्षकों के तहत चर्चा की जा सकती है–

(1) **गतिशीलता** : हाल के वर्षों में औद्योगीकरण और शहरीकरण के तेजी से विकास ने संचार के साधनों, यात्रा सुविधाओं और प्रेस और मंच के माध्यम से विचारों के प्रसार का विस्तार किया है। नतीजतन, मानव संपर्क गतिशीलता की बढ़ती संभावनाओं के साथ घनिष्ठ संबंधों से आगे निकल गया है। व्यक्तियों के नए स्थानों पर प्रवासन जहां वे अजनबी हैं, उन्हें अपराध के बेहतर अवसर प्रदान करते हैं क्योंकि पता लगाने की संभावना काफी कम हो जाती है। इसलिए, गतिशीलता सामाजिक अव्यवस्था के संभावित कारण के रूप में कार्य करती है जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक नियंत्रण की कमी के कारण विचलित व्यवहार हो सकता है। समाचार पत्रों में अपराध–रिपोर्टों के आपराधिकता पर प्रभाव पर टिप्पणी करते हुए, बार्न्स एंड टीटर्स ने पाया कि यह अपराध और अपराध को दो तरह से प्रोत्साहित करता है। सबसे पहले, अस्थिर दिमाग और मनोरोगी ऐसे अपराधों की ओर आसानी से आकर्षित होते हैं और दूसरा, अपराध–समाचारों की लगातार रिपोर्टिंग के साथ, लोगों का कानून और कानून प्रवर्तन एजेंसियों पर विश्वास कम होने लगता है। इसके अलावा, अपराधी समाचार–पत्रों या पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले अपराध–समाचारों के माध्यम से अपराध की नई तकनीक सीखते हैं।

(2) **संस्कृति संघर्ष** : एक गतिशील समाज में सामाजिक परिवर्तन एक अपरिहार्य घटना है। आधुनिक गतिशील समाज में आधुनिकीकरण, शहरीकरण और औद्योगीकरण का प्रभाव कभी–कभी सामाजिक अव्यवस्था का परिणाम हो सकता है और इससे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सांस्कृतिक संघर्ष हो सकता है। अंतर पुराने और नए मूल्यों, स्थानीय और आयातित मूल्यों और पारंपरिक मूल्यों और सरकार द्वारा लगाए गए मूल्यों के बीच हो सकता है।

प्रवास या अप्रवास के कारण जनसंख्या का परिवर्तन अक्सर किसी स्थान की अपराध–दर को प्रभावित करता है। निवासियों और अप्रवासियों के बीच सांस्कृतिक संघर्ष के परिणामस्वरूप विचलित व्यवहार होता है। हाल ही के एक अध्ययन में रूथ और कैवन ने पाया कि एस्किमो जो स्वतंत्र थे, वे हाल तक अपराध की समस्या से जूझ रहे थे। वे अक्सर भटकाव, नशे और यौन–अपराधों जैसे कुटिल व्यवहार में लिप्त हो जाते हैं।

1947 में भारत–पाक विभाजन के दिनों और 1971 में बांग्लादेश के विभाजन के दौरान भारत ने जिस आव्रजन समस्या का सामना किया, वह सामाजिक अव्यवस्था से उत्पन्न सांस्कृतिक संघर्षों का एक दिलचस्प उदाहरण है। 1947 में सिंध और उत्तर–पश्चिम सीमा क्षेत्र से शरणार्थियों की आमद ने भारतीय समाज की पारंपरिक सामाजिक संरचना को पूरी तरह से तोड़ दिया और इसके परिणामस्वरूप अपराध में भारी वृद्धि हुई। हत्या, आगजनी, लूटपाट, अपहरण और दंगों की घटनाएं अनिवार्य रूप से उन अप्रवासियों में सामाजिक–सांस्कृतिक विविधताओं का परिणाम थीं, जिन्होंने अपने पारिवारिक जीवन में व्यवधान और स्थिति के नुकसान के कारण अत्यधिक व्यक्तिवादी प्रवृत्ति विकसित की थी।

श्रीलंका में 1986 से जातीय दंगे और लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम (LTTE) और सरकार की उग्रवादी ताकतों के बीच टकराव के कारण श्रीलंका में हजारों लोगों की हत्या इस बिंदु पर एक और उदाहरण है। देश में तमिल

लोग भेदभाव के खिलाफ लड़ रहे हैं – और सिंहली आबादी के साथ एकीकरण की मांग कर रहे हैं।

(3) **पारिवारिक पृष्ठभूमि** : सदरलैंड का मानना है कि सभी सामाजिक प्रक्रियाओं में से अपराधी के आपराधिक व्यवहार पर पारिवारिक पृष्ठभूमि का शायद सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि बच्चे अपना ज्यादातर समय परिवार के भीतर अपने माता–पिता और रिश्तेदारों के साथ बिताते हैं। यदि बच्चे अपने माता–पिता या परिवार के सदस्यों को समान व्यवहार करते हुए पाते हैं, तो वे आपराधिक प्रवृत्तियों को आत्मसात करने के लिए उपयुक्त होते हैं। परिवार की संस्था से बच्चों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की उम्मीद की जाती है। इसलिए, बच्चे को यह महसूस करना चाहिए कि उसे अपने परिवार में एक निश्चित विशेषाधिकार और सुरक्षा प्राप्त है और वह अपने माता–पिता और परिवार के सदस्यों द्वारा प्यार और पसंद किया जाता है। सुरक्षा, गर्मजोशी और निर्भरता की यह भावना बच्चों को प्यार, सम्मान और दूसरों के प्रति कर्तव्य के गुणों को सीखने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार, यह परिवार की संस्था के माध्यम से है कि बच्चा अनजाने में खुद को पर्यावरण में समायोजित करना सीखता है और जीवन के मूल्यों जैसे दूसरों के प्रति सम्मान, विश्वासयोग्यता, भरोसेमंदता और सहयोग को अपने जीवन के अनुभवों के माध्यम से स्वीकार करता है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि एक टूटे हुए परिवार में लाया गया बच्चा आसानी से अपराध का शिकार हो सकता है। मृत्यु, तलाक या माता–पिता के परित्याग या उनकी अज्ञानता या बीमारी के कारण बच्चों पर माता–पिता के नियंत्रण की कमी बच्चों को आपराधिक कृत्यों का सहारा लेने के लिए सुखदायक आधार प्रदान कर सकती है। माता–पिता के बीच बार–बार झगड़े, एक–दूसरे पर अनुचित प्रभुत्व, बच्चों के साथ सौतेला व्यवहार, परिवार में बार–बार जन्म, माता–पिता की अनैतिकता, दुख, गरीबी या अस्वस्थ पारिवारिक माहौल और इस तरह के कारण भी बच्चे की उपेक्षा हो सकती है। और अपनी प्रतिभा के लिए पर्याप्त जगह नहीं मिलने पर, वह अपने जीवन में अपराधी बन सकता है। उपरोक्त सूची में जोड़ने के लिए, बेरोजगारी, कम आय या माता–पिता की आजीविका के लिए घर से लंबे समय तक अनुपस्थिति बाल अपराध के कुछ अन्य कारण हैं।

भारत में सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में क्रांतिकारी परिवर्तन के साथ, परिवार के पैटर्न में आमूल–चूल परिवर्तन आया है। आधुनिक भारतीय गृहिणी की अत्यधिक बाहरी लिप्तता और भारतीय शिक्षित महिलाओं की ओर से नौकरी के पीछे रहने की एक सामान्य प्रवृत्ति ने भारतीय पारिवारिक जीवन के सामंजस्य को बाधित कर दिया है। इस विचार को टाफ्ट की अभिव्यक्ति में समर्थन मिलता है कि घर भावनात्मक तनाव का स्रोत बढ़ रहा है। परिवार की भूमिका में गिरावट आई है और इसके सदस्यों के बाहरी हितों के कारण इसकी आत्मनिर्भरता खतरे में पड़ गई है। आधुनिक पत्नी अब अपने घरेलू कर्तव्यों तक ही सीमित नहीं रह गई है, जिसके परिणामस्वरूप परिवार का आंतरिक अनुशासन पूरी तरह से बिखर गया है। माता–पिता की विभाजित निष्ठाओं के कारण, बच्चे का व्यक्तित्व निराशा, घृणा, ईर्ष्या, प्रतिशोध, उदासीनता और निराशा से छाया हुआ है और घबराहट में वह खुद को अन्य अपराधियों के साथ जोड़ देता है। इस प्रकार

टिप्पणी

देखभाल और स्नेह की कमी, बच्चों की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति न होना और परिवार में उनका दुखद अनुभव उनके जीवन की ओर ले जाता है परिवार से अलगाव और वे आसानी से खुद को आपराधिक दुनिया में उधार दे देते हैं।

कई अपराधियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के बाद, डोनाल्ड टाफ्ट ने निम्नलिखित सामान्यीकरण निकाले जो अपराध के कारणों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं–

(1) अपराधियों के बीच गतिशीलता गैर अपराधियों की तुलना में कहीं अधिक है। दूसरे शब्दों में, अपराधी कानून का पालन करने वाले व्यक्तियों की तुलना में अधिक बार अपना स्थान बदलते हैं।

(2) अपराधी आमतौर पर अपने परिवार, माता–पिता और घरों से दूर रहना पसंद करते हैं।

(3) अपराधियों के घर अक्सर खराब रखरखाव वाले, अस्वच्छ होते हैं और उनके जीवन स्तर का प्रदर्शन खराब होता है।

(4) अधिकांश अपराधियों का पारिवारिक जीवन आमतौर पर बाधित होता है और उनके माता–पिता या तो मर चुके होते हैं, अलग हो जाते हैं या तलाकशुदा हो जाते हैं।

(5) अनुभव से पता चला है कि अधिकांश अपराधी अपने बचपन में माता–पिता द्वारा शारीरिक दंड के अधीन होते हैं। नतीजतन वे अपने परिवार के सदस्यों के लिए शायद ही कोई सम्मान दिखाते हैं।

(6) अपराधियों का एक बड़ा प्रतिशत आमतौर पर अपने भाइयों और बहनों के प्रति शत्रुतापूर्ण और उदासीन होता है।

(7) अपराधियों को निम्नलिखित में से किसी भी तरीके से अपने घरों में आपराधिकता का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है–

- माता–पिता स्वयं आपराधिक कृत्य से जुड़े नहीं हो सकते हैं, लेकिन वे जानबूझकर अपने बच्चों को आपराधिक कृत्यों में शामिल होने से रोकने के लिए बच सकते हैं।
- बच्चे नकल की प्रक्रिया के माध्यम से आपराधिक पैटर्न सीख सकते हैं। वे अपने माता–पिता या परिवार के अन्य सदस्यों से समान व्यवहार सीखना शुरू करते हैं।'
- पेशेवर चोरों, जेबकतरों, वेश्याओं आदि जैसे जीवन के तरीके के रूप में अपराध को अपनाने वाले माता–पिता अक्सर अपने बच्चों को व्यवसाय के लिए प्रशिक्षित करते हैं। हालाँकि, यह सच है कि एक विपरीत प्रक्रिया भी संचालित हो सकती है जहाँ अपराधी माता–पिता यह सुनिश्चित करने के लिए सभी कदम उठाते हैं कि उनके बच्चे उनके नक्शेकदम पर न चलें और आपराधिकता से दूर रहें। एक उदाहरण लेने के लिए, अक्सर यह देखा जाता है कि भारत में वेश्याएं आमतौर पर अपने बच्चों को संदिग्ध पेशे से दूर रखने के लिए इतनी सावधानी बरतती हैं कि वे यह सुनिश्चित करने के लिए सभी सावधानी बरतती हैं कि उनके बच्चों को यह भी पता न चले कि उनकी माँ एक वेश्या है . इसी तरह, अधिकांश कुख्यात डकैत

टिप्पणी

अपने बच्चों को समान आपराधिक लक्षणों का पालन करने से रोकना पसंद करते हैं और उन्हें एक ईमानदार और ईमानदार जीवन जीने के लिए सर्वोत्तम शिक्षा प्रदान करते हैं। उनके रवैये में यह बदलाव शायद हाल के दशकों में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव के कारण हुआ है।

जो लोग आपराधिकता पर पारिवारिक परिवेश के प्रभाव की निंदा करते हैं, वे तर्क दे सकते हैं कि यह परिकल्पना गलत है क्योंकि ऐसे मामले नहीं हैं जब लोग सबसे अधिक दबे–कुचले और दयनीय पारिवारिक परिस्थितियों में समाज के सबसे उपयोगी सदस्य बन गए हैं और प्रतिष्ठित पदों पर आसीन हैं। यह ध्यान दिया जा सकता है कि परिवार आपराधिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कई कारकों में से केवल एक है। इसलिए, यदि एक पतित पारिवारिक परिस्थितियों में रहने वाला बच्चा अन्य परिवेशों को अपने ईमानदार विकास के अनुकूल पाता है, तो वह खुद को उन मानदंडों के अनुसार ढाल लेता है और अंततः कानून का पालन करने वाला नागरिक बन जाता है। इस प्रकार, यदि बच्चे की अन्य स्थितियां उसके ईमानदार जीवन के लिए अनुकूल रहती हैं, तो पतित परिवार के बुरे प्रभावों को अन्य मजबूत ताकतों द्वारा रोक दिया जाता है।

(4) **राजनीतिक विचारधारा** : यह सर्वविदित है कि देश के कानून बनाने वाले सांसद भी राजनेता होते हैं। वे प्रेस और मंच के मीडिया के माध्यम से वांछित तरीके से जनमत जुटाने में सफल होते हैं और अंत में अपनी नीतियों का समर्थन करने के लिए उपयुक्त कानून बनाते हैं इस प्रकार, राजनीतिक विचारधाराएं विधायी प्रक्रिया के माध्यम से ताकत हासिल करती हैं जिससे किसी दिए गए समाज में आपराधिक पैटर्न सीधे प्रभावित होते हैं। गर्भपात कानून का उदारीकरण, निषेध प्रयोगशालाओं को लागू करना या वापस लेना, दहेज विरोधी और अस्पृश्यता कानून आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो यह दिखाते हैं कि कैसे राजनेताओं और सत्ता में सरकार की बदली हुई विचारधाराओं के साथ आपराधिकता की अवधारणा बदल जाती है। विचारधाराओं में परिवर्तन के साथ जो कल तक अवैध और अवैध था, वह आज वैध और कानूनी हो सकता है और इसके विपरीत। कानून–निर्माता सभ्यता और संस्कृति के बदलते मानदंडों को ध्यान में रखते हुए समाज की भलाई के लिए इन परिवर्तनों को उचित ठहराते हैं। एक ठोस उदाहरण लेने के लिए, पति–पत्नी के बीच लिव–इन संबंध जो कुछ साल पहले तक अत्यधिक अनैतिक और अवैध माना जाता था, अब धीरे–धीरे समाज में एक अनुमेय आचरण के रूप में स्वीकार किया जा रहा है और यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसे अवैध मानने से इनकार कर दिया है। यह मानते हुए कि कानून अदालत के बजाय इस मुद्दे पर समाज को निर्णय लेना है।

फिर से, किसी देश में राजनीतिक परिवर्तन नए राजनीतिक अपराधों को जन्म दे सकते हैं। सरकार के कार्यकारी कार्यों में राजनेताओं का अत्यधिक हस्तक्षेप प्रशासकों के साथ–साथ पुलिस के मनोबल को भी कमजोर करता है, जिसके परिणामस्वरूप अपराध–दर में सहज वृद्धि होती है।

1990 के दशक में गठबंधन सरकारों के सत्ता में आने के साथ, सरकार की अस्थिरता भारत में एक सामान्य घटना बन गई है। इसके परिणामस्वरूप, दल–बदल विरोधी कानून फ्लोर–क्रॉसिंग का अवरोधक होने के बजाय निर्वाचित सदस्यों के लिए त्वरित धन कमाने का एक अवसर बन गया। इसने राजनीतिक भ्रष्टाचार का मार्ग प्रशस्त किया, जो सांसदों और विधायकों के लिए एक स्वीकार्य मानदंड बन गया, जिन्होंने सत्ता में सरकार को गिराने या बचाने के लिए पैसा तैयार किया और इसे बैंक में जमा करने में भी संकोच नहीं किया' या अपने तकिए के नीचे नोट बंडल रखें। जैसे–जैसे छोटे दलों का उदय हुआ, गठबंधन की राजनीति अपरिहार्य हो गई। राजनीतिक नेता अपने राजनीतिक दलों को आर्थिक रूप से मजबूत बनाए रखने की प्रवृत्ति रखते हैं और साथ ही साथ भविष्य की अनिश्चितताओं के खिलाफ अपना और अपने परिवार का बीमा करते हैं। इससे राजनेताओं और संगठित अपराधियों के बीच गठजोड़ बढ़ता गया। इसके बाद राजनीतिक नौकरशाही संगठित अपराध गठजोड़ है। एक बार राजनेता इसमें शामिल हो जाते हैं, तो वे कमजोर हो जाते हैं और उन पर प्रक्रिया को दोहराने का लगातार दबाव होता है।

(5) **धर्म और अपराध** : धार्मिक विचारधाराओं में परिवर्तन का किसी विशेष क्षेत्र में अपराध की घटनाओं पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है। यह ठीक ही कहा गया है कि किसी समाज में धर्म की संस्था के माध्यम से नैतिकता को सर्वोत्तम रूप से संरक्षित किया जा सकता है। धर्म का बंधन व्यक्तियों को उनकी सीमा में रखता है और उन्हें पापपूर्ण और आपराधिक कृत्यों से दूर रखने में मदद करता है। आधुनिक समय में धर्म के घटते प्रभाव ने पुरुषों को वह करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया है जो वे बिना किसी संयम या भय के करना चाहते हैं। नतीजतन, वे छोटे भौतिक लाभ के लिए भी आपराधिकता का सहारा लेने से नहीं हिचकिचाते। भारत के हालात को देखें तो हालात और भी बुरे नजर आ रहे हैं। भारत के अधिकांश भागों में धार्मिक स्थल कुरीतियों के संदिग्ध केंद्र बन गए हैं। इन जगहों पर धोखा देना, चोरी करना, शोषण करना और अपहरण करना बहुत आम है।

धर्म के तथाकथित हिमायती, अर्थात इन धार्मिक स्थलों के पुजारी और पंडे, वस्तुतः लुटेरे हैं जो निर्दोष तीर्थयात्रियों को लूटने से नहीं हिचकिचाते। वे खुद को भगवान का एजेंट मानते हैं और वास्तव में असली अपराधियों से ज्यादा खतरनाक हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि धर्म में गहरी जड़ें जमाने वाले अंधविश्वासों के खिलाफ जनमत जुटाया जाए और पुजारियों द्वारा जोर देने वाले अनुष्ठानों और औपचारिकताओं के बजाय धर्म के आध्यात्मिक पहलू पर अधिक जोर दिया जाए। इससे भारत में तीर्थ स्थानों पर होने वाले अपराधों को कम करने में मदद मिलेगी।

इस तथ्य के बावजूद कि सभी धर्म सांप्रदायिक सद्भाव और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की बात करते हैं, इस धरती पर अधिकांश युद्ध धर्म के नाम पर लड़े जाते हैं। ईरान और इराक के बीच आठ वर्षों से अधिक समय से हालिया युद्ध, लेबनान में युद्ध, और उत्तरी आयरलैंड में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच जारी लड़ाई और यहां तक कि भारत में आतंकवादी गतिविधियों को छिपे हुए धार्मिक उद्देश्यों

के नाम पर किया जा रहा है। ये विभाजनकारी ताकतें हत्या और अन्य असामाजिक व्यवहार की घटनाओं के लिए काफी योगदान देती हैं।

(6) **आर्थिक स्थिति** : आर्थिक स्थिति भी आपराधिकता को काफी हद तक प्रभावित करती है। वर्तमान में औद्योगिक प्रगति, आर्थिक विकास और शहरीकरण ने भारतीय घरेलू जीवन को पंगु बना दिया है। परिवार की संस्था इस हद तक विघटित हो गई है कि अपने बच्चों पर माता–पिता का नियंत्रण ढीला हो गया है और इस प्रकार वे अपनी इच्छानुसार व्यवहार करने के लिए स्वतंत्र हो गए हैं। ऐसी परिस्थितियों में, जिनमें आत्म–संयम की कमी होती है, वे आसानी से अपराध के शिकार हो जाते हैं। महिलाओं के रोजगार और उनकी अन्य बाहरी गतिविधियों ने यौन अपराध के अवसरों को बढ़ाया है। फिर से जमाखोरी, अनुचित मुनाफाखोरी, कालाबाजारी आदि जैसे अपराध अनिवार्य रूप से आर्थिक परिवर्तनों का परिणाम हैं। समाज में किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का आकलन करने के लिए आजकल पैसा सर्वोपरि है। समाज के उच्च क्षेत्रों में अपराध पैसे के माध्यम से आसानी से मिटाए जा सकते हैं। हाल के वर्षों में युवाओं में बेरोजगारी, अपराध दर में वृद्धि का एक और कारण है। यदि इन युवाओं की ऊर्जा को सही तरीके से लगाया जाए, तो वे समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते हैं।

यह अब आम तौर पर स्वीकार किया गया है कि आपराधिकता और आर्थिक या गुणवत्ता में आय के साथ–साथ अपराध और बेरोजगारी के बीच भी एक मजबूत संबंध है। लेकिन गरीबी अपने आप में अपराध का एकमात्र कारण नहीं है, यह केवल अपराध के कारण का एक प्रमुख कारक है। यह सामाजिक अव्यवस्था है जो सबसे गरीब लोगों में आपराधिकता के लिए जिम्मेदार है, न कि उनकी गरीबी के लिए। निस्संदेह, बेरोजगारी और आपराधिकता के बीच घनिष्ठ संबंध है। बेरोजगारी संपत्ति अपराधों और किशोरों और युवाओं की गिरफ्तारी दर में वृद्धि से सबसे अधिक निकटता से जुड़ी हुई है। जो लोग बेरोजगार हैं या जिनके पास कम सुरक्षित रोजगार है जैसे कि कैजुअल और ठेका कर्मचारी, उनके आपराधिकता में शामिल होने की अधिक संभावना है।

आपराधिकता पर आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए, प्रो हरमन मैनहेम ने देखा कि 'यदि हम यातायात अपराधों को छोड़ दें, तो दुनिया के आपराधिक कानून प्रशासकों के समय और ऊर्जा का तीन–चौथाई आर्थिक अपराधों के लिए समर्पित होना चाहिए।' अपराध के कारणों में आर्थिक कारकों के महत्व पर ध्यान केंद्रित करते हुए, उन्होंने बताया कि गरीबी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपराध करने में योगदान करती है। हालाँकि, अकेले गरीबी अपराध का प्रत्यक्ष कारण नहीं हो सकती है क्योंकि अन्य कारक जैसे निराशा, भावनात्मक असुरक्षा और इच्छाओं की पूर्ति न होना अक्सर आपराधिक प्रवृत्ति को जन्म देने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

मार्क्सवादी सिद्धांत ने इस बात पर जोर दिया है कि सभी मानव व्यवहार पारिस्थितिक कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं। इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए, फ्रेडरिक एंगेल्स ने अठारहवीं शताब्दी के मध्य में इंग्लैंड में अपराध की

घटनाओं में वृद्धि के लिए वर्ग शोषण के कारण श्रमिकों की दयनीय आर्थिक स्थिति को जिम्मेदार ठहराया। डब्ल्यू. ए. बोंगर ने भी अपराध–कारण की व्याख्या करने में वही दृष्टिकोण अपनाया और जोर देकर कहा कि एक अपराधी पूंजीवादी व्यवस्था का एक उत्पाद था, जिसने स्वार्थी प्रवृत्ति पैदा की। ऐसी व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं से न्यूनतम के बदले में दूसरों से अधिकतम निकालने का प्रयास करता है। इस प्रकार, बैंगर पूंजीवादी व्यवस्था में कई बुराइयों की पहचान करता है जो आपराधिक व्यवहार के प्रसार के लिए जिम्मेदार हैं। दरअसल, रेडिकल क्रिमिनोलॉजी का सिद्धांत इसी अवधारणा पर आधारित है जो आगे बताता है कि अपराध अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण के कारण होता है।

(7) **मीडिया का प्रभाव** : मानव मन को प्रभावित करने में जनसंचार माध्यमों के महत्व पर कुछ विशेषज्ञों द्वारा बार–बार जोर दिया गया है। अनुभव से पता चला है कि संयुक्त ऑडियो–विजुअल प्रभाव के कारण टेलीविजन और फिल्मों का दर्शकों पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। टेलीविजन या सिनेमा हॉल में दिखाए जाने वाले अधिकांश धारावाहिक या फिल्में हिंसा के दृश्यों को दर्शाती हैं जो दर्शकों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं, खासकर युवा लड़के और लड़कियां जो अक्सर अपने वास्तविक जीवन की स्थितियों में उसी की नकल करते हैं। किशोर अपराध की बढ़ती घटनाएं अनिवार्य रूप से हिंसा और अश्लीलता के बुरे प्रभाव और फिल्मों या टेलीविजन में दिखाए गए अवांछित यौन संबंधों का परिणाम है। इसी तरह, अश्लील साहित्य का भी युवाओं के प्रभावशाली दिमाग पर एक हानिकारक प्रभाव पड़ता है जो उनमें आपराधिकता पैदा करता है।

अधिकांश क्रिमिनोलॉजिस्ट मानते हैं कि हिंसक व्यवहार में फिल्मों और टेलीविजन का प्रमुख योगदान है। हाउस ऑफ लॉर्ड्स के ब्रॉडकास्टिंग ग्रुप द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण ने संकेत दिया कि मीडिया हिंसा के संपर्क में आक्रामक व्यवहार के साथ निकटता से जुड़ा हुआ था। लेकिन हेगेल और न्यूबरी ने इसका विरोध किया।

यह देखने के बाद कि अपराधी गैर–अपराधियों की तुलना में फिल्में या टेलीविजन बहुत कम देखते हैं, गिलिन ने मीडिया हिंसा और आपराधिकता के बीच किसी वास्तविक संबंध के बारे में संदेह व्यक्त किया है। उनके अनुसार फिल्में, टीवी और अन्य मीडिया उन लोगों को हिंसा के तरीके सिखाता है जो पहले से ही इसके लिए अतिसंवेदनशील होते हैं लेकिन यह इससे आगे नहीं जाता है।

फर्जी शिक्षण संस्थानों के मशरूम विकास में मदद करने में मीडिया की भूमिका, जो बड़ी संख्या में डिग्री चाहने वालों को धोखा दे रहे हैं, इस संदर्भ में एक विशेष उल्लेख की आवश्यकता है। इन संस्थानों की कार्यप्रणाली सरल है; वे प्रमुख समाचार पत्रों में पूरे पृष्ठ के विज्ञापन छपवाते हैं, फ्रेंचाइजी से भारी रकम और छात्रों से मोटा पाठ्यक्रम–शुल्क एकत्र करते हैं और छात्रों को खुद के लिए छोड़ कर एक बड़ा लाभ कमाते हैं। यह सड़े हुए कंप्यूटर प्रशिक्षण संस्थानों के साथ विशेष रूप से सच है, जो विभिन्न प्रभावशाली नामों के तहत पूरे देश में पनपे हैं। ये 'रात–रात भर' कंप्यूटर संस्थान आकर्षक विज्ञापनों और ऑनलाइन अनुबंधों के माध्यम से छात्रों को लुभा रहे हैं, इसलिए, मीडिया और कंप्यूटर नेटवर्क के दुरुपयोग के माध्यम से इन संस्थानों द्वारा

टिप्पणी

कदाचार को रोकने के लिए एक कानून बनाने की तत्काल आवश्यकता है। एक ठोस उदाहरण लेने के लिए, मुर्तजा मिथानी के पास विनटेक कंप्यूटर्स थे। एक सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षा कंपनी को 1998–99 में धूम के साथ लॉन्च किया गया था। कंपनी ने कथित तौर पर रुपये एकत्र किए। प्रत्येक फ्रेंचाइजी से 10 से 20 लाख। इसी तरह इसने अलग–अलग कोर्स के लिए 15 से 30 हजार तक की फीस ली। अब विनटेक कम्प्यूटर्स के प्रमोटरों का पता नहीं चल रहा है, जिससे हजारों छात्र संकट में हैं। दिल्ली में कंपनी के मुख्यालय की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई है। ऐसा ही हाल मुंबई की एक जैप इंफोटेक कंपनी का है।

इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि हाल के वर्षों में मीडिया का विशेष घटनाओं, कार्यों या व्यवहारों से उत्पन्न खतरों की सार्वजनिक धारणाओं पर एक शक्तिशाली प्रभाव है। हालाँकि, मीडिया की भावनात्मक शक्ति कभी–कभी अतार्किक और गलत निष्कर्ष पर ले जाती है। कई बार हम पाते हैं कि मीडिया में अपराध चित्रण को वास्तविकता को दबाने के लिए जानबूझकर विकृत किया जाता है। फिर से ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब किसी प्रभावशाली व्यक्ति या राजनेता द्वारा किए गए कृत्य को स्पष्ट रूप से आपराधिक या असामाजिक होने के बावजूद कवरेज या निंदा नहीं दी जा सकती है।

शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध

अपराध के पारिस्थितिक पहलुओं को शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में चल रहे विभिन्न प्रकार के अपराधों के विश्लेषण द्वारा सर्वोत्तम रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है। कई अपराध जो शहरी क्षेत्रों में आम हैं, ग्रामीण परिवेश के लिए अज्ञात हैं। शहरी क्षेत्र में उद्योग और वाणिज्यिक गतिविधियों की एकाग्रता ने आप्रवासन, जनसंख्या की गतिशीलता और आवासीय आवास की कमी की समस्याओं को जन्म दिया है। शहरों में परिवहन के त्वरित साधनों की उपलब्धता अपराधियों को पता लगाने और गिरफ्तारी से बचने के बेहतर अवसर प्रदान करती है। झुग्गी–झोंपड़ी क्षेत्रों और गरीबी से त्रस्त घरों में किशोर अपराध, छोटी–मोटी चोरी और यौन अपराध की घटनाएं अधिक आम हैं। इसके अलावा, सफेदपोश अपराधों की पुनरावृत्ति, बैंक–अपराध, धोखाधड़ी, गबन, रैकेटियरिंग और इसी तरह के ज्यादातर अपराध शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित हैं। इसके विपरीत, कुछ अपराध विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित हैं और वे शायद ही कभी शहरों में होते हैं। इस प्रकार फसलों और मवेशियों की चोरी, आगजनी आदि मुख्य रूप से ग्रामीण प्रकृति के अपराध हैं। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अपराधों की घटनाओं पर टिप्पणी करते हुए टाफ्ट का मानना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में किए गए अपराधों की संख्या ग्रामीण आबादी की अधिक समरूपता, कम गतिशीलता और अपराधी के लिए पर्याप्त अवसरों की अनुपस्थिति के कारण शहरों में किए गए अपराधों की तुलना में बहुत कम है। प्रवास के कारण अधिक गतिशीलता, शहरी आवासों में भीड़भाड़, प्रभावी परिवार या सामुदायिक नियंत्रण की अनुपस्थिति और रचनात्मक प्रभावों की कमी शहरी क्षेत्रों में अपराध की बहुलता के मुख्य कारण हैं।

नए शहरों में ग्रामीण प्रवासी आसानी से शहरी जीवन की अवैयक्तिक विविधता को समायोजित करने में असमर्थ हैं। वे अब पारंपरिक मानदंडों और पारिवारिक वफादारी से नियंत्रित नहीं हैं। वे सहयोगियों के बिना बेचैन बन जाते हैं। दुर्खीम के शब्दों में, वे 'असंगठित धूल' की उस दुनिया में छोटे कण बन जाते हैं। इस प्रकार शहरी

टिप्पणी

जीवन की विषमता उनके पहले के अनुकूल सामाजिक संबंधों को नष्ट कर देती है, एक सामाजिक शून्य पैदा करती है जो आपराधिकता के लिए एक उपजाऊ जमीन साबित होती है। ऐसी स्थिति में हिंसा और अपराध बढ़ते हैं।

फिर, ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी अपने शहरी समकक्षों की तुलना में स्वभाव से सरल और कानून का पालन करने वाले होते हैं, शायद निरक्षरता और उनके मामूली जीवन के कारण। इसके अलावा, बाहरी दुनिया के साथ सीमित संपर्क उन्हें आपराधिक जीवन की तकनीकी से अनजान रखता है। आम तौर पर यह माना जाता है कि संपत्ति से संबंधित अपराध मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों में किए जाते हैं जबकि व्यक्ति के खिलाफ अपराध ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक आम हैं। हालाँकि, यह परिकल्पना पूरी तरह से सही नहीं लगती है। संपत्ति अपराध गांवों की तरह कस्बों में भी आम हैं। इसी तरह, व्यक्ति से संबंधित अपराध शहरों और कस्बों में भी उतने ही बड़े पैमाने पर होते हैं जितने ग्रामीण क्षेत्रों में होते हैं।

पड़ोस प्रभाव

आस–पड़ोस के प्रभावों का किसी विशेष इलाके में अपराधों की प्रकृति से भी बहुत कुछ लेना–देना है। इस प्रकार, घनी आबादी वाले क्षेत्र और शहर यौन अपराधों और चोरी, अपहरण, धोखाधड़ी, छल आदि से संबंधित अपराधों के लिए लगातार अवसर प्रदान करते हैं। रेलवे स्टेशनों, बस स्टॉप और अन्य पड़ावों पर जेब काटने के मामले आम हैं। भारत में मंदिरों और पूजा स्थलों में जूते की चोरी बहुत आम है।

जेलों के पारिस्थितिक अध्ययन से आगे पता चलता है कि कुछ प्रकार के अपराध जेल–जीवन के लिए विशिष्ट हैं। उदाहरण के लिए, पारिवारिक जीवन से वंचित होने के कारण यौन आवेगों का विरोध करने में असमर्थता के कारण कैदियों में घरेलू–कामुकता आम है। इसके अलावा, अपराधी भी अक्सर अपना बाहुबल दिखाने और आपराधिकता में अपने कौशल के संबंध में अन्य कैदियों पर श्रेष्ठता स्थापित करने के प्रयास में आपसी झगड़े में लिप्त होते हैं। हिंसक अपराधी अक्सर जेल की संपत्ति को नष्ट करने का सहारा लेते हैं और छोटे मुद्दों पर जेल अधिकारियों को अपमानित करते हैं।

इन अपराधी क्षेत्रों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता पड़ोस में कुछ असामाजिक संस्थाओं का स्थान है। इनमें जुआघर, वेश्यालय और इसी तरह के अन्य संदिग्ध संस्थान शामिल हैं। दोषों के ये क्षेत्र अपराध–ग्रस्त हैं और संगठित अपराधियों के लिए एक उपजाऊ जमीन प्रदान करते हैं। आस–पास के इलाके के निवासी इन शातिर गतिविधियों से आसानी से प्रभावित होते हैं और इस तरह खुद को आपराधिक जीवन में उतार देते हैं।

हाल ही में, अपराध की पारिस्थितिकी के साथ मनोरंजन के कुछ स्थानों को सहसंबंधित करने की प्रवृत्ति रही है। सिनेमा थिएटर, स्विमिंग पूल, खेल के मैदान और रेस–कोर्स आम तौर पर अपराध के लिए अनुकूल माहौल प्रदान करते हैं। लेकिन यह तथ्यों का एक निरीक्षण है। वास्तव में, इन स्थानों पर अपराध की आवृत्ति का उनके स्थान से बहुत कम लेना–देना है। वास्तव में यह पर्यावरण है न कि पारिस्थितिक प्रभाव जो इन स्थानों पर अपराध उत्पन्न करता है। इसके अलावा, समाज के कानून का पालन करने वाले सदस्यों की काफी बड़ी संख्या है जो मनोरंजन के इन स्थानों में अपराधियों के संपर्क में आने के बाद भी अपराधी नहीं बनते हैं।

1.2.4 विचलन, अपराध और अपचारिता

सामाजिक–वैज्ञानिक समुदाय के क्षेत्र में, विचलन, अपराध और अपचारिता की परस्पर जुड़ी तिपाई को सामाजिक घटना के रूप में माना जाता है; वे मूल्य–आधारित अवधारणाएं हैं जो सापेक्ष हैं, दूसरे अर्थ में, समय से समय, स्थान से स्थान और व्यक्ति से व्यक्ति तक। उन्हें एक जटिल और गतिशील सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में स्थापित करने का प्रयास करने पर ये घटनाएं प्रासंगिक और परिस्थितिजन्य हैं। विचलन, अपराध और अपचारिता को कई अलग–अलग तरीकों से परिभाषित किया गया है और इसलिए इनको बेहतर रूप से समझने के लिए एक विशेष संदर्भ में स्थापित किया जा सकता है।

विचलन का तात्पर्य सामाजिक मानदंडों के अनुपालन की कमी से है, जैसे कि ऐसी गतिविधियों में शामिल होना जो समाज द्वारा ठुकरा दी जाती हैं और अक्सर कानूनी प्रतिबंध भी होते हैं, उदाहरण के लिए, ड्रग्स का अवैध उपयोग। जबकि, एक स्वाभाविक व्यक्ति या संस्था द्वारा किसी दायित्व को निभाने में विफल रहने को अपचारिता कहा जाता है, यह एक लघु अपराध है, विशेष रूप से एक युवा द्वारा किया गया। दूसरे अर्थ में, यह सामान्य उपेक्षा है, विशेष रूप से किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो औपचारिक पद धारण करता है। अपचारिता शब्द एक अदत्त ऋण को भी सम्बद्ध करता है। इसका तात्पर्य ऐसे आचरण से है जो समाज के कानूनी या नैतिक मानकों के अनुरूप नहीं है। उदाहरण के लिए, एक किरायेदार जो किराये के भुगतान में चूककर्ता है या एक निगम जो ऋण चुकाने में चूककर्ता है।

हालांकि, अपराध, विचलन और अपचारिता कारित करने के साथ–साथ उनकी रोकथाम और नियंत्रण व्यापक रूप से समाज की उपज है और प्रत्येक को प्रमाणिक होना चाहिए। अपराध की रोकथाम और नियंत्रण को नीतियों के कार्यान्वयन पर किसी भी सार्थक प्रभाव के लिए साक्ष्य–आधारित होना चाहिए और एक स्थायी सामाजिक व्यवस्था के लिए पूर्वापेक्षाओं के रूप में अंतरराष्ट्रीय मापदण्डों को भी पूरा करना चाहिए क्योंकि अपराध की रोकथाम और नियंत्रण पर नई नीति पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य नीतियों के साथ एकीकृत होती है। एक सामाजिक घटना के रूप में अपराध एक विधिक व्यवस्था के उल्लंघन से संबंधित कोई भी गलत कार्य है; इसके साथ आपराधिक परिणाम जुड़े हुए हैं और दोषकर्ता को दण्ड दिए जाने की संभावना है।

आम तौर पर, हालांकि, सभी समाजों में कुछ मानदंड, मूल्य, विश्वास प्रणाली, रीति–रिवाज और परंपराएं होती हैं जो सामाजिक रूप से निर्मित होती हैं और इसके सदस्यों द्वारा उनकी भलाई और पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता के लिए अनुकूल रूप से स्वीकार की जाती हैं। इन पोषित मानदंडों और रीति–रिवाजों के उल्लंघन को असामाजिक करार दिया गया है और कुछ मामलों में विचलित व्यवहार और/या अपराध; परन्तु सभी कुछ उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें व्यक्तिगत अपराध हुआ था। विचलित व्यवहार में, किए गए कृत्य को उन लोगों द्वारा देखा जाना चाहिए जो इस कृत्य को देखने और विचलित होने का अनुभव करने के बाद दूसरों को सूचित करें। जिन व्यक्तियों को वे सूचित करते हैं, उन्हें भी कृत्य को विचलित करने वाला घोषित करना चाहिए। इसके विपरीत, विधिक पहलू अपराध को ऐसे किसी भी प्रकार के आचरण के रूप में परिभाषित करता है जिसे किसी राज्य द्वारा सामाजिक रूप से

हानिकारक घोषित किया जाता है और वास्तव में कुछ दंड के भय के साथ विधि द्वारा निषिद्ध किया जाता है।

किशोर अपचारिताओं, युवा अपराधियों और वयस्क आपराधिक वर्ग का विभेदक विश्लेषण (Differential Analysis of Juvenile Delinquency, Young Person Offenders and Adult Criminal Typology)

अपचारिता और युवा व्यक्ति के अपराधों को किशोर और युवा व्यक्ति अधिनियम के रणनीतिक संदर्भ और ट्रैविस हिर्शी (1969) द्वारा किए गए एक अध्ययन के निष्कर्षों के अंतर्गत समझा जा सकता है। ट्रैविस हिर्शी के सामाजिक नियंत्रण सिद्धांत ने इस बात का सबूत दिया कि किशोर अपराध माता–पिता के साथ लगाव, स्कूल में प्रदर्शन और पारिवारिक तनाव से जुड़ा हुआ है, जिससे कई सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं, जिससे परिवार के बीच असामंजस्य पैदा होता है, इसलिए इसको टूटे हुए घर के रुप में वर्गीकृत किया जाता है। किशोर अपचारिता का एक अन्य कारण पारंपरिक संस्थानों और कार्रवाई की दिशाओं के प्रति कम लगाव और समाकलन है। ट्रैविस हिर्शी के सामाजिक नियंत्रण के सिद्धांत को डेविड ग्रे (1970) जैसे कई अध्ययनों द्वारा समर्थित किया गया है।

हालाँकि, किशोर और युवा व्यक्ति अधिनियम स्पष्ट रूप से एक बच्चे, किशोर या एक युवा व्यक्ति को एक वयस्क से अलग परिभाषित करता है, और विधिक संरचना के क्षेत्र में उनकी सुरक्षा का भी प्रावधान करता है। पुनः, जब एक बच्चे का उल्लेख किया जाता है तो, जो सुगमता से स्मरण में आता है वह है सिगमंड फ्रायड। एक मनोविश्लेषक और एक चिकित्सक, सिगमंड फ्रायड, जिन्होंने एक बच्चे की संवृद्धि और विकास और आपराधिक प्रवृत्ति की संभावना, जो बाद के समय यानी वयस्कता में समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान सामाजिक मूल्यों और अपेक्षित सांस्कृतिक मानकों को विकसित करने में अभावों और सामाजिक गतिशीलता के कारण प्रकट हो सकती है, का वर्णन करने के लिए बाल विकास और व्यक्तित्व संरचना के सिद्धांत को चरणबद्ध रूप से प्रतिपादित किया।

एक बच्चा वह होता है जिसकी आयु 0–7 वर्ष के बीच होती है और एक किशोर वह होता है जिसकी आयु 18 वर्ष से कम होती है; और वे पूरी तरह से विधि द्वारा संरक्षित हैं। हालाँकि, एक युवा व्यक्ति 18 वर्ष से अधिक किन्तु 20 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति होता है। एक वयस्क 20 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति है। इस स्तर पर किए गए एक गंभीर सदोष कार्य को अपचारी व्यवहार के बजाय अपराध माना जा सकता है। अपचारी व्यवहार वह अनियंत्रित चरित्र है, जिसमें बच्चे को हिरासत में नहीं लिया जा सकता है, जबकि अपराध एक युवा व्यक्ति या वयस्क द्वारा किया गया कार्य है।

इसी तरह, जॉन ई. कोंकलिन (1998) का मानना है कि लैमर एम्पी और स्टीवन ल्यूबेक (1971) द्वारा किए गए किशोर अपचारिता के एक अध्ययन को ट्रैविस हिर्शी द्वारा किशोर अपचारिता के सामाजिक नियंत्रण सिद्धांत के लिए कुछ समर्थन मिला, जिसे उन्होंने सुदृढ़ किया। इसमें लड़कों के कुछ समूह लिए गए जिन्हें किशोर न्यायालय में 'अपचारी' घोषित किया गया था और लड़कों का एक अन्य समूह जिन्हें इस रुप में नामांकित नहीं किया गया था। उन्होंने दोनों समूहों को मिला दिया फिर उन सामान्य

टिप्पणी

कारकों की खोज की जो अपचारी को गैर– अपचारी लड़कों से अलग करते हैं। इस तरह के अध्ययन को 'तुलनात्मक अध्ययन' कहा जाता है और यह सामाजिक वैज्ञानिक जांच में प्रयोग का रूप भी ले सकता है। एम्पी और लुबेक ने अपने अध्ययन का निष्कर्ष निकाला कि निम्न वर्गीय स्थिति स्कूल से लगाव को कम करती है जो तनाव पैदा करती है जो अंततः साथियों के साथ पहचान की ओर ले जाती है और यह यथाक्रम में लड़कों को अपचारिता की ओर ले जाती है। परिवार जैसे संस्थानों में एकीकरण की कमी और स्कूलों में निम्न प्रदर्शन के साथ–साथ पारिवारिक स्तर पर सामंजस्य की कमी और टूटे हुए घर संभावित कारक हैं जो किशोर अपचारिता का कारण बनते हैं जैसा कि कोंकलिन (1998) ने उल्लेख किया है। यदि 18 वर्ष से कम आयु के एक किशोर को वारंट के साथ या उसके बिना अपचारी व्यवहार के लिए पकड़ा जाता है, तो उसे संक्षिप्त क्षेत्राधिकार के न्यायालय के समक्ष नहीं लाया जा सकता है (अंग्रेजी विधि में, यह विधि के उस न्यायालय को संदर्भित करता है जिसका अधिकार क्षेत्र एक संक्षिप्त कार्यवाही है, जिसका अर्थ है कि न्यायालय के पास एक परीक्षण या अन्य प्रक्रियाओं की आवश्यकता के बिना "निर्णय" या "आदेश" जारी करने का अधिकार है, जिसके लिए एक बेहतर न्यायालय को परामर्श की आवश्यकता होती है)। आमतौर पर, पुलिस थाने का प्रभारी पुलिस अधिकारी, जहां ऐसे किशोर या युवा अपराधी को लाया जाता है, उसे विधि के अंतर्गत ऐसे अपचारी व्यवहार के लिए प्रदान किए गए निरोध के स्थान पर निरुद्ध करेगा। 'किशोर अपचारिता' की संज्ञा उन लोगों पर भी लागू होती है जो प्रतिष्ठा अपराध कार्य करते हैं, जैसे कि कम उम्र में शराब पीना, घर से भाग जाना या कामचोरी करना। हालांकि, किशोर न्यायालयों को मूल रूप से अनौपचारिक कल्याण अभिकरणों के रूप में गठित किया गया था जो ऐसे परामर्श और चिकित्सा का प्रावधान करते थे जो कि किशोर अपचारियों की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किए गए थे।

विचलन, अपराध और अपचारिता तथा उसके सामाजिक संबंधों को मापने के लिए उपकरण (Apparatus to gauge Deviance, Crime and Delinquency and its Social Relations)

अपराध की कुछ विशेषताएं हैं जिनकी तुलना विचलन और अपचारिता से की जा सकती है। एन. वी. परांजपे (2011) ने बताया कि अपराध एक विधि विरुद्ध कार्य या लोप है जो देश की विधि के अंतर्गत दंडनीय अपराध है। अपराध का आकलन करने के लिए मुख्य उपकरण में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

बाहरी परिणाम (External Consequences): अपराध का समाज पर हमेशा हानिकारक प्रभाव पड़ता है, चाहे वह सामाजिक, व्यक्तिगत, भावनात्मक या मानसिक हो।

एक कार्य और/या दोषपूर्ण कार्य (An Act and/or Actus-reus): एक अपराध का गठन करने के लिए कोई कार्य या लोप होना चाहिए। अनिवार्य रूप से, दोषपूर्ण कार्य वह बल है जो पीड़ा, टूट–फूट कारित करता है। यह एक सशक्त कार्य है जिसे नकारात्मक असामाजिक व्यवहार के रूप में चिह्नित किया जाता है। दोषपूर्ण कार्य अकेले अपराध नहीं बन सकता जब तक कि उसके साथ कोई बाहरी या प्रत्यक्ष क्रिया न हो। सामान्य रूप से, कुछ करने के लिए प्रतिबद्ध होना अपराध के दोषपूर्ण कार्य की कोटि में नहीं आएगा; आपराधिक विधि सामान्य रूप से व्यक्तियों को आचरण के लिए दंडित करता है न कि निष्क्रियता के लिए।

आपराधिक मनःस्थिति (Mens–rea or Guilty Mind): आपराधिक मनःस्थिति अपराध के आवश्यक तत्वों में से एक है। हालाँकि, यह प्रत्यक्ष या निहित हो सकता है। निहित आपराधिक मनःस्थिति को अन्यथा रचनात्मक आपराधिक मनःस्थिति कहा जाता है। आपराधिक मनःस्थिति का तात्पर्य है कि एक दोषपूर्ण कार्य के संबंध में मन की स्थिति होनी चाहिए, अर्थात एक निर्धारित शैली से कार्य करने का आशय। हालाँकि, 'आपराधिक मनःस्थिति' का 'हेतु' से भेद करना महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति भूख से मर रहे बच्चे को खिलाने के लिए किसी की बेकरी से एक रोटी चुराता है, तो यहाँ चोरी करने का हेतु अधिक सम्मानजनक और समझने योग्य है। आपराधिक मनःस्थिति चोरी करने के लिए है और व्यक्ति को इसके लिए दोषी ठहराया जाएगा, लेकिन दण्ड में उसके हेतु को ध्यान में रखा जा सकता है और उसे जीवन बचाने के अपने हेतु के कारण कम गंभीर दण्ड दिया जा सकता है। जैसा कि परांजपे (2011) द्वारा समीक्षा की गयी है, दण्ड निर्धारित करते समय हेतु को ध्यान में रखा जाना चाहिए, न कि आपराधिक मनःस्थिति के प्रश्न को तय करते समय।

प्रतिषिद्ध कार्य (Prohibited Act): कार्य को विद्यमान दण्ड विधि के अंतर्गत प्रतिषिद्ध होना चाहिए। कोई कार्य, चाहे वह कितना भी अनैतिक क्यों न हो, तब तक अपराध नहीं होगा जब तक कि वह देश की विधि द्वारा प्रतिषिद्ध न हो।

दण्ड (Punishment): अपराध का गठन करने के लिए कार्य को न केवल विधि द्वारा प्रतिषिद्ध किया जाना चाहिए, बल्कि राज्य द्वारा दण्डनीय भी होना चाहिए। दण्ड आमतौर पर अधिकतम के रूप में निरूपित किया जाता है, और किसी विशेष मामले में वास्तविक दण्ड निर्धारण न्यायाधीश के विवेक पर छोड़ दिया जाता है। बचाव पक्ष और अभियोजन दोनों को दण्ड की मात्रा के विरुद्ध अपील करने का अधिकार है।

पाप और अपराध (Sin and Crime): पाप और अपराध की अवधारणा परस्पर जुड़ी हुई हैं, लेकिन उनके दायरे, परिणाम, परिवर्तनशील सामग्री और वातावरण में मौलिक रूप से भिन्न हैं। पाप की अवधारणा धर्म से निकलती है और इसे एक उच्च अस्तित्व और अपेक्षा के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, जबकि अपराध मनुष्यों द्वारा संगठित और नियम–आधारित समाजों में एक विधिक प्रस्थापना है। पाप का परिणाम धर्म या नैतिकता के नियमों का उल्लंघन होता है जबकि अपराध में विधि का उल्लंघन सम्मिलित होता है। एक पापी को भगवान द्वारा दंडित किया जाता है लेकिन एक अपराधी को राज्य द्वारा दंडित किया जाता है। पाप के मामले में प्रत्यक्ष क्षति हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है लेकिन अपराध में किसी प्रकार की प्रत्यक्ष क्षति सम्मिलित होती है। एक पाप के लिए उपाय माफी मांगना है, जहां एक अपराध करने वाले व्यक्ति को विधि अदालत द्वारा दण्ड की अवधि के अधीन किया जाता है। किन्तु एक व्यक्ति जो अपराध करता है उसे विधि के न्यायालय द्वारा दण्ड दिया जाता है।

अपराध और नैतिकता (Crime and Morality): 'अपराध' शब्द लैटिन शब्द 'क्रिमोस' से लिया गया है जिसका अर्थ है आरोप लगाना। इसमें उन कृत्यों को सम्मिलित किया गया है जो सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध हैं और समाज द्वारा अस्वीकृति और निंदा के पात्र हैं।

टिप्पणी

विचलन, अपराध और अपचारिताः एक अपराध–शास्त्री, अन्य शिक्षाविदों और एक साधारण व्यक्ति की धारणा (Deviance, Crime and Delinquency: Perception of a criminologist] other academics and an ordinary person)

विचलन, अपराध और अपचारिता की अवधारणाओं को कई विद्वानों द्वारा विभिन्न रूप से परिभाषित किया गया है; हालाँकि, कोई भी परिभाषा इन सभी को सम्मिलित नहीं करती है। इसलिए, किसी व्यक्ति की बढ़ती क्षमता और समाज के बदलते दबाव, अर्थात एक व्यक्ति की समाजीकरण प्रक्रिया की प्रकृति और संस्थानों व समूहों से सामाजिक संबंध के बीच महत्वपूर्ण टकरावों की निरंतर शृंखला के रणनीतिक संदर्भ पर विचार किया जाना चाहिए। परांजपे (2011) के अनुसार, एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूहों को अपराधी या अपचारी के रूप में जो परिभाषित करता है वह है नागरिक का क्षति कारित करने का आशय और हेतु या समाज द्वारा निर्धारित मानकों का अनुपालन करने में अक्षमता और उनके उल्लंघन जिनको या तो अपराध या अपचारिता के रूप में परिभाषित किया गया है।

इसी तरह, उपरोक्त धारणा के एक परिणाम के रूप में, सैलमाउंड (1967) ने अपराध को समाज में एक व्यक्ति के आचरण को नियंत्रित करने वाली कार्रवाई के नियमों के एक समूह के उल्लंघन के रूप में परिभाषित किया है। किसी भी समय और स्थान पर विधि द्वारा निषिद्ध आचरण को विचलन, अपराध या अपचारिता के दोषपूर्ण कृत्यों के रूप में जाना जाता है, इसके विपरीत, जो विधि के अंतर्गत अनुमेय हैं उन्हें वैध कृत्यों के रूप में माना जाता है। अपराध करने के दोषी पाए जाने वाले को देश के आपराधिक विधि के अंतर्गत दंडित किया जाता है। टप्पन (1953) के अनुसार, "अपराध, एक जानबूझकर किया गया कार्य या औचित्य है जिसे विधि द्वारा या तो गुंडागर्दी या दुराचार के रूप में दंडित किया जाता है"। जबकि, केनी (1842) ने अपराध को दोषपूर्ण कार्य के रूप में परिभाषित किया है, जिनका आश्रय दंडात्मक है और किसी भी निजी व्यक्ति द्वारा किसी भी तरह से क्षम्य नहीं है, किन्तु केवल ताज (राज्य) के द्वारा क्षम्य है, यदि थोड़ा भी संभव है तो। एक अन्य दृष्टिकोण से, रोस्को पाउंड (1976) ने टिप्पणी की कि अपराध की अंतिम परिभाषा असंभव है क्योंकि विधि एक जीवित और बदलती वस्तु है जो एक समय में सार्वभौम इच्छा पर आधारित हो सकती है और दूसरी बार न्यायिक विज्ञान पर, जो एक समय में समरूप हो सकती है और किसी अन्य समय में न्यायिक विवेक के लिए बहुत अधिक स्थान प्रदान कर सकती है। आइसेंक (1964) के अनुसार, "यह एक समय में अपने निर्धारण में अधिक विशिष्ट और दूसरे समय में बहुत अधिक सामान्य हो सकता है" (अर्थात विचलन, अपराध और अपचारिता की सापेक्ष प्रकृति)।

विचलन, अपराध और अपचारिता की आलोचनाएं और नई परिभाषा (Criticism and New Definition of Deviance] Crime and Delinquency)

प्रतिदिन के जीवन का अपराध–शास्त्र 'कार्यशील अपराध–शास्त्र' की आधारशिला बनाता है और यह आने वाले प्रत्येक समाजशास्त्री और अपराधशास्त्री के लिए चिंता का विषय होना चाहिए। उल्लिखित सभी लोगों की परिभाषाएं कुछ हद तक संकीर्ण थीं क्योंकि वे उस विषय–वस्तु के रणनीतिक संदर्भ को पहचानने में विफल रहे हैं जो

उनकी विचलन, अपराध और अपचारिता की परिभाषाओं में 'सामाजिक' को दर्शाता है। परिभाषाएँ समाजशास्त्रीय अवधारणाओं, परिवर्तनशील सामग्री और अपराध संबंधी निर्माणों के महत्व को पहचानने में भी विफल रहीं, संभवतया, मुख्य रूप से उनके मूल्य अभिविन्यास के कारण। इसलिए, 'सामाजिक' का विरोध करने की स्थिति ने विचलन, अपराध और अपचारिता की समाजशास्त्रीय और/या आपराधिक परिभाषाओं पर ज्ञान प्राप्त करने के पक्ष में परिभाषित अपराध और पद्धतिगत दावों की उनकी अवधारणाओं में समाजशास्त्रीय अनिवार्यताओं को कम कर दिया है। कुछ सीमा तक, उपरोक्त परिभाषाएं अपराध वृत्तांत की अवधारणा की समीक्षा के लिए अच्छे संसाधन सामग्री के रूप में कार्य कर सकती हैं, हालांकि, वे उस विषय–वस्तु के पृथक्करण में प्रतीत होती हैं जो 'सामाजिक' को दर्शाती हैं।

हालांकि, वे समाजशास्त्र की विषय–वस्तु के पृथक्करण में रहते हैं जो मानव समाज में विचलन, अपराध और अपचारिता के लिए व्यक्तियों और समूहों की सामाजिक क्रिया है। अपराधशास्त्र के छात्रों के रूप में हम जो देखते हैं और सर्वोपरि मानते हैं, जहां तक समाज के संबंध में विचलन, अपराध और अपचारिता की परिभाषा का संबंध है, लेखक और समाजशास्त्रीय अवधारणाओं और समाज में सामाजिक समस्याओं के रूप में अपराध, विचलन और अपराध की घटनाओं के लिए उसके एकीकरण की दिशा में सक्षम उसकी समाजशास्त्रीय या आपराधिक मानसिकता का दृष्टिकोण है और इसलिए दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए।

समाज में विचलन, अपराध और अपचारिता की अवधारणा की परिभाषा में 'समाजशास्त्रीय अवधारणाओं (सामाजिक और सांस्कृतिक) और उनके एकीकरण' की आवश्यकता पर समकालीन अपराधशास्त्री साद (1995) और इब्राहिम, व अन्य (2010) द्वारा बल दिया गया है। विविध सामाजिक–सांस्कृतिक बहुलवादी समाजों में अंतर्निहित पारंपरिक मान्यताओं और मूल्य प्रणालियों को रेखांकित करने वाले सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों पर सम्मिश्रण और बल विचलन, अपराध और अपचारिता की किसी भी परिभाषा में इसकी समाजशास्त्रीय अनिवार्यताओं के लिए फिर से प्रतिध्वनित किया गया है।

साद (1995) और इब्राहिम, व अन्य (2010) ने 'आज समाज में विचलन और अपराध की अवधारणा को समझा' पर अपने अलग–अलग शोधों में अपराध और विचलन की विधिक परिभाषा को विशेषता देकर एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने बाद में, संयुक्त रूप से और एक ही स्वर में, अपराध और विचलन के विधिक परिप्रेक्ष्य पर कड़ी आलोचना की। साद (1995) और इब्राहिम, व अन्य (2010) ने अपराध और विचलन की विधिक परिभाषा की अपर्याप्तता का पता लगाया और इसकी सही विशेषता बताकर उजागर किया। उनके अनुसार, अपराध के बारे में बात करने की कोई आवश्यकता नहीं है जहां कोई राज्य नहीं है; जहां कोई विधि नहीं है; जहां कोई क्षमता नहीं है; जहां कोई आशय नहीं है और यह कहकर इसे सारांशित किया गया है कि, कोई अपराध नहीं है जहां आपराधिक न्याय प्रणाली द्वारा कृत्य को उचित नहीं ठहराया जाता है। यहां तक कि अगर कृत्य किया गया है, तो उन्होंने कहा, जब तक कि आरोपी व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जाता है और दण्ड नहीं दिया जाता है, उस व्यक्ति को

टिप्पणी

दोषी साबित होने तक निर्दोष माना जाता है। हम अपराध और/या विचलन की परिभाषाओं के दिए गए समूहों को परिभाषित करने वाले कार्यप्रणाली सूचकांकों से समान रूप से चिंतित हैं ताकि परिभाषा को किसी प्रकार की बौद्धिक समाजशास्त्रीय और/या अपराधशास्त्रीय विश्वसनीयता प्रदान की जा सके। कोई भी परिभाषा जो अपराध और आपराधिकता को स्थापित करने के लिए विधि के उल्लंघन के संबंध में समाज के सभी या लगभग सभी पहलुओं का व्यापक व्याप्ति देने में विफल रहती है, वह चूक जाती है और इसलिए, अपर्याप्त है।

फिर भी, जब दोषपूर्ण कार्य और आपराधिक मनःस्थिति के घटक स्थापित होते हैं तो एक अपराध होना कहा जाता है, ये दो तत्व अपराध की परिभाषा का आधार बनते हैं और इसके अभिन्न अंग बने रहते हैं। इस दृष्टिकोण से, दो चीजें यहां पूर्वनिर्धारित हैं: एक है 'सकारात्मक आचरण' और दो 'निष्क्रियता', दूसरे शब्दों में, अव्यक्त और प्रकट क्रिया। प्रकट क्रियाएं दोषपूर्ण कार्य को दर्शाती हैं और गुप्त क्रियाएं आपराधिक मनःस्थिति को दर्शाती हैं। पहले वाला अनुभवजन्य रूप से सत्यापन योग्य है जबकि बाद वाला व्यक्तिपरक व्याख्या के प्रति भेद्य है। दोषपूर्ण कार्य, जो सकारात्मक आचरण को दर्शाता है, स्थापित किया जा सकता है, लेकिन आपराधिक मनःस्थिति, जो निष्क्रियता है, विषयगत रूप से भारित है और वास्तविकता के साथ संपर्क का अभाव है और इसलिए, पर्याप्त रूप से और अनुभवजन्य रूप से मापा और / या सत्यापित नहीं किया जा सकता है और इसलिए इसका कोई प्रभाव नहीं है। आपराधिक मनःस्थिति की प्रभावशीलता पीठासीन न्यायाधीश के विशेषाधिकार पर है। दोषपूर्ण कार्य की इस द्वंद्वात्मकता में, आपराधिक मनःस्थिति के साथ अपराध के संश्लेषण के रूप में, 'अपराध' की अवधारणा को एक गतिशील असामाजिक व्यवहार कहा जाता है जिसमें दो मूलभूत तत्व सम्मिलित होते हैं जिनमें से एक में क्रियाओं की सकारात्मक रेखा दिखाई देती है जिसे सत्यापित किया जा सकता है और अनुभवजन्य रूप से मापा जाता है (दोषपूर्ण कार्य), जबकि अन्य तत्व में क्रियाओं की अव्यक्त व्यक्तिपरक रेखा (आपराधिक मनःस्थिति) होती है जो विषयपरक रूप से भारित होती है और इस प्रकार वास्तविकता के साथ संपर्क का अभाव होता है। इसी तरह, आपराधिक मनःस्थिति पर, विधिक कार्यवाही की जटिलताओं और गतिशीलता और इस प्रकार किए गए अपराध की प्रकृति, प्रतिरूप और प्रवृत्ति और समाज पर इसके प्रभाव के आसपास की सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, यह न्यायाधीश का विशेषाधिकार है कि वह आकलन करे या दण्ड के स्तर पर आपराधिक मनःस्थिति के तत्व को मापे और समान रूप से परिमाणित करे और आगे बढ़े।

अपराध और/या विचलन की एक नई समाजशास्त्रीय और/या आपराधिक परिभाषा (A New Sociological and / or Criminological Definition of Crime and / or Deviance)

अपराध और/या विचलन को जनता या राज्य के विरुद्ध नकारात्मक परिणामों के साथ एक कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके लिए किसी भी उचित संदेह से परे अपराध की पूर्ण स्थापना की आवश्यकता होती है। यह स्थिर स्थितियों के विपरीत एक जटिल और गतिशील असामाजिक व्यवहार है और विचलन या अपचारी

व्यवहार के रूप में अपेक्षाकृत प्रासंगिक है। अपराध में समाज के सदस्यों को बाध्य करने या पीड़ा देने के आशय और हेतु के साथ बल का व्यावहारिक अनुप्रयोग अंतर्ग्रस्त करता है, जिससे समाज की स्थिर सामाजिक–राजनीतिक और उत्कृष्ट संरचना को बाधित करने में सक्षम परिदृश्य तैयार होते हैं, जो उस समाज के सदस्यों की सामूहिक भावनाओं और प्रतिनिधित्व को कम करने में सक्षम होते हैं।

किसी भी समाज में अपराधों को नियंत्रित करने के लिए विधि आपसी सहमति और सामाजिक एकजुटता, ईमानदारी, दया और सामाजिक एकता के वैचारिक सिद्धांतों की धुरी पर घूमते हैं। एक अपराध के अपराधी को सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय द्वारा स्थापित अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होना चाहिए, और उसे समाज के सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने और क्षेत्र की विधियों द्वारा मान्यता प्राप्त एक अत्यधिक विषम मानव स्थापना के शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न करने के लिए एक निवारक के रूप में वैध दंड प्राप्त होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पीड़ित और अपराधी दोनों एक ऐसे भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं, जिसे राज्य की विधियों के लिए जाना जाता है और इसी रूप में मान्यता प्राप्त है।

विचलन, अपराध और अपचारिताः सैद्धांतिक स्थितियों पर इसके विविधतापूर्ण आख्यान और आयाम (Deviance] Crime and Delinquency: Its Diversifying Narratives and Dimensions on Theoretical Positions)

यह आम तौर पर स्वीकार किया गया है कि अपराध विभिन्न कारकों का एक उत्पाद है जिसे बेंथम (1847) द्वारा प्रतिपादित पीड़ा और आनंद की सुखवादी गणना के आधार पर हमेशा समझाया नहीं जा सकता है। सुधारात्मक तकनीकों के आपराधिक प्रभावों में सुधार करने की आवश्यकता है ताकि अपराधियों का पुनः समाजीकरण किया जा सके और सुधार लाया जा सके।

अपराध और/या विचलन की अवधारणा के संबंध में निम्नलिखित सामान्यीकरणों को सारांशित करना, अपराध विज्ञान और दंडशास्त्र के क्षेत्र में बाद के विकास को समझने में उपयोगी साबित हो सकता है।

अपराध और सामाजिक नीति परस्पर संबंधित हैं और अपराध और दंड की अवधारणा अत्यधिक हद तक एक निश्चित समय में सामाजिक मूल्यों, स्वीकृत मानदंडों और किसी विशेष समाज के व्यवहार प्रतिरूप पर निर्भर करती है।

समाज की तरह, अपराध भी एक अलग विषय है, जो सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन के साथ बदल रहा है। आज जो अपराध बनता है वह कल एक अनुमेय आचरण बन सकता है।

अपराध एक सापेक्ष शब्द है; इसलिए, जो दोषपूर्ण है और जिसे एक जगह अपराध माना जाता है, जरूरी नहीं कि वह दूसरी जगह भी हो। उदाहरण के लिए, व्यभिचार भारतीय समाज में एक आपराधिक दोष है, लेकिन इंग्लैंड में यह केवल एक व्यावहारिक दोष है जो क्षतिपूर्ति के भुगतान से व्युत्पन्न योग्य है।

अपराध के विधि और आपराधिक ज्ञान का उद्भव सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों के अनुरूप प्रगति की एक निश्चित प्रक्रिया के माध्यम से हुआ है। उदाहरण के लिए, अब से पहले, नाइजीरिया में आतंकवाद विरोधी अधिनियम जैसा कुछ नहीं था,

लेकिन हाल के दिनों में मानव समाज के विकास और उससे जुड़ी सामाजिक समस्याओं और समाधान की तलाश के कारण, संसद के अधिनियम हैं कई देशों में उग्रवाद और आतंकवाद की ज्यादतियों को कम करना।

टिप्पणी

मानव जीवन की आधुनिक जटिलताओं ने अपराध की बढ़ती घटनाओं में योगदान दिया है, लेकिन यह बढ़ती प्रवृत्ति आश्चर्यजनक नहीं है। वास्तव में अपराध रहित समाज के बारे में सोचना एक मिथक है। आधुनिक अपराधशास्त्री यहां तक कि अपराध में वृद्धि को सामाजिक प्रगति के लक्षण के रूप में मानने की हद तक चले गए हैं। समय बीतने के साथ, बल 'अपराध' से 'अपराधी' पर स्थानांतरित हो गया है। दंडात्मक नीति के संबंध में आधुनिक दृष्टिकोण अपराधी के नैदानिक उपचार विधियों के माध्यम से वैयक्तिकरण का पक्षधर है। इससे दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधारवादी युग का उदय हुआ है, इस प्रकार, अपराध की रोकथाम और नियंत्रण के दृष्टिकोण में पहले के निवारक, प्रतिशोधात्मक और प्रतिशोधी तरीकों को पूरी तरह से अप्रचलित और पुराना बना दिया गया है।

विचलन, अपराध और अपचारिता के सामाजिक–मनोजैविक सिद्धांत (Socio–Psychobiological Theories of Deviance] Crime and Delinquency)

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की पहचान समाज की संरचना पर अधिक बल देती है। समाजशास्त्रीय स्कूल के प्रतिपादकों के अनुसार, समाज और संस्कृति समाज के सदस्यों पर अपराध करने के लिए दबाव डालते हैं। उनका तर्क था कि अपराध समाज का उत्पाद है, जबकि इसके विपरीत जैविक और मनोवैज्ञानिक प्रतिमानों की मान्यताएं थीं कि, अपराध को व्यक्तिगत रोगविज्ञान संबंधी विकार, अत्यधिक गुणसूत्र या सोमाटोटाइप के दृष्टिकोण से समझा जाता है। दूसरे शब्दों में, यह अलग–अलग शारीरिक बनावट या शारीरिक रूप और आनुवंशिक विशेषताएं हैं और माता–पिता से संतान में उनका स्थानांतरण, अपराध और/या विचलन के कारण थे जैसा कि जैविक सिद्धांतवादी हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं। समाजशास्त्रीय और जैविक विद्यालयों के विपरीत, मनोवैज्ञानिक या मनोगतिक सिद्धांत एक व्यक्तिगत व्यक्तित्व पार्श्वचित्र की रचनाओं के लिए विचलन, अपराध और अपचारिता का श्रेय देते हैं।

सामाजिक आयाम से आकर्षित होकर, एमिल डर्कहईम (1897) ने अपराध और विचलन की प्रकृति पर पर्याप्त स्पष्टीकरण देने के लिए बड़े पैमाने पर आंकड़े एकत्र कर व्यापक शोध कार्य किया और अपराध की सामाजिक घटना कैसे चल रही है क्योंकि सामाजिक गतिशीलता के लिए जगह देने के लिए समाज समन्वित और विभेद करता है। डर्कहईम ने आत्महत्या को एक सामाजिक घटना के रूप में देखा, उनके अनुसार, आत्महत्या दर, सामाजिक एकीकरण और संस्थानों के विनियमन की दर में गिरावट के साथ–साथ सामाजिक–सांस्कृतिक मानदंडों और किसी दिए गए समाज की मूल्य प्रणाली के साथ महत्वपूर्ण संबंध था। अत्यधिक नियम भेदभाव की ओर ले जा सकते हैं और उससे निकलने वाला दबाव निराशा की ओर ले जाता है, जिससे समाज के अलग–अलग सदस्य प्रतिक्रिया करते हैं और ऐसी प्रतिक्रियाएं अपेक्षित व्यवहार प्रतिरूप और प्रवृत्तियों के अग्रानुक्रम में हो सकती हैं जिन्हें उस समाज के सदस्यों द्वारा प्रदर्शित किया जाना चाहिए। संस्थाएं यह तय करने के लिए हैं कि क्या इस तरह के नकारात्मक कार्यों को विचलन, अपराध और अपचारिता की संज्ञा दी जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. यह किसने प्रतिपादित किया है कि कोई एक सिद्धांत अपराध के कारण के लिए संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे सकता है?

   (क) प्रो. एच. सदरलैंड ने (ख) डॉ. फ्रायड ने

   (ग) डॉ. एलन ने (घ) डॉ. आनंद ने

2. एक बच्चे की आयु क्या होती है?

   (क) 13–18 वर्ष के बीच (ख) 18–20 वर्ष के बीच

   (ग) 20–25 वर्ष के बीच (घ) 0–7 वर्ष के बीच

1.3. अपराध के प्रकार

अपराध अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे– आर्थिक, हिंसक तथा सफेदपोश अपराध।

1.3.1 आर्थिक

यह प्रस्ताव कि आर्थिक जीवन मौलिक है और इसलिए, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर इसका निर्णायक प्रभाव पड़ता है, यह उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं मानव सभ्यता। यह दर्शाता है कि आर्थिक कारक सभी सामाजिक प्रतिमानों की प्रकृति और रूप को प्रभावित करते हैं और मानव जीवन के अन्य सभी पहलुओं को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार, अपराधियों ने आर्थिक नियतिवाद के रूप में कहे जाने वाले आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में अपराध की व्याख्या करने का प्रयास किया है। कार्ल मार्क्स (1818–83) के शब्दों में आर्थिक स्थितियाँ जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के सामान्य चरित्र को निर्धारित करती हैं और आर्थिक नींव के परिवर्तन के साथ, संपूर्ण अधिरचना भी तेजी से रूपांतरित होती है। जो लोग इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं वे अपराध के आर्थिक पहलू पर ध्यान केंद्रित करते हैं और आपराधिकता पर आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव का विश्लेषण करते हैं। उनका यह दावा कि आर्थिक ताकतें मानव समाज की शुरुआत से ही परस्पर क्रिया करती रही हैं, एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। यह सर्वविदित है कि प्रारंभिक समाजों में जब आर्थिक संसाधन सीमित थे, अस्तित्व के लिए संघर्ष और योग्यतम के अस्तित्व को प्रकृति का नियम माना जाता था। इसलिए, प्रारंभिक प्रतिपादकों ने अपराध को व्यावहारिक मानदंडों के संघर्ष में पाया और अपराध को गरीबी, दुख और भ्रष्टता में निहित के रूप में देखा। इसके बाद, जैसे–जैसे समाज आगे बढ़ा, उत्पादन में वृद्धि से अधिशेष उत्पन्न हुआ जिसके परिणामस्वरूप वस्तु विनिमय और विनिमय की प्रणाली उत्पन्न हुई। धीरे–धीरे, मानव जीवन में धन का महत्व इतना अधिक हो गया कि यह अब आधुनिक समाज में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का आत्मा निर्धारण कारक बन गया है।

सभी उम्र के विधिक दार्शनिकों ने स्वीकार किया है कि आर्थिक स्थितियों का अपराध पर सीधा असर पड़ता है। ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने टिप्पणी की कि अपराध गरीबी से उत्पन्न होते हैं। उन्होंने बल देकर कहा कि अपराध केवल जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही नहीं बल्कि सुपर फोर्स चीजों को प्राप्त करने के लिए

टिप्पणी

भी किए जाते हैं। उनका मानना था कि अपराध ज्यादातर मनुष्य की आरोप लगाने की प्रवृत्ति और अधिशेष धन प्राप्त करने के उसके लालच के कारण होते हैं। इस दृष्टिकोण के आलोचकों का तर्क है कि गरीबी निस्संदेह अपराध की स्थिति के लिए योगदान देने वाले कारकों में से एक है लेकिन यह सच नहीं है कि आवश्यकता हमेशा एक व्यक्ति को अपराध करने के लिए प्रेरित करती है। वास्तव में, यह पुरुषों की भौतिकवादी प्रवृत्ति है जो उसके भीतर आपराधिकता उत्पन्न करती है। इस प्रकार, विलासिता की वस्तुओं को रखने की इच्छा उसे आपराधिक कृत्य करने के लिए प्रेरित करती है यदि वह उन्हें वैध माध्यमों से प्राप्त नहीं कर सकता है। एल्बर्ट हबर्ड द्वारा यह ठीक ही देखा गया है कि, "अपराधी वह व्यक्ति है जो अवैध तरीकों से करता है जो हम सभी विधिक रूप से करते हैं। वास्तव में, यह गरीबी के बजाय भौतिकवादी लाभ के लिए अंतिम है जो एक व्यक्ति को अपराधी बनाता है"। इस बिंदु पर टिप्पणी करते हुए डोनाल्ड टाफ्ट ने देखा कि अपराध प्रतिकूलता के बजाय समृद्धि की एक मात्र घटना है।

तेजी से औद्योगिक विकास और तकनीकी प्रगति के साथ व्यापार के अवसरों का विस्तार हुआ, लोगों की अधिक और धन प्राप्त करने की आकांक्षाओं में भी वृद्धि हुई और साथ ही साथ कुलीन वर्ग का गठन किया गया और गरीबी को एक अपमान माना जाने लगा। विलासिता की इच्छा और धन की प्राप्ति के लिए पोषित प्रतिस्पर्धी जीवन शैली ने गरीबों और असंतुष्टों को जीवन को बेहतर और जीवन जीने योग्य बनाने के लिए अपराध का सहारा लेने के लिए प्रेरित किया।

एक अन्य यूनानी दार्शनिक, पठार का भी मानना था कि मानव लालच अपराध का संभावित कारण था। बाद के वर्षों में, वोल्टेयर रूसो, बेकरिया और बेंथम जैसे विचारकों ने भी इसी तरह के विचार व्यक्त किए और सहमति व्यक्त की कि आर्थिक संरचना आपराधिकता के महत्वपूर्ण कारणों में से एक है। गरीबी भूख, दुर्भाग्य, रोग और क्रोध को जन्म देती है, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर देती है और उसे अवांछनीय कार्य करने के लिए गैर–जिम्मेदार बना देती है। परिस्थितियों में, वह खुद को आपराधिकता में उतरने के लिए मजबूर करता है। इसलिए इन दार्शनिकों के अनुसार आर्थिक कारक का आपराधिकता पर गहरा प्रभाव पड़ता है और आर्थिक मंदी के समय में गरीबी बढ़ने पर अपराध दर बढ़ जाती है।

आर्थिक संरचना और अपराधों के बीच संबंध

18वीं शताब्दी के दौरान, यूरोप में अपराधियों द्वारा आपराधिकता पर आर्थिक स्थितियों के प्रभाव पर गहन शोध किए गए। लेकिन दुर्भाग्य से उनके निष्कर्ष मौलिक रूप से भिन्न थे और इस संबंध में किसी भी सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचना मुश्किल था। आर्थिक स्थितियों और अपराध के बीच संबंध मोटे तौर पर मुख्य परस्पर विरोधी विचारों पर आधारित है, अर्थात्:

- अर्थव्यवस्था और अपराध के बीच संबंध उलटा है; यानी जब आर्थिक स्थितियां अनुकूल हों, तो अपराध की घटनाएं तुलनात्मक रूप से कम होती हैं लेकिन आर्थिक मंदी के समय में आपराधिक रिकॉर्ड और ऊपर की ओर प्रवृत्ति होती है। इस धारणा को सभी मार्क्सवादी सिद्धांतों और वामपंथी नीतियों में समर्थन मिलता है। प्रसिद्ध डच सामाजिक वैज्ञानिक विलियम एल्ड्रियन बोंगर ने इस तर्क का पूर्ण समर्थन किया।

- आर्थिक संरचना और अपराध के बीच संबंध प्रत्यक्ष या सकारात्मक है; कहने का तात्पर्य यह है कि आपराधिकता सामान्य आर्थिक गतिविधि का विस्तार है, अर्थव्यवस्था में वृद्धि या गिरावट के साथ बढ़ती या घटती है। इस प्रकार, इस पूर्वसर्ग के अनुसार, अपराध दर समृद्धि की अवधि में वृद्धि दर्शाती है और आर्थिक अवसाद की अवधि के दौरान घटती है। एनरिको फेरी और उनके प्रसिद्ध कार्य 'लॉ ऑफ क्रिमिनल सैचुरेशन' के मूल शोध के पूरक के रूप में फिलिप पोलेट द्वारा इस दृष्टिकोण को सबसे स्पष्ट रूप से विकसित किया गया है। हालांकि, थॉर्स्टन सेलिन ने निष्कर्ष निकाला कि बेरोजगारी जो अनिवार्य रूप से अवसाद की एक शाखा है, का अपराध दर पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा, शायद सरकारी राहत उपायों के कारण।

अपराध दर और गरीबी के बीच संबंध इंगित करता है कि अपराध गरीबी के क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। हालाँकि, गरीबी को केवल संपत्ति से संबंधित अपराधों के कारण के रूप में जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और इसका व्यक्ति या प्रतिष्ठा से संबंधित अपराध के साथ कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। इस दृष्टिकोण का समर्थन रैडज़िनोविक्ज़ (1941) ने किया, जिन्होंने निष्कर्ष निकाला कि अवसाद की अवधि के दौरान और फिर समृद्धि की अवधि में संपत्ति के विरुद्ध अपराधों में स्पष्ट रूप से वृद्धि हुई है।

रसेल ने बल देकर कहा कि खाद्य कीमतों और अपराध दर के बीच सीधा संबंध है। जैसे–जैसे कीमतें बढ़ती हैं, अपराध दर में इसी तरह की वृद्धि दर्ज की जाती है। उन्होंने 1815–1842 के दौरान इंग्लैंड में अपराध दर में वृद्धि के लिए मुख्य रूप से सामान्य संकट और वाणिज्यिक विनिर्माण और कृषि उपज में गिरावट को जिम्मेदार ठहराया। एक अन्य लेखक आर.एच. वॉल्श का सुझाव है कि अवसाद और प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियों की अवधि के दौरान अपराध कई गुना बढ़ जाते हैं। फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया और वर्ग शोषण के कारण लोगों की दयनीय स्थिति के लिए अपराध में वृद्धि को जिम्मेदार ठहराया।

आपराधिकता का बोंगर का आर्थिक सिद्धांत

अपराध और आर्थिक स्थितियों के अंतर्संबंध की व्याख्या करने में विलियम ए. बोंगर का वास्तविक अपराध विज्ञान का योगदान एक विशेष उल्लेख के योग्य है। उन्होंने 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विभिन्न समाजवादी देशों में प्रचलित आर्थिक स्थितियों के गहन शोध अध्ययन के बाद अपना निष्कर्ष निकाला, उन्होंने कहा कि आधुनिक युग पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का काल है। बोंगर ने निष्कर्ष निकाला कि पूंजीवाद आपराधिकता के संभावित कारणों में से एक था क्योंकि व्यवस्था ने पुरुषों में स्वार्थी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के लिए एक माहौल बनाया। यहां तक कि समाजवादी देशों, जैसे कि तत्कालीन सोवियत रूस और चीन ने भी अनुभव किया है कि आर्थिक समानता के सिद्धांत अपने व्यावहारिक अनुप्रयोग में विफल रहे हैं। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि कुछ दशक पहले ही रूस के पूर्व प्रधान मंत्री खुर्शेव को सामाजिक हितों को बढ़ावा देने के लिए कई प्रोत्साहन कार्यक्रम शुरू करने पड़े थे जैसे धन ऋण की अनुमति देना आदि। एक कदम और आगे बढ़ते हुए, सोवियत संघ के पूर्व राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचेव ने भौतिक रूप से बेहतर और समृद्ध जीवन और रूसी समाज के अधिक लोकतंत्रीकरण को सुनिश्चित करने के लिए 1987 में ग्लासनोस्ट (आर्थिक स्वतंत्रता) और पेरेस्त्रोइका (समाजवाद का पुनर्गठन) की शुरुआत की।

टिप्पणी

आर्थिक स्थितियों और अपराध के बीच सह–संबंध पर टिप्पणी करते हुए, डब्ल्यूए बोंगर ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला–

1. उन्होंने एक सांख्यिकीय डेटा तैयार किया और प्रदर्शित किया कि लगभग 79% अपराधी गैर–लाभकारी वर्ग के हैं। इस प्रकार, उन्होंने गरीबी और अपराध के बीच एक सह–संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। आपराधिकता और आर्थिक परिस्थितियों के अपने डॉक्टरेट शोध प्रबंध में, डॉ. बोंगर ने पूरे यूरोप के आर्थिक साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि गरीबी से संबंधित अपराध जैसे चोरी, डकैती, घर तोड़ना आदि के दौरान असामान्य वृद्धि दर्ज की गई।
2. आगे देखा गया है कि आर्थिक परिस्थितियों का अपराध पर प्रभाव अनिवार्य रूप से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण होता है जो असमानता को जन्म देता है और धन के असमान वितरण की ओर ले जाता है। पूंजीवादी होल्डिंग और एकाधिकारवादी प्रवृत्तियों का सहारा लेते हैं जिससे कृत्रिम कमी पैदा होती है और परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि होती है। यह बदले में उत्पादन को रोकता है जो अंततः श्रम की बेरोजगारी की ओर जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अपराध, जैसे शराब, आवारापन, भीख मांगना, हमला, हिंसा आदि में वृद्धि दर्ज की जाती है।
3. पूंजीवाद पर आधारित आर्थिक व्यवस्था में मुद्रास्फीति और अपस्फीति के आर्थिक चक्र अक्सर होते हैं। मुद्रास्फीति दिवालियेपन को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित व्यक्ति एक असामाजिक जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं और उनमें से कुछ आपराधिकता का सहारा भी ले सकते हैं।
4. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की एक अन्य विशिष्ट विशेषता उद्यमियों के बीच प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति है। दक्षता, कम उत्पादन लागत और उत्पादों की बेहतर गुणवत्ता प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था के कुछ सराहनीय परिणाम हैं। लेकिन जब ये प्रयास प्रतिस्पर्धा को पूरा करने में विफल हो जाते हैं, तो निर्माताओं द्वारा अवैध उपकरण जैसे ट्रेडमार्क, कॉपीराइट, पेटेंट आदि से संबंधित कानूनों का उल्लंघन किया जाता है। इससे अपराध दर में वृद्धि होती है।
5. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का एक और खतरा है जो अपराधों में भारी वृद्धि में योगदान देता है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में उनके अनुचित उपयोग पर प्रतिबंध लगाने वाले प्रभावी विधायी प्रतिबंध के बावजूद बच्चों और महिलाओं का रोजगार आपराधिकता के लिए सुखदायक आधार प्रस्तुत करता है। यह ठीक ही देखा गया है कि बच्चों को श्रम के रूप में रोजगार देना अपने आप में अपराधों का एक संभावित कारण है क्योंकि जो बच्चा अपनी मजदूरी अर्जित करता है वह यह नहीं जानता कि इसे कैसे खर्च किया जाए। नतीजतन, वह धूम्रपान, जुआ, शराब पीने, दांव लगाने आदि जैसी अवांछनीय वस्तुओं पर अपना पैसा खर्च करने के लिए उपयुक्त है, जो अंततः उसे आपराधिक दुनिया में खींच लेता है।

आर्थिक शोषण से बच्चों की रक्षा के अधिकार और खतरनाक कार्यों में उनके उपयोग से संबंधित मुद्दे ने पिछले दशक के दौरान समुदाय का ध्यान आकर्षित किया

है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन के अनुच्छेद 18 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए बाल श्रम का कड़ा विरोध किया है, जो बच्चों के कार्य के लिए रोजगार पर रोक लगाता है। हालाँकि, भारत सरकार बाल श्रम को एक आवश्यक बुराई के रूप में मानती है, जो गरीबी का एक सहवर्ती है, जिसे तब तक दूर नहीं किया जा सकता जब तक कि समाज से गरीबी का उन्मूलन नहीं हो जाता। बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम 1986, कुछ खतरनाक रोजगार में बच्चों की नियुक्ति पर रोक लगाता है। यह बाल श्रम पर पूरी तरह से प्रतिबंध नहीं लगाता है, बल्कि केवल कामकाजी बच्चों को शोषण से बचाने का प्रयास करता है। अधिनियम की धारा 14(1) और (2) अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दंड का प्रावधान करती है। अधिनियम के प्रावधानों का कार्यान्वयन और प्रवर्तन संतोषजनक नहीं था। इसलिए, सरकार द्वारा 2006 में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के होटलों, दुकानों, बेकरी आदि में काम करने पर रोक लगाने के लिए एक और कानून लाया गया, हालांकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बाल श्रम की जड़ें सामाजिक–आर्थिक स्थितियों में निहित हैं, इसे तब तक नहीं मिटाया जा सकता जब तक कि गरीबी पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाती।

महिलाओं के रोजगार का भी बच्चों पर मनोबल गिराने वाला प्रभाव पड़ता है। माताओं की बाहरी व्यावसायिक गतिविधियों के कारण, बच्चों की ठीक से देखभाल नहीं की जाती है। माता–पिता की देखभाल और घरों में बच्चों पर नियंत्रण की कमी उन्हें नेक रास्ते से भटका सकती है और वे पूरी तरह से हताश हो जाते हैं और उनके प्रति उचित ध्यान की कमी के कारण अपराधियों की बुरी संगति में पड़ सकते हैं। इसके अलावा, पैसे का लालच अक्सर महिलाओं को अनैतिक कार्यों के लिए राजी करने के लिए प्रेरित करता है। विशेष रूप से भारतीय समाज के संदर्भ में कार्यकाजी महिलाओं की स्थिति दयनीय है क्योंकि उन्हें कार्य के दौरान सामाजिक खतरों से पर्याप्त सुरक्षा नहीं मिल पाती है। इस बिंदु पर टिप्पणी करते हुए प्रोफेसर गिलिन ने ठीक ही देखा कि जहां रोजगार की कमी वयस्क पुरुषों के लिए खतरनाक लगती है, वहीं महिलाओं और बच्चों का रोजगार आपराधिकता में वृद्धि से जुड़ा है।

बोंगर के सिद्धांत की आलोचना

अपराध पर आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव के संबंध में बोंगर के सामान्यीकरण के बावजूद, जैसा कि उनके अपराध के आर्थिक सिद्धांत में प्रतिपादित है, कई आलोचकों ने विभिन्न आधारों पर उनके विचारों का विरोध किया है। निम्नलिखित आधारों पर प्रोफेसर कोहेन ने आपराधिकता के बोंगर के आर्थिक सिद्धांत की आलोचना की–

1. चार्ल्स गोरिंग द्वारा 31000 अपराधियों पर उनके संबंधित व्यवसायों और अपराध करने की आवृत्ति के बीच संबंध स्थापित करने के लिए किए गए शोध से पता चला है कि गरीबी का सजा की आवृत्ति के साथ कोई संबंध नहीं है। उन्होंने आगे सुझाव दिया कि सापेक्ष आर्थिक समृद्धि अपराध दर में गिरावट की व्याख्या करने का कोई आधार नहीं है। उन्होंने आगजनी, संपत्ति को जानबूझकर हानि पहुंचाने और श्रमिक वर्ग, कृषकों के बीच यौन अपराधों जैसे आक्रामक, पुरुषों और सैनिकों को देखा, जबकि व्यावसायिक व्यवसायों वाले व्यक्ति इन अपराधों को कम करते हैं। कोहेन ने देखा कि ईमानदारी केवल अमीर व्यक्तियों का

एकाधिकार नहीं है, बहुत से लोग अपनी बेहद खराब वित्तीय स्थितियों के बावजूद ईमानदार जीवन जीते हैं।

2. अपने 'पैनल फिलॉसफी' में प्रख्यात फ्रांसीसी क्रिमिनोलॉजिस्ट गेब्रियल टार्डे भी इस विचार का पक्ष लेते हैं कि बड़ी संख्या में अपराध वाणिज्यिक या औद्योगिक प्रगति के कारण नहीं बल्कि धन के असमान वितरण और विलासितापूर्ण जीवन के लिए मनुष्य की वासना के कारण होते हैं। मनुष्य में अधिग्रहण की प्रवृत्ति अक्सर उसे अवैध कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

3. डॉ. बोंगर का यह दावा कि गरीबी अपराध की एक अनिवार्य शर्त है क्योंकि एक व्यक्ति अपनी दयनीय आर्थिक स्थितियों से राहत पाने के लिए हमेशा कुछ भी करने को तैयार रहता है, इस तथ्य के आलोक में अक्षम्य लगता है कि यहां तक कि सबसे धनी व्यक्ति जो आमतौर पर बड़े उद्योगपति होते हैं, व्यवसायी या एकाधिकारवादी अक्सर अपनी भारी कमाई के बावजूद बेईमानी के तरीकों का सहारा लेते हैं जैसे कि खातों का मिथ्याकरण, कालाबाजारी, कर चोरी, होल्डिंग, ट्रेडमार्क और कॉपीराइट का उल्लंघन आदि। यह स्पष्ट रूप से गरीबी–अपराधी संबंधों पर स्थापित डॉ. बोंगर के आपराधिकता के सिद्धांत का समर्थन नहीं करता है। एक गरीब आदमी को अपने जीवन की जरूरतों को पूरा करने के लिए चोरी करना समझ में आता है, लेकिन एक उद्योगपति कर से बचता है या झूठा खाता क्यों रखता है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका वास्तव में कोई संतोषजनक उत्तर नहीं है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आपराधिकता के एकमात्र कारण के रूप में आर्थिक कारक का बोंगर का सिद्धांत पूरी तरह से सही नहीं है। कई अन्य अप्रत्यक्ष कारक हैं जो अपराधों को अलग तरह से प्रभावित करते हैं।

   इसके अलावा, ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जब अत्यधिक गरीबी में रहने वाले व्यक्ति ईमानदारी के लिए उच्च सम्मान प्रदर्शित करते हैं। उन्होंने अपने कार्य के लिए किसी भी प्रकार के इनाम को स्वीकार करने से भी इनकार कर दिया क्योंकि वे इसे दूसरों के प्रति ईमानदार और सच्चा होना अपने कर्तव्य का एक हिस्सा मानते हैं। ऐसा करने में, वे स्पष्ट रूप से मूल्य विचारों और जीवन के नैतिक मानकों द्वारा निर्देशित होते हैं, न कि वे आर्थिक स्थिति हैं। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि केवल गरीबी ही पुरुषों में परोपकार, ईमानदारी और न्याय के गुणों को हमेशा कम नहीं करती है। वास्तव में, ये ऐसे गुण हैं जिनका गरीबी या बहुतायत से कोई लेना–देना नहीं है।

4. डॉ. बोंगर का यह विचार कि समाज की पूंजीवादी प्रवृत्ति आपराधिकता के लिए जिम्मेदार है, भी पूरी तरह से मान्य नहीं है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अत्यधिक मुनाफे और अन्य बुराइयों को खत्म करने की दृष्टि से शुरू की गई समाजवादी नीतियां अनुकूल परिणाम देने में समान रूप से विफल रही हैं। जहां तक अपराध की रोकथाम का संबंध है, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और उत्पादन पर राज्य का नियंत्रण शायद ही सफल रहा हो। राष्ट्रीयकरण में अनिवार्य रूप से राज्य द्वारा निजी प्रबंधन का नियंत्रण लेना शामिल है जबकि उत्पादन और वितरण के अन्य कारक अपरिवर्तित रहते हैं। राज्य नियंत्रित उपक्रमों में, प्रबंधन और नियंत्रण कुछ सार्वजनिक अधिकारियों के लिए रुचि रखते हैं जो व्यक्तियों के खिलाफ हैं। इसलिए, यह निश्चित रूप से कैसे कहा जा सकता है कि इन सरकारी

अधिकारियों को व्यक्तिगत लाभ के लिए लुभाया नहीं जाएगा, जब तक कि अधिग्रहण की प्रवृत्ति जो मानव स्वभाव का एक हिस्सा है, उनमें बनी रहती है। इसके अलावा, राज्य नियंत्रण लाभ के उद्देश्यों की अनुपस्थिति को मानता है। नतीजतन, उत्पादन के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होगा, इसलिए, कमी और संकट होगा जो बदले में चोरी, जबरन वसूली और कालाबाजारी जैसे संपत्ति से संबंधित अपराधों को जन्म देगा। इसलिए, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि निस्संदेह कुछ ऐसे अपराध हैं जो पूंजीवादी समाज के परिणामस्वरूप होते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी होते हैं जो समाज के समाजवादी पैटर्न में अनिवार्य रूप से उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, रूस और चीन जैसे समाजवादी देशों में, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से उत्पन्न होने वाले अपराध दुर्लभ हैं, लेकिन अन्य प्रकार के अपराध विशेष रूप से राजनीतिक या धार्मिक अपराधों में असामान्य रूप से वृद्धि हुई है। इन देशों में लोगों के बीच राजनीतिक अस्थिरता और सामान्य असंतोष अक्सर जेल, राजद्रोह और सत्ता में सरकार के खिलाफ विद्रोह जैसे अपराधों की ओर ले जाता है। इसलिए अपराध के आर्थिक कारकों को खत्म करने के समाधान के रूप में समाजीकरण राजनीतिक प्रकृति के अपराधों को पैदा करने के लिए एक प्रजनन आधार साबित हुआ है।

पूर्वगामी विश्लेषण से, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अपराध व्यक्तियों द्वारा उनकी व्यक्तिपरक प्रवृत्ति के कारण किए जाते हैं, इसलिए, राज्य नियंत्रण और राष्ट्रीयकरण के माध्यम से आर्थिक परिवर्तन इस मानवीय प्रवृत्ति में बदलाव नहीं ला सकते हैं। समाजवादी नीतियां अपराधों को केवल इस हद तक सीमित कर सकती हैं कि निजी व्यक्तियों द्वारा लाभ के उद्देश्यों की संभावना अत्यधिक हद तक समाप्त हो जाएगी और स्वार्थी उद्देश्यों के लिए वाणिज्यिक कानूनों के उल्लंघन का कोई अवसर नहीं होगा। लेकिन यह गलत है कि दो लोग सोचते हैं कि समाज के समाजवादी पैटर्न पर स्विच करने से अपराधों का पूरी तरह से सफाया हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह है कि यह केवल गरीबी नहीं है जो अपराध उत्पन्न करती है बल्कि यह अन्य कारकों के संबंध में गरीबी है जैसे कि पुरुषों में अधिग्रहण की प्रवृत्ति और अधिक से अधिक धन प्राप्त करने की उसकी सनक जो उसे अपराधी बनाती है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो गरीबों और अमीरों द्वारा किए गए अपराधों को संतोषजनक ढंग से समझाया जा सकता है।

हालाँकि, अपराध और गरीबी किसी भी समाज के लिए स्थानिक हैं, चाहे उसका रूप कुछ भी हो, चाहे वह पूंजीवादी हो या समाजवादी और चाहे उसका भौतिक विकास कुछ भी हो। जिस तरह गरीबी को मिटाया नहीं जा सकता, उसी तरह अपराधों को भी मिटाया नहीं जा सकता है, हालांकि उन्हें कम किया जा सकता है और एक राष्ट्र के भौतिक विकास और समृद्धि की दिशा में पूरे प्रयास से नियंत्रित किया जा सकता है।

अपराध की आर्थिक व्याख्या की सीमाएं

आर्थिक परिस्थितियों और आपराधिकता के बीच संबंधों के बारे में अलग–अलग विचारों के बावजूद, इन मतभेदों में सामंजस्य स्थापित करने और अपराध की समस्या का एक स्वीकार्य समाधान निकालने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया है। इसलिए, यह

कहा जा सकता है कि आर्थिक स्थितियों और आपराधिकता के बीच संबंध इतना अनिश्चित है कि कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। इस प्रकार, इस स्थिति को स्वीकार करने की प्रवृत्ति है कि आर्थिक स्थितियाँ केवल बड़ी संख्या में पर्यावरणीय परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं और यह कुछ भी नहीं बल्कि अपराध–कारण के लिए बहु–कारक दृष्टिकोण का एक हिस्सा है। आपराधिकता को प्रभाव के किसी विशेष क्षेत्र के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, अर्थात् आर्थिक, जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आदि, लेकिन उनमें से प्रत्येक कुल का एक हिस्सा है।

आगे यह भी बताया जा सकता है कि प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियाँ कुछ प्रकार के अपराधों जैसे कि यौन अपराध, पैथोलॉजिकल अपराध, राजनीतिक अपराध को प्रभावित करती हैं, लेकिन समाज में संपूर्ण आपराधिकता को केवल आर्थिक घटना के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। मानव समाज में निश्चित रूप से आर्थिक मूल्यों की एक प्रमुख भूमिका होती है, लेकिन वे विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों पर निर्भर करते हैं और इसलिए, केवल एक सापेक्ष महत्व रखते हैं। आर्थिक गतिविधियों पर विधिक नियंत्रण भी अत्यधिक हद तक अपराध–अर्थव्यवस्था संबंधों पर अपना प्रभाव डालेगा। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि न तो गरीबी और न ही धन का आधुनिक समाज में अपराध पर एक प्रमुख निर्धारण प्रभाव है।

अपराध की आर्थिक व्याख्या का बोंगर का सिद्धांत इस बात का उत्तर देने में विफल रहता है कि करोड़पति, व्यवसायी, उच्च अधिकारी, मंत्री और राजनीतिक नेता जैसे पर्याप्त साधनों और संसाधनों वाले लोग रिश्वत और भ्रष्टाचार जैसी आपराधिक गतिविधियों में लिप्त क्यों होते हैं, जब उनके पास पहले से ही इससे कहीं अधिक होता है। उन्हें वास्तव में आवश्यकता है। वास्तव में, धन की लालसा और अधिक से अधिक धन इकट्ठा करने की सनक ही उन्हें अपने पद और शक्ति का दुरुपयोग करने के लिए प्रेरित करती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत में भ्रष्टाचार एक राष्ट्रव्यापी समस्या बन गया है और कार्य को आसानी से और जल्दी से करने के लिए आम तौर पर नियमित रूप से इसका सहारा लिया जा रहा है। सरकारी, अर्ध सरकारी और सार्वजनिक या यहां तक कि निजी उद्यमों में मंत्री स्तर पर भ्रष्टाचार कोई रहस्य नहीं है। इस तथ्य के बावजूद खुले तौर पर देने वाले और लेने वाले दोनों जानते हैं कि यह विधि के तहत दंडनीय अवैध कार्य है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 में प्रदान किए गए कड़े दंड प्रावधान इस खतरे को रोकने में विफल रहे हैं, यदि इसे समाप्त नहीं किया गया, तो शायद इसकी अजीब प्रकृति के कारण यह इसमें शामिल पक्षों के लिए पारस्परिक रूप से लाभकारी है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि इस तरह के अपराधों का आर्थिक या वित्तीय स्थितियों से कोई लेना–देना नहीं है। यह मूल रूप से धन के लालच और प्रलोभन से उत्पन्न होता है जो मानव स्वभाव में निहित है।

प्रचलित भारतीय परिदृश्य में यह एक द्विभाजन है कि नागरिक समाज, साथ ही राजनीतिक नेतृत्व और जनप्रतिनिधि सार्वजनिक व्यवहार में ईमानदारी और पारदर्शिता चाहते हैं, जबकि दूसरी ओर, वे हैं जो लोक सेवक हैं और राजनीतिक या प्रशासनिक शक्ति रखने वाली शक्तियाँ हैं। शासन के नाम पर सरकारी खजाने को लूटा जा रहा है और जनता से जबरन वसूली की जा रही है। आपराधिक दुर्विनियोग, आपराधिक विश्वासघात, झूठी गवाही, धोखाधड़ी आपराधिक साजिश, जालसाजी और विभिन्न

प्रकार के विधि के उल्लंघन जैसे गंभीर अपराधों के आरोपी अवैध धन प्राप्त करने के लिए बड़े वित्तीय धोखाधड़ी और घोटालों में शामिल भ्रष्ट बड़े–विजेता अपने अपराधों के लिए बदनाम होने से बहुत दूर हैं।

आधुनिकीकरण के प्रभाव से अत्यधिक सामग्री समाप्त हो गई है जिसने अपराध की अवधारणा को ही बदल दिया है। वहाँ के लिए, वर्तमान समय में सामाजिक–आर्थिक अपराधों की अधिक आमद है। इनमें टेक्स्ट डिवीजन, होल्डिंग, कालाबाजारी फेरा का पूर्व उल्लंघन (अब फेमा, एमआरटीपी अधिनियम तथा प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002), वित्तीय घोटाले, मिलावट, आदि शामिल हैं। साइबर अपराधों ने कंप्यूटर युग में सफेदपोश आपराधिकता में नए आयाम जोड़े हैं। सुधारात्मक उपाय इन गैर–पारंपरिक अपराधों से प्रभावी ढंग से निबटने में विफल रहे हैं और सामाजिक विधि इन अपराधों को उनके अप्रभावी प्रवर्तन के कारण रोकने में सक्षम नहीं है। इसलिए, यह आवश्यक है कि आपराधिक व्यवहार के बदलते पैटर्न के साथ, और अधिक कठोर आर्थिक अपराधों को नियंत्रण में लाने के लिए विधि बनाए जाने चाहिए। भारत में कई वर्षों से नियमों के लागू होने के बावजूद, तस्करी और विदेशी मुद्रा उल्लंघन से संबंधित अपराध सूचकांक में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है जो भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। आपराधिक विधि प्रवर्तन एजेंसियां खतरे को रोकने के लिए कठोर कदम उठाने की कोशिश कर रही हैं, लेकिन बहुत सफलता के बिना।

कर चोरी में करदाताओं द्वारा तथ्यों को दबाने और रिकॉर्ड में हेरफेर करके अर्थव्यवस्था से संबंधित अपराधों के बीच एक और सबसे प्रचलित गतिविधियों का अभ्यास किया गया। भारतीय समाज में भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उसे छुड़ाना अत्यधिक मुश्किल लगता है। 1999 में भ्रष्टाचार के "जीरो टॉलरेंस" के सरकार के संकल्प और उसके बाद के प्रयासों के बावजूद, इस व्यापक खतरे के खिलाफ लोगों को कोई राहत नहीं मिली है। हाल के वर्षों में अधिक से अधिक घोटालों, धोखाधड़ी का पर्दाफाश होने के साथ, यह कम होने की बात तो दूर, इसने उच्च ऊंचाइयों को छुआ है।

गरीबी और आतंकवाद के बीच संबंध

एक मजबूत लोकप्रिय धारणा है कि आतंकवाद गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण हो रहा है। लेकिन गरीबी और आतंकवाद के बीच संबंध पर किए गए अध्ययनों से पता चला है कि गरीबी, शिक्षा और आतंकवाद का सहारा लेने के बीच कोई सीधा संबंध नहीं है। यह साबित हो चुका है कि अधिकांश आतंकवादी नेता आर्थिक रूप से संपन्न हैं और उनके पास अपेक्षाकृत उच्च स्तर की शिक्षा है। शोधों ने निष्कर्ष निकाला है कि जिन देशों में नागरिक स्वतंत्रता कम है, वे अधिक आतंकवादी संगठन पैदा करते हैं। इस प्रकार, आतंकवाद आर्थिक से अधिक राजनीतिक घटना है और इसलिए, शिक्षा में वृद्धि या गरीबी को कम करना आतंकवाद को खत्म करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। आर्थिक रूप से गरीब और अशिक्षित होने के अलावा, अधिकांश शीर्ष आतंकवादी समूहों में ऐसे सदस्य होते हैं जो आर्थिक रूप से मजबूत होते हैं और पेशेवर और अर्ध–पेशेवर क्षमताओं में कार्य करते हैं और उनमें से 60 प्रतिशत से अधिक के पास मुख्य रूप से तकनीकी में विश्वविद्यालय की डिग्री होती है। इस दृष्टिकोण को आगे

तथ्यात्मक आधार पर समर्थन मिलता है कि कुछ सबसे गरीब देशों में आतंकवादी कार्यकर्ता नहीं हैं। इसलिए, जहां तक आतंकवाद का संबंध है, अपराध और गरीबी के बीच अंतर–संबंध का बोंगर का सिद्धांत अच्छा नहीं है।

टिप्पणी

1.3.2 हिंसक

हिंसा, शारीरिक बल या शक्ति का, स्वयं के विरुद्ध, किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध, या किसी समूह या समुदाय के विरुद्ध, जानबूझकर धमकी द्वारा या वास्तविक उपयोग है, जिसके परिणामस्वरूप चोट, मृत्यु, मनोवैज्ञानिक अपहानि, कु–विकास या अभाव होने की उच्च संभावना होती है।

इस सामान्य परिभाषा के भीतर, हिंसा को तीन उप–प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

स्व–निर्देशित हिंसा : यह हिंसा को संदर्भित करती है जिसमें अपराधी और पीड़ित एक ही व्यक्ति होते हैं और आत्म–दुर्व्यवहार और आत्महत्या में विभाजित होते हैं।

पारस्परिक हिंसा : यह व्यक्तियों के बीच हिंसा को संदर्भित करती है, और इसे "पारिवारिक और अंतरंग साथी हिंसा" और "सामुदायिक हिंसा" में विभाजित किया जाता है। पूर्व श्रेणी में बाल दुर्व्यवहार शामिल है, जबकि सामुदायिक हिंसा परिचित और अजनबी हिंसा में टूट जाती है और इसमें युवा हिंसा शामिल है; अजनबियों द्वारा हमला; संपत्ति अपराधों से संबंधित हिंसा; और कार्यस्थलों और अन्य संस्थानों में हिंसा।

सामूहिक हिंसा : इसका तात्पर्य व्यक्तियों के बड़े समूहों द्वारा की गई हिंसा से है और इसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हिंसा में विभाजित किया जा सकता है।

इन श्रेणियों में से प्रत्येक में चार भेद हैं जिनमें हिंसा की जा सकती है, अर्थात्: शारीरिक; यौन; मनोवैज्ञानिक हमला; और अभाव। हालांकि सार्वभौमिक रूप से इनको स्वीकार नहीं किया गया है। इसके प्रकार और घटना के तरीके के अनुसार हिंसा का वर्गीकरण अक्सर हिंसा के जटिल प्रतिरूप को समझने के लिए एक उपयोगी ढांचा प्रदान करता है।

पारस्परिक हिंसा : प्रकृति और परिणाम

पारस्परिक हिंसा हिंसा की तीन प्रमुख श्रेणियों में से एक है। जिन संदर्भों में यह घटित होता है वह बहुत बड़ा है, और इसमें माता–पिता और देखभाल करने वालों द्वारा बाल दुर्व्यवहार और उपेक्षा शामिल है; किशोरों और युवा वयस्कों के बीच हिंसा; अंतरंग भागीदारों के बीच हिंसा; संपत्ति अपराधों से जुड़ी हिंसा; बलात्कार और अन्य यौन हिंसा; कार्यस्थल हिंसा; और रिश्तेदारों और अन्य देखभाल करने वालों द्वारा बुजुर्गों के साथ दुर्व्यवहार। व्यक्तियों के बीच ऐसी हिंसा हर दिन हर मिनट होती है, और किसी न किसी रूप में सभी को प्रभावित करती है।

हिंसक अपराध गंभीर अपराध हैं क्योंकि वे समुदाय में असुरक्षा और भय की भावना पैदा करते हैं। ऐसे अपराधों की आवृत्ति और परिमाण भी सार्वजनिक शांति पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। हिंसक अपराधों को मुख्य तौर पर निम्नलिखित चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1. **शरीर को प्रभावित करने वाले हिंसक अपराध** : इनमें हत्या, हत्या का प्रयास, सदोष मानववध, दहेज हत्या और अपहरण आदि शामिल हैं।
2. **संपत्ति को प्रभावित करने वाले हिंसक अपराध** : इन अपराधों में डकैती, डकैती की तैयारी करना और चोरी आदि शामिल हैं।
3. **सार्वजनिक सुरक्षा को प्रभावित करने वाले हिंसक अपराध** : दंगे और आगजनी ऐसे अपराधों के उदाहरण हैं।
4. **महिलाओं को प्रभावित करने वाले हिंसक अपराध** : इनमें बलात्कार, बलात्कार करने का प्रयास, महिलाओं का शील भंग करने के लिए आपराधिक हमला आदि शामिल हैं।

हिंसक अपराध हिंसा और अपराध दोनों है, इसलिए इसे समझने के लिए आक्रामकता और विचलन के सिद्धांतों की आवश्यकता है। हानि करने वाले और नियम तोड़ने वाले दोनों ही महत्वपूर्ण व्यवहार हैं और एक सीमित तर्कसंगत विकल्प दृष्टिकोण दोनों व्यवहारों के लिए जिम्मेदार हो सकता है। हालांकि, जबकि हानि करने वाले और विचलन (और हिंसक और अहिंसक अपराध) के कुछ कारण समान हैं, कुछ अलग हैं। अपराध और विचलन के सिद्धांत यह नहीं समझा सकते हैं कि कोई व्यक्ति केवल हिंसक अपराध में व्यक्तिगत और समूह के अंतर को क्यों देखता है और आक्रामकता और हिंसा के सिद्धांत यह नहीं समझा सकते हैं कि कोई सभी प्रकार के अपराधों में अंतर क्यों देखता है।

हिंसक अपराध में अपराध और हिंसा दोनों शामिल हैं। अपराध में नियम तोड़ना शामिल है जबकि हिंसा में भौतिक साधनों का उपयोग करके जानबूझकर हानि पहुँचाना शामिल है। इसलिए, हिंसक अपराध की समझ के लिए आक्रामकता और विचलन दोनों की समझ की आवश्यकता होती है। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि लोग दूसरों को हानि क्यों पहुंचाते हैं और साथ ही वे नियम क्यों तोड़ते हैं। व्यक्तिगत और समूहगत मतभेदों की सैद्धांतिक समझ हासिल करने के लिए, हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि क्या व्यक्ति और समूह अपने हिंसक व्यवहार में या उनके आपराधिक व्यवहार में भिन्न हैं। हमें यह जानना चाहिए कि उन्हें समझाने का प्रयास करने से पहले किन तथ्यों को स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। स्टिंचकोम्बे (1968) ने सिद्धांत निर्माण पर अपने उत्कृष्ट कार्य में आश्रित चर की उचित अवधारणा के महत्व पर बल दिया। वह उन विभिन्न प्रकार की कार्रवाइयों की ओर इंगित करते हुए एक उदाहरण के रूप में अपराध का उपयोग करते है जो दर्शाती हैं कि पुलिस के लिये अलग कारण हो सकते हैंः प्रशासनिक समस्याएं पैदा करने वाले प्राकृतिक चर वही चर नहीं हैं जिनके कारणों का एक अनूठा समूह है। कभी–कभी अनुप्रयुक्त शोधकर्ता यह कहकर इसे निरूपित करते हैं कि एक प्राकृतिक चर के "कई कारण हैं।" वैज्ञानिक परिभाषा के दृष्टिकोण से, इसका अर्थ है कि अनुप्रयुक्त शोधकर्ता गलत बात को समझाने की कोशिश कर रहे हैं। हिंसा और अपराध अतिव्यापी कार्यक्षेत्र हैंः हिंसा के कुछ कार्य आपराधिक या विचलित भी नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, आत्मरक्षा में हिंसा, सामाजिक नियंत्रण अभिकर्ता (माता–पिता और पुलिस) द्वारा हिंसा, और युद्ध में हिंसा आम तौर पर न तो आपराधिक हैं और न ही विचलित हैं। दूसरी ओर, चोरी और अवैध नशीली दवाओं का उपयोग अपराध है लेकिन इसमें हिंसा शामिल नहीं है। इसके अलावा, विभिन्न प्रकार के अपराध में हानि के प्रति अलग–अलग दृष्टिकोण शामिल होते हैं। कुछ अपराधी पीड़ित को

टिप्पणी

हानि पहुंचाना चाहते हैं (उदाहरण के लिए, अधिकांश हमले)। कुछ के लिए यह महत्वहीन है (उदाहरण के लिए, अधिकांश डकैती, बलात्कार और संपत्ति अपराध), और कुछ पीड़ित रहित अपराध करते हैं (जैसे, अवैध ड्रग्स लेना)। यदि हम आपराधिक हिंसा में रुचि रखते हैं, तो हमें यह समझाने की कोशिश करनी चाहिए कि लोग दूसरों को हानि क्यों पहुंचाना चाहते हैं या दूसरों को हानि पहुंचाने से गुरेज नहीं करते हैं, साथ ही साथ वे विधि तोड़ने के लिए क्यों तैयार हैं। उचित परिणाम या आश्रित चर की पहचान करना महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके सैद्धांतिक निहितार्थ हैं। केवल हिंसा के लिए देखे जाने वाले प्रभावों की व्याख्या करने के लिए आक्रामकता के सिद्धांत की आवश्यकता होती है, जबकि सभी प्रकार के आपराधिक व्यवहार के लिए देखे जाने वाले प्रभावों की व्याख्या करने के लिए विचलन के सिद्धांत की आवश्यकता होती है।

क्योंकि अपराध विशेषज्ञ आमतौर पर हानि पहुंचाने वाले प्रकार के अपराधों में रुचि नहीं रखते हैं, वे अक्सर आक्रामकता पर व्यापक सामाजिक मनोवैज्ञानिक साहित्य की उपेक्षा करते हैं। दुनिया में बहुत से मनोवैज्ञानिक हैं और वे इस क्षेत्र में अत्यधिक मात्रा में उच्च गुणवत्ता वाले शोध करते रहते हैं, इसलिए यह एक बड़ा और महत्वपूर्ण साहित्य है। इसके अलावा, जो लोग हिंसा (विभिन्न विषयों से) का अध्ययन करते हैं, वे आक्रामकता के सिद्धांतों और अपराध के सिद्धांतों दोनों की अक्सर उपेक्षा करते हैं। वे विशेष प्रकार की हिंसा का अध्ययन करते हैंः युवा हिंसा, यौन हिंसा, महिलाओं के खिलाफ हिंसा, बाल शोषण, सामूहिक हिंसा, घृणा अपराध, कार्यस्थल हिंसा, हत्या और सामूहिक हत्या। जिसके परिणाम स्वरूप, हिंसा का अध्ययन छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभक्त हो गया है। कभी–कभी इनमें से किसी एक क्षेत्र में कार्य करने वाले लोग विशेष प्रकार की हिंसा का अध्ययन करने के लिए विशेष सिद्धांत विकसित करते हैं। उदाहरण के लिए, नारीवादी सिद्धांत का उपयोग अक्सर महिलाओं के प्रति हिंसा की व्याख्या करने के लिए किया जाता है जबकि पुरुषों और महिलाओं के खिलाफ हिंसा की व्याख्या समान हो सकती है (फेल्सन 2002)। यदि हमारे स्वतंत्र चर केवल विशेष प्रकार की हिंसा से जुड़े हैं, तो हमें अधिक विशिष्ट सिद्धांतों की आवश्यकता पड़ सकती है। हालांकि, किसी को यह नहीं मानना चाहिए कि एक विशेष प्रकार की हिंसा का एक विशेष व्याधिनिदान–विज्ञान है। इसलिए, एक ही अध्ययन में विभिन्न प्रकार की हिंसा और अपराध की जांच करना और प्रभावों की तुलना करना महत्वपूर्ण है। तब हम यह निर्धारित कर सकते हैं कि हम क्या समझाने की कोशिश कर रहे हैं और हमें कितने सामान्य सिद्धांत की आवश्यकता है। हानि पहुंचाने और अपराध करने के कुछ कारण समान हैं और कुछ अलग हैं। हालाँकि, उन्हें समझाने के लिए किसी अलग सिद्धांत की आवश्यकता नहीं है। हानि पहुंचाने के साथ–साथ नियम तोड़ने में सहायक व्यवहार अंतर्ग्रस्त है, किन्तु प्रोत्साहन और लागत कभी–कभी अलग होती है। एक तर्कसंगत विकल्प परिप्रेक्ष्य, विस्तृत रूप से विचार करने पर, आक्रामकता और विचलन दोनों की व्याख्या कर सकता है। इस दृष्टिकोण के लिए आपराधिक सिद्धांतों के परित्याग की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनमें से अधिकांश सिद्धांत अपराध को सहायक व्यवहार के रूप में मानते हैं।

विज्ञान में घटनाओं को इस तरह से वर्गीकृत करना महत्वपूर्ण है जिससे हम उन घटनाओं के कारणों को समझ सकें (कपलान 1964)। अच्छी अवधारणाएँ हमें घटनाओं को बेहतर ढंग से समझने और समझाने में सहायक होती हैं जबकि बुरी अवधारणाएँ ज्ञान के विकास में बाधा डालती हैं। कोई घटना को किस तरह से वर्णनात्मक इकाइयों

में व्यवस्थित करता है, उसके महत्वपूर्ण सैद्धांतिक आशय हैं। हम उन व्यवहारों को एक साथ वर्गीकृत करना पसंद करते हैं जिनके सामान्य कारण होते हैं और अलग–अलग कारणों वाले व्यवहारों को अलग करते हैं। उदाहरण के लिए, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हत्या और आत्महत्या को अलग–अलग वर्गीकृत करना उपयोगी है, क्योंकि आमतौर पर उनके अलग–अलग कारण होते हैं। आत्महत्या का गहरा संबंध अवसाद से है, जबकि हत्या का नहीं है। निश्चित रूप से, उन दोनों में किसी की हत्या शामिल है, और दोनों के कुछ सामान्य कारण हो सकते हैं, लेकिन शायद उन्हें एक साथ वर्गीकृत करना उपयोगी नहीं है। अपराध विधि का उल्लंघन है और इसलिए विचलन का कार्य है, अर्थात नियम–उल्लंघन। आक्रामकता और हिंसा को परिभाषित करना अधिक समस्याग्रस्त है।

आक्रामकता

आक्रामकता को अक्सर किसी भी व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका आशय किसी अन्य व्यक्ति को हानि पहुंचाना है (बर्कोविट्ज़ 1962)। सविचार हानि के रूप में आक्रामकता की परिभाषा में ऐसे व्यवहार अंतर्ग्रस्त हैं जिनका आशय हानि पहुंचाना है लेकिन असफल हैं और ऐसे व्यवहारों को सम्मिलित नहीं करते हैं जिनमें आकस्मिक हानि अंतर्ग्रस्त है। असफल हमलों के कारण सफल हमलों के समान होते हैं जबकि आकस्मिक हानि में ऐसा नहीं होता है। हिंसा शारीरिक आक्रामकता है, यानी, जब लोग दूसरों को हानि पहुंचाने के लिए शारीरिक तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। हालांकि, वे जो हानि पैदा करते हैं, वह जरूरी नहीं कि भौतिक हो। यह एक सामाजिक हानि या संसाधनों का अभाव हो सकता है (टेडेस्ची और फेल्सन 1994)।

आक्रामकता (और हिंसा) की परिभाषा के लिए आवश्यक है कि हम कर्ता के दृष्टिकोण को समझें, न कि पीड़ितों या पर्यवेक्षकों के दृष्टिकोण को। कर्ता के दृष्टिकोण पर ध्यान मानव व्यवहार के सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन का केंद्र है। उदाहरण के लिए, यदि कोई सोचता है कि उनका अपमान किया गया है, लेकिन विरोधी का अपमान करने का आशय नहीं था, तो गलतफहमी से आक्रामकता हो सकती है, लेकिन प्रारंभिक कार्य आक्रामकता नहीं है। यदि कोई बलात्कार पीड़ित शक्तिहीन या अपमानित महसूस करता है तो इसका अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता कि अपराधी उन परिणामों को उत्पन्न करने के लिए प्रेरित था। यदि एक पागल फुटबॉल प्रशंसक को लगता है कि खिलाड़ी उसके बारे में बात कर रहे हैं, तो वह स्थिति की अपनी परिभाषा पर कार्य करता है। यह वास्तविकता की उसकी व्याख्या होती है, चाहे वह कितनी भी गलत या हास्यास्पद हो, जो उसके व्यवहार को प्रभावित करती है। यही कारण है कि मानसिक बीमारी हिंसा का एक अनौपचारिक कारक है (लिंक और स्टीव 1994) सिल्वर, फेल्सन, और वैनसेल्टाइन 2008)। अपराध विशेषज्ञों को "उचित व्यक्ति" मानक को लागू नहीं करना चाहिए जैसा कि विधिक व्यवस्था में होता है। अपराध विशेषज्ञों को यह नहीं कहना चाहिए कि अपराधी को पता होना चाहिए कि वह क्या कर रहा है क्योंकि अधिकांश तर्कसंगत लोग यह जानते होंगे। इस प्रकार की मानसिकता को न्यायाधीशों और निर्णायक मंडलों पर छोड़ देना चाहिए; अपराध विशेषज्ञों को कारण में दिलचस्पी लेनी चाहिए, यह स्थापित नहीं करना चाहिए कि अपराधी को दोष देना है या नहीं। दूसरी ओर, उन्हें अपराधी के दोषारोपण पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि ये धारणाएँ हिंसक व्यवहार की प्रेरणा स्रोत हो सकती हैं।

टिप्पणी

हिंसक बनाम विवाद–संबंधी हिंसा और अपराध

व्यवहार के कई परिणाम होते हैं; कुछ परिणाम लक्ष्य हैं जबकि अन्य आकस्मिक परिणाम हैं। लुटेरे और छोटे चोर पीड़ित का पैसा या संपत्ति चाहते हैं। वे जानते हैं कि वे पीड़ित को हानि पहुंचा रहे हैं, लेकिन पीड़ित की वित्तीय हानि आमतौर पर उनके लिए आकस्मिक होती है। बेशक, अपराधी के लिए आकस्मिक परिणाम पीड़ित के लिए अत्यधिक महंगा हो सकता है।

हिंसक और विवाद संबंधी अपराध में पीड़ित को हानि पहुंचाने के प्रति अपराधी का रवैया अलग होता है। विवाद–संबंधी घटनाओं में, हानि करना अपराधी का निकटतम लक्ष्य होता है। इन अपराधियों को अपने पीड़ितों से शिकायत होती है, वे गुस्से में होते हैं, और वे अपने पीड़ितों को पीड़ित देखना चाहते हैं। अधिकांश हत्या और हमले विवादों से उत्पन्न होते हैं।

हिंसक अपराधियों के लिए हानि आकस्मिक है, न कि लक्ष्य। वे जानबूझकर पीड़ितों को हानि पहुंचाते हैं लेकिन वे हानि पहुंचाने की कोई विशेष इच्छा नहीं रखते हैं। बल्कि, उनके मन में कुछ और लक्ष्य होता है और वे इसे प्राप्त करने के लिए पीड़ित को हानि पहुंचाने को तैयार रहते हैं। इन व्यवहारों को न्यायिक आक्रामकता के बजाय आकस्मिकता के रूप में संदर्भित किया जा सकता है।

डकैती और बलात्कार में आमतौर पर हिंसक हिंसा शामिल होती है। लुटेरे और बलात्कारी पीड़ित को इच्छा पूर्ण करने के लिए विवश करने के लिए हिंसा का उपयोग करते हैं क्योंकि अनुपालन से उन्हें वह कुछ मिल जाएगा जो वे चाहते हैं। उदाहरण के लिए, अनुपालन लुटेरे का निकटतम लक्ष्य होता है जबकि पैसा दूर का लक्ष्य होता है। अधिकांश लुटेरे पीड़ित की पीड़ा के प्रति उदासीन होते हैं। उनके लिए, पीड़ित अंतः परिवर्तनीय होते हैं, हालांकि वे कुछ पीड़ितों को दूसरों पर वरीयता दे सकते हैं जब उन्हें लगता है कि भुगतान बेहतर होगा या जोखिम कम होगा। लुटेरे और बलात्कारी जानते हैं कि उन्हें अपने अपराध को कारित करने के लिए पीड़ित को डराना या शारीरिक रूप से अक्षम करना चाहिए। वे जानबूझकर हानिकारक परिणाम उत्पन्न करते हैं, लेकिन यह उनमें से अधिकांश का प्रेरणा स्रोत नहीं होता है। उनका लक्ष्य आमतौर पर अपने पीड़ितों का शोषण करने के बजाय उनका उपयोग करना होता है।

चोरी और धोखाधड़ी में कहा जा सकता है कि आक्रामकता अंतर्ग्रस्त होती है, क्योंकि अपराधी जानबूझकर पीड़ित को हानि पहुंचाता है। अपराधी हिंसा के बजाय धोखे या चोरी पर निर्भर करता है। चूंकि हानि ज्यादातर चोरों और ठगों के लिए आकस्मिक है – जिन्हें पीड़ित से कोई शिकायत नहीं है – ये आम तौर पर हिंसक अपराध हैं। वे चोरी की वस्तु की इच्छा तो करते हैं, लेकिन इस बात की परवाह नहीं करते कि पीड़ित को कष्ट होता है या नहीं। हालांकि, हानि के बारे में अपराधी का विश्वास अस्पष्ट हो सकता है। चोर इस बात से इनकार कर सकते हैं कि बड़े स्टोर को निशाना बनाने से किसी को हानि हो सकती है। इन अपराधियों के दिमाग में, बड़े निगमों, जो हानि उठा सकते हैं, को छोड़कर वास्तव में किसी को हानि नहीं होती है। उनके दृष्टिकोण में, वे एक पीड़ितहीन अपराध में लगे हुए हैं। उनमें से कुछ कभी किसी व्यक्ति से चोरी नहीं करेंगे, शायद इसलिए कि इससे होने वाली हानि को नकारा नहीं जा सकता। तटस्थीकरण तकनीक, जिसे कभी–कभी युक्तिकरण या लेखा कहा जाता

है, का शायद विचलित व्यवहार पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। (साइक्स और मत्ज़ा 1957)

दूसरी ओर, डकैती, बलात्कार, चोरी और धोखाधड़ी के कुछ कार्य विवादों से उत्पन्न होते हैं और अपराधी का लक्ष्य पीड़ित को हानि पहुंचाना होता है (ब्लैक 1983)। शायद उन्हें पीड़ित से कोई शिकायत होती है और चोरी या बलात्कार ही उन्हें सही सजा देने का तरीका है। जब अपराधी अपने शिकार (पीड़ित) से क्रोधित होते हैं तो उसे हानि पहुंचाने के लिए तरह–तरह के तरीके अपनाते हैं। उदाहरण के लिए, ग्रीनबर्ग (1993) ने पाया कि कर्मचारी जो सोचते थे कि उन्हें कम भुगतान किया गया था, उन्होंने चोरी के माध्यम से अपने नियोक्ता को दंडित किया। यह प्रेरणा अंतर्ग्रस्त होने की संभावना तब अधिक होती है जब अपराधी पीड़ित को जानता है। लोगों को अजनबियों के साथ शिकायत होने की संभावना अधिक नहीं होती है।

1.3.3 सफेदपोश

सफेदपोश अपराध की अवधारणा ई .एच. सदरलैंड द्वारा प्रतिस्थापित की गई थी। वे प्रथम विधिवेत्ता थे जिन्होंने अपराध के बारे में गहन अध्ययन करने के पश्चात लोगों का ध्यान बढ़ती हुई आपराधिकता के कारण समाज के नैतिक पतन की ओर आकर्षित किया तथा जनसाधारण को अवगत कराया कि चोरी, डकैती, मारपीट, हत्या, बलात्कार, अपहरण आदि जैसे अपराधों के अलावा कुछ ऐसी असामाजिक गतिविधियां भी होती हैं जो उच्च वर्ग के लोग अपने व्यापार या व्यवसाय के अनुक्रम में करते हैं लेकिन ऐसी गतिविधियों को अपराध की श्रेणी में नहीं रखा जाता इन गतिविधियों को एक लंबे समय से व्यवसाय या व्यापार का हिस्सा ही समझा जाता रहा है अतः इनके विरुद्ध शिकायतें भी अनदेखी की जाती रही हैं और ऐसे अपराधों को करने वाले भी दंड से बचे रहते हैं।

सन 1934 में अल्बर्ट मॉरिस ने कहा कि बदले हुए परिवेश में अपराधों की अवधारणा में परिवर्तन लाया जाना बेहद आवश्यक है। उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से प्रतिष्ठित लोगों द्वारा किए जाने वाले आपराधिक कृत्यों को गंभीरता से लेने पर एवं विचार करने के लिए बल दिया। उनके अनुसार प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा व्यवसाय में किए जा रहे असामाजिक कृत्यों को अपराध की श्रेणी में समाविष्ट किया जाना चाहिए। सफेदपोश अपराध की अवधारणा को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय सदरलैंड को जाता है। जिन्होंने कुछ सामाजिक एवं आर्थिक वर्ग के व्यक्तियों द्वारा अपने व्यावसायिक या व्यापारिक कृत्यों के दौरान किए जाने वाले कानूनी उल्लंघनों को सफेदपोश अपराध कहा। उन्होंने इसे सफेदपोश अपराध कहे जाने का औचित्य स्थापित करते हुए कहा कि इससे इन अपराधों तथा रूढ़ अपराधों में भेद करना सरल होगा। सदरलैंड ने सफेदपोश अपराधों की तुलना में अन्य अपराधों को ब्लू कॉलर क्राइम कहना उचित समझा।

सफेदपोश अपराध की परिभाषा

सदरलैंड ने सफेदपोश अपराधों को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'समाज के सम्मानीय तथा प्रतिष्ठित प्रास्थिति के व्यक्तियों द्वारा उनके व्यवसाय के दौरान किए गए अपराधों को सफेदपोश अपराध कहा जाना चाहिए'।

उद्योगपतियों निर्माताओं तथा अन्य उच्च स्तरीय वर्गों के सदस्यों द्वारा अपने व्यावसायिक अनुक्रम में लाभ कमाने की नीयत से झूठे और कपट पूर्ण विज्ञापन दिये जाते हैं या पेटेंट, कॉपीराइट तथा ट्रेडमार्क के नियमों का उल्लंघन किया जाता है, ऐसे अपराध सफेद सफेद पोश अपराध कहलाते हैं। सफेदपोश अपराधों की श्रेणी में बैलेंस शीट की कूट रचना, सामान के दोष या खराबी को छुपाना, नकली माल बेचना आदि सम्मिलित हैं।

सफेदपोश अपराधों का स्वरूप

सफेदपोश अपराध के कारण समाज के बहुत से लोगों को क्षति होती है। इन अपराधों के कारण वैयक्तिक दृष्टि से एक व्यक्ति विशेष पर इसका प्रभाव लगभग नगण्य होता है इसी कारण इन अपराधों के प्रति समाज में चेतना नहीं है और न ही इन अपराधों को करने वाले व्यक्ति को दंड मिलता है।

सफेदपोश अपराधियों का दंड से बचने का कारण यह भी है कि नकली माल, कपट आदि के क्रय विक्रय के संबंध में 'क्रेता सचेत' का सिद्धांत लागू होता है जिसका तात्पर्य है कि कोई भी वस्तु क्रय करते समय क्रेता को पूरी सावधानी बरतनी चाहिए तथा विक्रेता की बेईमानी से स्वयं को सुरक्षित रखना चाहिए। अर्थात यदि कोई वस्तु खरीदते समय क्रेता विक्रेता द्वारा किए गए छल–कपट या मिथ्या कथन को समझ नहीं पाता तो उससे उत्पन्न होने वाली हानि का वह स्वयं जिम्मेदार होता है और वह विक्रेता को दोषी नहीं ठहरा सकता। इस विधिक मान्यता के कारण ही सन 1930 के दशक में अमेरिका में सफेदपोश अपराधों में इतनी अधिक वृद्धि हुई कि तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 1933 में न्यायालयों से अनुरोध किया कि वे इस प्रकार के सफेदपोश अपराधों के मामलों में क्रेता सचेत का सिद्धांत लागू न करें।

अमेरिकी अपराधविज्ञ डॉ वॉल्टर्स रेकलेस ने सफेदपोश अपराधों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि ये अपराध उन व्यापारियों के व्यापारिक अपराधों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो व्यापार की गतिविधियों एवं नीतियों का निर्धारण करते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सफेदपोश अपराध समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा आवश्यकता के लिए नहीं बल्कि लोभ के कारण किए जाते हैं।

भारत में सन् 1992 में तथाकथित हर्षद मेहता कांड (प्रतिभूति घोटाला) सफेदपोश अपराध का ज्वलंत उदाहरण है, जिसमें अनेक बैंकों के उच्च अधिकारी, अफसर तथा बड़े राजनीतिक नेताओं की मिलीभगत के कारण देश को भारी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। प्रतिभूति घोटाले के कारण भारत के संपूर्ण शेयर बाजार का संतुलन बिगड़ गया और निवेशक शंकालु हो गए और नौकरशाह आशंकित हो गए। हर्षद मेहता का प्रतिभूति घपला मूलतः राजनीतिज्ञों तथा कानून और विधि विधान को धता बताकर व्यवसाय करने वालों के गठजोड़ का नतीजा था।

सफेदपोश अपराधों का वर्गीकरण

सफेदपोश अपराध सैद्धांतिक दृष्टि से चार प्रकार से वर्गीकृत किए गए हैं–

1. **तदर्थ सफेद रंगपोश अपराध** : तदर्थ सफेदपोश अपराध को वैयक्तिक सफेदपोश अपराध भी कहा जाता है। इसमें अपराधी अपना उद्देश्य उसके अपराध के लक्षित व्यक्ति के समक्ष आए बिना ही पूरा कर लेता है। इस श्रेणी

में कंप्यूटर हैकिंग, क्रेडिट कार्ड संबंधी कपट या धोखाधड़ी, टैक्स चोरी आदि अपराध आते हैं।

2. **न्यास भंग या विश्वास भंग पर आधारित सफेदपोश अपराध** : दूसरे वर्ग में आर्थिक गबन, भीतरी घात व्यापार, कूट रचित वेतन देयक जैसे सफेदपोश अपराध होते हैं जो विश्वास भंग या न्यास भंग पर आधारित होते हैं।
3. **उच्च पद या उच्चस्तरीय व्यक्तियों द्वारा उनके पद से संबंधित अनुषंगिक कार्यों के दौरान अपराध** : इन अपराधों में अपराधी का अपराध करने का कोई पूर्व आशय नहीं होता है किंतु अपने पदीय कार्य के संपादन में उसे ऐसा अवसर दिखाई देता है कि वह उस आपराधिक कार्य को कर के त्वरित धन कमा सकता है। भारत में कथित रूप से हुए 2 G कांड, कॉमनवेल्थ खेलों का घोटाला, बिहार चारा घोटाला इत्यादि इसके उदाहरण हैं।
4. **व्यापारिक गतिविधि के अंग के रूप में कारित सफेदपोश अपराध** : कदाचित अपने व्यापार को बनाए रखने तथा उसमें वृद्धि करने की नीयत से व्यक्ति कतिपय अपराध करता है। ऐसे अपराध उसे व्यापारिक दृष्टि से लाभ पहुंचाने में सक्षम होते हैं। कॉपीराइट या ट्रेडमार्क का उल्लंघन करना या पेटेंट की चोरी अथवा नकल करना इसके उदाहरण हैं। आधुनिक प्रौद्योगिक समय में डोमेन नाम से संबंधित अपराध तथा अन्य निगमीय अपराध भी इस वर्ग में आते हैं।

सफेदपोश अपराधों में वृद्धि के कारण

बीसवीं सदी में सफेदपोश अपराधों में असाधारण वृद्धि हुई जिसके अनेक कारण हैं इन्हीं कारणों में से सबसे प्रबल कारण वर्तमान समय में हुई विश्वव्यापी आर्थिक एवं औद्योगिक प्रगति है। सभी विकसित एवं विकासशील देशों की समाज व्यवस्था में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हुए तथा धन–संपदा में अभिवृद्धि हुई और जिसके कारण सफेदपोश अपराधों के लिए अवसर भी बढ़े। भारत में भी निरंतर सफेदपोश आपराधिकता का बढ़ता स्वरूप गंभीर चिंतन का विषय है। विधि आयोग ने अपनी 29वीं श्री रिपोर्ट में कहा था कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति एवं एकाधिकार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण सफेदपोश अपराधों में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

सफेदपोश अपराधी की उच्च सामाजिक एवं आर्थिक प्रास्थिति स्वयं ही इन अपराधों की वृद्धि का मूलभूत कारण है।

ये अपराधी इतने प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं कि अपना व्यवसाय या कारोबार अवैध गतिविधियों के कारण बड़ी चतुराई से चलाते रहते हैं और शोषित व्यक्ति को पता भी नहीं चलता कि उसका शोषण हो रहा है या उसे किसी प्रकार की हानि पहुंचाई जा रही है। जनता के सामान्य व्यक्ति भी इन्हें पकड़वाने के पचड़े में नहीं पड़ना चाहते क्योंकि वे इनके प्रभाव को भली–भांति जानते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी तथा कंप्यूटर विज्ञान में हुई प्रगति के कारण सफेदपोश अपराधिकता में नए आयाम जुड़ गए हैं। कंप्यूटर संबंधित अपराधों को साइबर अपराध कहा जाता है जिन के बढ़ते प्रभाव के कारण विभिन्न देशों के आपराधिक विधि प्रवर्तन से संबंधित अभिकरण के समक्ष एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो गई है। साइबर अपराधों की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि यह आसानी से पकड़ में नहीं आ पाते क्योंकि साइबर अपराधी को घटना स्थल पर उपस्थित रहना आवश्यक नहीं होता। इन अपराधों को

करने के लिए विशेष पूर्व तैयारी या साधनों की आवश्यकता ही होती है। साइबर अपराध मुख्यतः बैंकिंग सेवा, वित्तीय संस्थाएं, दूरसंचार सेवा, परिवहन सेवा, औद्योगिक प्रतिष्ठान आदि में प्रचलित हैं।

टिप्पणी

भारत में सफेदपोश अपराध (White Collar Crimes in India)

वर्तमान समय में भारत में दिन–प्रतिदिन घटित होने वाले कुछ सफेदपोश अपराधों का वर्णन इस प्रकार है–

जमाखोरी, कालाबाजारी एवं मिलावट (Hoarding, Black marketing and Adulteration)

जैसा कि पूर्व में कथन किया जा चुका है सफेदपोश अपराधों की समस्या आवश्यक रूप से मानव की अर्जन शीलता की प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न हुई है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की सफलता उसके द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली भौतिक वस्तुओं पर निर्भर करती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अधिकाधिक धन या संपत्ति का अर्जन करके अपने साथियों से आगे निकलना चाहता है तथा इस प्रयास में वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए ऐसी योजनाएं बनाता है जो सफेदपोश अपराधिक के रूप में उजागर होकर सामने आती हैं। व्यापारिक क्षेत्र में जमाखोरी, कालाबाजारी तथा खाद्य वस्तुओं में मिलावट द्वारा अवैध लाभ कमाने से जुड़ी ऐसी योजनाओं के कुछ प्रकार हैं–

काला धन (Black Money): कालाबाजारी की भांति काला धन जमा करना भी एक सफेदपोश अपराध है। यह साधन वह संपत्ति होती है जिसका कोई वैधानिक घोषित स्रोत या हिसाब–किताब नहीं होता तथा जो अवैध व अनधिकृत रूप से कमाई या जमा की जाती है। यह आवश्यक नहीं कि काला धन रुपये–पैसे या नकद राशि में ही हो, यह जमीन–जायदाद, गहने आदि के रूप में भी हो सकता है।

कर अपवंचन (Tax evasion): भारतीय कराधान से संबंधित विधियों की जटिलता के कारण करदाताओं को कर देने से बच निकलने या करों की चोरी के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। व्यापारियों, उद्यमियों, व्यावसायिक व्यक्तियों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, अधिवक्ताओं, ठेकेदारों, फिल्म जगत के नामी कलाकारों, आदि द्वारा करों की चोरी के मामले प्रायः सामने आते रहते हैं। कर वसूली से संबंधित विभागों की मुख्य समस्या यह है कि इन व्यवसायियों की निश्चित आय के बारे में जानना कठिन होता है। स्वाभाविक रूप से ये प्रतिष्ठित वर्ग के लोग कर के रूप में यथासंभव कम राशि अदा करते हैं और करों की चोरी की राशि का काले धन के रूप में परिचालन होता रहता है।

चिकित्सा क्षेत्र में सफेदपोश अपराध (White Collar Crimes in medical field): चिकित्सा व्यवसाय का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि इसमें अवैध रूप से पैसा अर्जित करने की पर्याप्त गुंजाइश रहती है। अवैध लैंगिक संभोग के परिणाम स्वरूप यदि कोई विवाहिता गर्भ धारण कर लेती है, तो अपने कुकृत्य को छिपाने तथा बदनामी से बचने के लिए वह तथा उसके अभिभावक चिकित्सकों को बड़ी राशि अदा करके गर्भपात करवा लेते हैं। इस अवैध कार्य के लिए चिकित्सक के अतिरिक्त उसके अधीनस्थ कार्य करने वाली मेट्रन आदि का हिस्सा भी रहता है। यहां तक कि कुछ पेशेवर व्यक्ति अवैध गर्भपात कराने वालों की तलाश में अभिकर्ता के रूप में कार्य करते हैं जो चिकित्सकों को ऐसे मामले लाकर देते रहते हैं।

अभियंत्रिकी व्यवसाय (Engineering Profession): अभियंत्रिकी विभाग में कार्यरत अधिकारी एवं कर्मचारी गण अपने पद का अनुचित लाभ उठाते हुए निर्माण कार्य में लगे

ठेकेदारों से मिलीभगत करके अवैध रूप से धन अर्जित करते हैं जो सफेदपोश अपराध का ही एक प्रकार है। बड़े निर्माण कार्यों से संबंधित अधिकारियों को रिश्वत के रूप में बड़ी राशि प्रदान कर ठेकेदार प्रायः घटिया स्तर का माल प्रयोग में लाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप निर्माण कार्य निर्धारित स्तर का नहीं होता है।

विधि व्यवसाय (Legal Profession): एक समय था जब विधि व्यवसाय को एक प्रतिष्ठित व्यवसाय के रूप में जाना जाता था। परंतु वर्तमान परिवेश में भारत में विधि व्यवसाय की गरिमा इतनी कम हो गई है कि लोगों को विधि के प्रति विशेष आस्था नहीं रह गई है। संभवत इसके दो मुख्य कारण हैं – (1) विधि की शिक्षा का निरंतर गिरता हुआ स्तर, और (2) वाद कारों को जुटाने के लिए विधि व्यवस्था द्वारा अपनाए जाने वाले अवांछित तरीके। अधिवक्ताओं द्वारा सामान्यतः अपनाए जाने वाले अवैध तरीकों में मिथ्या साक्ष्य गणना, व्यावसायिक साक्ष्यों का उपयोग करना, विधि व्यवस्था की नैतिक संहिता के नियमों का उल्लंघन और मामलों को लंबित रखने के लिए विलंबकारी हथकंडे अपनाना आदि प्रमुख हैं, जो सफेदपोश अपराध की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं।

शैक्षणिक क्षेत्र में सफेदपोश अपराध (White Collar Crimes in Educational field)

भारत की अधिकांश शिक्षण संस्थाओं में विशेष रुप से प्राइवेट प्रबंधकों द्वारा संचालित संस्थाओं में अनेक भ्रष्ट और अवैध तरीके अपनाए जाते हैं जो सफेदपोश अपराध की श्रेणी में ही आते हैं। ये संस्थाएं अपने संबंध में झूठे प्रचार तथा आंकड़े प्रस्तुत कर अनुदान के रूप में बड़ी राशि सरकार से प्राप्त करती हैं तथा अपने कर्मचारियों तथा शिक्षकों को वास्तविक वेतन से बहुत कम वेतन का भुगतान कर उनसे पूरी वेतन राशि प्राप्त करने के हस्ताक्षर करा लेती हैं तथा इस प्रकार इनका शोषण करती हैं।

व्यापार जगत के सफेदपोश अपराध (White Collar Crimes of business world)

व्यापार जगत में भी सफेदपोश अपराध व्याप्त हैं। न्यास भंग के प्रकरण इसके उदाहरण हैं। सदरलैंड ने विभिन्न प्रतिष्ठित निगमों, व्यापार समूहों, प्रतिष्ठानों आदि का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला कि इनके द्वारा व्यापार के विरोध में संविदा है या षड्यंत्रों द्वारा अवैध रूप से लाभ कमाया जाता है। अन्य प्रचलित अपराधों में विज्ञापनों द्वारा मिथ्या कथन, कॉपीराइट का उल्लंघन, अनुचित श्रम कार्य लेना, लोक अधिकारियों को रिश्वत या घूस देकर अपना काम करवाना, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनका प्रयोग व्यापारी वर्ग के लोग अक्सर करते हैं।

कंप्यूटर जनित सफेदपोश अपराध (Computer generated White Collar Crimes)

विगत दशक में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं सूचना प्रौद्योगिकी की अद्वितीय प्रगति के कारण नए प्रकार के सफेदपोश अपराध अस्तित्व में आए हैं जिन्हें सामान्यतः साइबर अपराध कहा जाता है। दिनोंदिन निरंतर बढ़ते हुए साइबर अपराधियों ने एक विश्वव्यापी समस्या का रूप धारण कर लिया है जिनके निवारण हेतु प्रायः सभी देश प्रयासरत हैं। विभिन्न प्रकार के साइबर अपराधों में दूरसंचार सेवाओं की चोरी, औद्योगिक जासूसी, अश्लील लैंगिक सामग्री का प्रसारण, इंटरनेट पर धनराशि की धोखाधड़ी, बैंकिंग सेवा का दुरुपयोग, दूरसंचार में अवैध हस्तक्षेप आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। तथापि यह आवश्यक नहीं है कि सभी साइबर अपराध सफेदपोश अपराध हों, इनमें से कुछ विशिष्ट अपराध सफेदपोश अपराध की श्रेणी में आते हैं।

टिप्पणी

सफेदपोश अपराधों तथा रूढ़िगत अपराधों में विभेद (Distinguish between White Collar Crimes and Customary Crimes)

यह उल्लेखनीय है कि सफेदपोश अपराधों का समाज विशेष की मान्यताओं, सांस्कृतिक मूल्यों, रुचियों आदि से घनिष्ठ संबंध है। इस कथन की सत्यता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि अन्य सामान्य अपराधियों की तुलना में सफेदपोश अपराधी अधिक बुद्धिमान, स्थिर चित्त, विवेकशील तथा उच्च सामाजिक वर्ग के होते हैं। वे समाज के प्रतिष्ठित वर्ग के दूरदर्शी व्यक्ति होते हैं। सफेदपोश अपराध परोक्ष तथा अव्यैक्तिक स्वरूप के होने के कारण इनका पता लगाना कठिन होता है। इसके विपरीत, सामान्य रूढ़िगत अपराध प्रत्यक्ष रूप के होते हैं तथा उनमें हिंसा, मारपीट, बल प्रयोग, संपत्ति का अंतरण आदि जैसा कोई भौतिक कृत्य अंतर्विष्ट होता है, जिसका सरलता से अभिज्ञान हो सकता है तथा पता लग सकता है।

सफेदपोश अपराधों को अपराधी के सामाजिक स्तर, व्यावसायिक गतिविधियों तथा परिणामों की गंभीरता के आधार पर अन्य सामान्य अपराधों से अलग नहीं किया जा सकता है। इन दोनों में वास्तविक अंतर यह है कि सफेदपोश अपराधी को उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुंचे बिना अपेक्षाकृत अच्छा आर्थिक लाभ हो जाता है तथा समाज भी इन अपराधों के प्रति अधिक गंभीर रुख नहीं अपनाता क्योंकि इनका प्रभाव समाज के सभी व्यक्तियों पर पड़ने के कारण व्यक्ति विशेष पर वह नगण्य होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सफेदपोश अपराध तथा सामान्य अपराधों के स्वरूप तथा परिणामों में भिन्नता होते हुए भी दोनों में एक समानता यह है कि इनमें अपराधिकता का तत्व आवश्यक रूप से विद्यमान रहता है। जहां सामान्य अपराध के लिए आपराधिक मनःस्थिति का होना अनिवार्य है वहीं सफेदपोश अपराध में आपराधिक मनःस्थिति प्रत्यक्षतः विद्यमान नहीं रहती, इसके उपरांत भी 'आन्वयिक आपराधिक मनःस्थिति के सिद्धांत' (Doctrine of constructive mens-rea) के आधार पर उन्हें अपराध मानते हुए दंडित किया जाता है।

सफेदपोश अपराधों के निवारण हेतु उपचार (Remedies for prevention of White Collar Crimes)

भारत जैसे विशाल देश में जहां अधिकांश लोग अशिक्षित तथा गरीबी से पीड़ित हैं वहां अपराध होना स्वभाविक ही है। इसलिए आपराधिक न्याय प्रशासकों के लिए अपराध निवारण विशेष रूप से सफेदपोश अपराधों की रोकथाम एक गंभीर समस्या बनी हुई है। फिर भी सफेदपोश अपराधों निवारण के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं–

1. सफेदपोस्श अपराधों की सुनवाई और विचारण के लिए विशेष अधिकरण गठित किए जाएं जिन्हें 5 वर्ष तक की सजा देने की अधिकारिता प्राप्त हो।
2. इन अपराधों की रोकथाम के लिए कठोर विधिक प्रावधान किए जाने चाहिए तथा कठोर दंड की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे कि लोग इन अपराधों को करने से डरें तथा इनसे विरत रहें। इन अपराधों के लिए ऐसे विधायक भी उचित एवं वैध माने जाएं जो भूतलक्षी प्रभाव रखते हो।
3. कुछ विधिज्ञों का मानना है कि सफेदपोश अपराधियों को कारावास का दंड दिए जाने के स्थान पर कठोरतम अर्थ दंड दिया जाना अधिक उचित होगा जो कि वास्तविक हानि से कई गुना अधिक हो सकता है।

4. प्रचार–प्रसार के माध्यमों द्वारा जनता में इन अपराधों के प्रति लोक चेतना जागृत किया जाना अति आवश्यक है। ये कार्य विधिक साक्षरता अभियान द्वारा अधिक अच्छी प्रकार संपन्न किए जा सकते हैं। इस हेतु दूरदर्शन, रेडियो, फिल्म, रंगमंच आदि श्रव्य–दृश्य माध्यमों का प्रयोग भी किया जा सकता है। इनके द्वारा लोगों को सफेदपोश अपराधों के गंभीर परिणामों के विषय में भी जानकारी प्रदान की जा सकती है जिससे कि वे इनसे दूर रहें।
5. भारतीय दंड विधि में सफेदपोश अपराध शीर्षक का एक नया अध्याय जोड़ा जाना चाहिए जिससे कि इन अपराधों में लिप्त अपराधी सामान्य अपराधी की भांति दंडित किए जा सकें। इसके लिए वर्तमान दंड विधि में संशोधन करना आवश्यक है।
6. भारत में निरंतर बढ़ती हुई आपराधिकता को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय अपराध निवारण आयोग का गठन किया जाना चाहिए जो अपराध और अपराधियों से संबंधित विभिन्न पहलुओं का सर्वेक्षण करे तथा उन पर नियंत्रण के प्रभावी उपचारात्मक उपाय सुझाए।
7. सफेदपोश अपराध विरोधी अभियान में जनता की सक्रिय भागीदारी होना बहुत अधिक आवश्यक है। जब तक जनता इन अपराधों के प्रति रोष व्यक्त नहीं करेगी तब तक सफेदपोश अपराधों का उपचार संभव नहीं है। यह कार्य शैक्षणिक संस्थानों द्वारा नैतिक आचरण तथा चरित्र निर्माण पर बल देकर किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'खाद्य कीमतों और अपराध दर के बीच सीधा संबंध है।'– यह किसका कथन है?

   (क) जॉन क्ले का (ख) रसेल का

   (ग) रैडजिनोविक्ज का (घ) थॉर्स्टन सेलिन का

4. सफेदपोश अपराध की अवधारणा किसके द्वारा प्रतिस्थापित की गई थी?

   (क) अल्बर्ट मॉरिस द्वारा (ख) डॉ. वाल्टर्स रेकलेस द्वारा

   (ग) सदरलैंड द्वारा (घ) रूजवेल्ट द्वारा

1.4 अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य

अपराध के कारणों पर विभिन्न प्ररिप्रेक्ष्यों का सीधा प्रभाव पड़ता है। इन परिप्रेक्ष्यों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

1.4.1 शास्त्रीय (प्रतिष्ठित) परिप्रेक्ष्य

बेकरिया, बेंथम और रोमिली शास्त्रीय स्कूल के अग्रदूत हैं। इस मत के अनुसार मनुष्य में स्वतंत्र इच्छा होती है और वह सुख–दुःख (अर्थात् सुखवाद) के आधार पर कार्य करता है। इस स्कूल ने किसी शैतानी आत्मा के प्रभाव में काम करने वाले अपराधियों के सिद्धांत को खारिज कर दिया। दंड मनुष्य को अपराध करने के लिए हतोत्साहित करता है क्योंकि अपराध से कोई लाभ नहीं होगा। अकेले राज्य के पास बल और अभियोजन

टिप्पणी

रखने की शक्ति होनी चाहिए। सजा भुगतने से अपराधी आजाद हो जाता है जैसे कि सजा काटकर वह अपनी आजादी को फिर से खरीद लेता है। बेकरिया के अनुसार, सजा का आधार व्यक्तियों को दूसरों की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करने से रोकना है जो वे एक सामाजिक अनुबंध के आधार पर प्राप्त करते हैं। सजा का उद्देश्य समाज के अस्तित्व को बनाए रखना है। सजा शीघ्र और प्रभावी होनी चाहिए क्योंकि यह सजा की क्रूरता नहीं बल्कि इसकी निश्चितता है ताकि आरोपी को अपराध करने से कोई लाभ न हो।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य के दौरान, आधुनिक अपराध विज्ञान के अग्रदूत बेकेरिया ने बुरी आत्मा की सर्वशक्तिमानता को खारिज करते हुए आपराधिकता के अपने प्राकृतिक सिद्धांत की व्याख्या की। उन्होंने व्यक्ति की मानसिक घटना पर अधिक जोर दिया और अपराध को व्यक्ति की 'स्वतंत्र इच्छा' के लिए जिम्मेदार ठहराया। इस प्रकार वह अपने समय के उपयोगितावादी दर्शन से बहुत प्रभावित थे, जिसने सुखवाद, अर्थात् 'दर्द और आनंद सिद्धांत' पर निर्भरता रखी। जैसा कि डोनाल्ड टाफ्ट ने ठीक ही कहा था, इस सिद्धांत ने अपराध करने के लिए स्वतंत्र विकल्प के संदर्भ में कार्य–कारण की धारणा को निहित किया यानी तर्कसंगत व्यक्ति द्वारा सुख की तलाश और दर्द से बचना। शास्त्रीय स्कूल ऑफ क्रिमिनोलॉजी के मुख्य सिद्धांत नीचे दिए गए हैं–

(1) राज्य से मनुष्य के उदय में एक जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में उसके तर्क को लागू करना शामिल था। सिद्धांत इस धारणा पर आधारित है कि एक व्यक्ति अपनी इच्छा और मन की शक्ति का प्रयोग करके अपने आचरण को नियंत्रित कर सकता है। इस प्रकार, व्यवहार सहित मानव व्यवहार 'स्व–निर्मित' और 'स्व–नियंत्रित' है। सजा का डर इंसान की 'इच्छा' में बदलाव ला सकता है और उसे अपराध करने से रोकने के लिए राजी कर सकता है।

(2) यह किसी व्यक्ति का कार्य है न कि उसका इरादा जो उसमें आपराधिकता का निर्धारण करने का आधार बनता है। दूसरे शब्दों में, क्रिमिनोलॉजिस्ट अपराधी के 'इरादे' के बजाय उसके 'कार्य' से चिंतित हैं। वे कभी नहीं सोच सकते थे कि अपराध करणीय जैसा कुछ भी हो सकता है।

(3) शास्त्रीय लेखकों ने दंड को मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए 'डर' पैदा करने के लिए दर्द और अपमान की एक प्रमुख विधि के रूप में स्वीकार किया।

(4) इस स्कूल के प्रस्तावक, हालांकि, अपराध की रोकथाम को इसके लिए सजा से अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। इसलिए, उन्होंने निषिद्ध कृत्यों के लिए सजा को व्यवस्थित करने के लिए फ्रांस, जर्मनी और इटली में एक आपराधिक संहिता की आवश्यकता पर जोर दिया। इस प्रकार क्लासिकल स्कूल ऑफ क्रिमिनोलॉजी का वास्तविक योगदान इस तथ्य में निहित है कि इसने एक अच्छी तरह से परिभाषित आपराधिक न्याय प्रणाली की आवश्यकता को रेखांकित किया।

(5) शास्त्रीय स्कूल के अधिवक्ताओं ने सार्वजनिक सुरक्षा के हित में अपराधियों को दंडित करने के राज्य के अधिकार का समर्थन किया। दर्द और सुख के सुखवादी सिद्धांत पर भरोसा करते हुए, उन्होंने बताया कि वैयक्तिकरण दंड का आधार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह था कि अपराधी को अपराध से प्राप्त सुख और उससे पीड़ित को हुई पीड़ा को ध्यान में रखते हुए सजा दी

जानी थी। हालाँकि, उन्होंने न्याय के समान होने की याचना की, जिसका अर्थ था समान अपराध के लिए समान दंड।

(6) शास्त्रीय विद्यालय के प्रतिपादकों का यह भी मानना था कि आपराधिक कानून प्राथमिक रूप से सकारात्मक प्रतिबंधों पर टिका होता है। वे न्यायाधीशों की मनमानी शक्तियों के प्रयोग के खिलाफ थे। उनकी राय में न्यायाधीशों को अपने फैसले को कानून के दायरे में सख्ती से सीमित करना चाहिए। वे कठोर दंड से भी घृणा करते थे।

इस प्रकार बेकरिया द्वारा प्रतिपादित शास्त्रीय विद्यालय मोंटेस्कुजे, ह्यूम, बेकन और रूसो के लेखन के प्रभाव के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया। उनकी प्रसिद्ध कृति 'एसेज ऑन क्राइम्स एंड पनिशमेंट' ने पूरे यूरोप में व्यापक प्रशंसा प्राप्त की और समकालीन पश्चिम में एक नई आपराधिक सोच को बढ़ावा दिया। उन्होंने मानव के प्राकृतिक अधिकारों पर जोर देकर आपराधिक कानून का मानवीकरण करने की मांग की। उन्होंने कड़ी सजा, यातना और मौत की सजा के खिलाफ आवाज उठाई। अपराध और सजा पर बेकरिया के विचारों को वोल्टेयर ने भी समर्थन दिया, जिसके परिणामस्वरूप कई यूरोपीय देशों ने कठोर बर्बर दंडों को कम करने के लिए अपनी दंड संहिताओं को फिर से तैयार किया और उनमें से कुछ अपने कोड से मृत्युदंड को समाप्त करने की हद तक चले गए।

तर्कसंगत आपराधिक सोच के विकास में शास्त्रीय विद्यालय का योगदान किसी भी तरह से कम महत्वपूर्ण नहीं था, फिर भी, इसके अपने नुकसान थे। शास्त्रीय स्कूल की प्रमुख कमी यह थी कि यह स्वतंत्र इच्छा के एक अमूर्त अनुमान पर आगे बढ़ता था और अपराधी के दिमाग की स्थिति पर ध्यान दिए बिना पूरी तरह से अधिनियम (यानी अपराध) पर निर्भर करता था। इसने एक ही अपराध के लिए समान दंड निर्धारित करने में गलती की और इस प्रकार पहले अपराधियों और आदतन अपराधियों के बीच कोई भेद नहीं किया। हालांकि, इस स्कूल ऑफ क्रिमिनोलॉजी की सबसे बड़ी उपलब्धि इस तथ्य में निहित है कि इसने एक पर्याप्त आपराधिक नीति का सुझाव दिया, जिससे मनमाने ढंग से सजा दिए बिना प्रशासन करना आसान था। इसका श्रेय बेकरिया को जाता है जिन्होंने अपराध और अपराधियों की पहले की अवधारणाओं की निंदा की, जो धार्मिक भ्रम और मिथकों पर आधारित थीं और एक अपराधी के व्यक्तित्व पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता पर जोर दिया ताकि उसके अपराध और सजा को निर्धारित किया जा सके। बेकरिया के विचारों ने बाद के अपराधियों के लिए अपराध के कारणों के एक तर्कसंगत सिद्धांत के साथ आने के लिए एक पृष्ठभूमि प्रदान की, जिसने अंततः सकारात्मक अपराध विज्ञान और दंडशास्त्र की नींव का नेतृत्व किया।

1.4.2 प्रत्यक्षवादी परिप्रेक्ष्य

व्यवहार विज्ञान की प्रगति के साथ, मानव आचरण की मोनोजेनेटिक व्याख्या ने अपनी वैधता खो दी और अपराध की उत्पत्ति के बारे में एक उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए एक नई प्रवृत्ति धीरे–धीरे विकसित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी तक, कुछ फ्रांसीसी डॉक्टर यह स्थापित करने में सफल रहे कि यह न तो अपराधी की स्वतंत्र इच्छा थी और न ही उसकी जन्मजात भ्रष्टता जिसने उसे अपराध करने के लिए प्रेरित किया, लेकिन

टिप्पणी

आपराधिकता का वास्तविक कारण अपराधी की मानवशास्त्रीय विशेषताओं में निहित था। कुछ पैनोलॉजिस्ट ने मस्तिष्क की जैविक कार्यप्रणाली को प्रदर्शित करने का भी प्रयास किया और उत्साहपूर्वक आपराधिकता और मस्तिष्क की संरचना और कार्यप्रणाली के बीच एक सह–संबंध स्थापित किया। इससे अपराध विज्ञान के सकारात्मक स्कूल का उदय हुआ। इस स्कूल के मुख्य प्रतिपादक तीन प्रख्यात इतालवी क्रिमिनोलॉजिस्ट थे, जिनके नाम सेसर लोम्ब्रोसो, रैफेल गारोफेलो और एनरिको फेरी थे। यही कारण है कि इस स्कूल को इटालियन स्कूल ऑफ क्रिमिनोलॉजी भी कहा जाता है।

लोम्ब्रोसो इस दृष्टिकोण के मुख्य प्रतिपादक हैं। उन्होंने नास्तिकवाद की अवधारणा की व्याख्या की। लोम्ब्रोसो के सामान्य सिद्धांत ने सुझाव दिया कि कई शारीरिक विसंगतियों द्वारा अपराधियों को गैर अपराधियों से अलग किया जाता है। उन्होंने कथन किया कि अपराधियों ने एक आदिम या अमानवीय प्रकार के आदमी के लिए एक प्रत्यावर्तन का प्रतिनिधित्व किया, जो कि वानर और शुरुआती मानव की याद दिलाता है और कुछ हद तक संरक्षित है।

अपराधियों, पागल और सामान्य व्यक्तियों की पोस्टमार्टम परीक्षाओं और मानवशास्त्रीय अध्ययनों के माध्यम से, लोम्ब्रोसो आश्वस्त हो गए कि "जन्मजात अपराधी" को कुछ विशेषताओं द्वारा शारीरिक रूप से पहचाना जा सकता है, जैसे– माथे का ढलान, असामान्य आकार के कान, चेहरे की विषमता, पूर्वानुमानवाद, भुजाओं की अत्यधिक लंबाई, कपाल की विषमता, और अन्य "भौतिक कलंक"। उनका मानना था कि विशिष्ट अपराधियों, जैसे कि चोर, बलात्कारी और हत्यारे, को विशिष्ट विशेषताओं से अलग किया जा सकता है। लोम्ब्रोसो ने यह भी कहा कि अपराधियों में दर्द और स्पर्श की संवेदनशीलता कम होती है। अधिक तीव्र दृष्टि; पश्चाताप की अनुपस्थिति सहित नैतिक भावना की कमी; अधिक घमंड, आवेग, प्रतिशोध, क्रूरता और अन्य अभिव्यक्तियाँ, जैसे कि एक विशेष आपराधिक तर्क और गोदने का अत्यधिक उपयोग आदि से जन्मजात अपराधियों को पहचाना जा सकता है। "जन्मजात अपराधी" के अलावा लोम्ब्रोसो ने "अपराधी", या सामयिक अपराधियों, जुनून से अपराधियों, नैतिक अनैतिकता और आपराधिक मिर्गी का भी वर्णन किया।

एक अन्य प्रतिपादक एनरिको फेरी ने लोम्ब्रोसो के विचारों को स्वीकार करते हुए पर्यावरण पर भी बल दिया। उन्होंने अपराधों को भौतिक या भौगोलिक, मानवशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारकों के सिंथेटिक उत्पाद के रूप में वर्णित किया।

फेरी के अनुसार, सजा व्यवहार को प्रभावित करने का केवल एक रूप है और इसलिए उन्होंने उन स्थितियों को हटाकर एक विस्तृत अपराध रोकथाम कार्यक्रम पर बल दिया, जिसके कारण अपराध होता है।

फेरी ने निम्नलिखित प्रकार के अपराधियों का वर्णन किया:

(1) जन्मजात अपराधी

(2) सामयिक अपराधी

(3) भावुक अपराधी

(4) पागल अपराधी

(5) आदतन अपराधी

उन्होंने अपराध की रोकथाम के लिए एक गहन कार्यक्रम का सुझाव दिया और अपराधियों के इलाज के लिए कई उपायों की सिफारिश की। उन्होंने जोर देकर कहा कि पनिशिनेंट अपराधी को सुधारने के संभावित तरीकों में से एक हो सकता है। उन्होंने एक समुदाय में कैदी के पुनः समायोजन की संभावित संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए अनिश्चित सजा का समर्थन किया।

अपनी दंडात्मक परियोजना में 'फेरी ने नैतिक जिम्मेदारी से इनकार किया और प्रतिशोध और नैतिक दोष के लिए सजा की निंदा की।

रैफेल गैरोफेलो अपराध विज्ञान के सकारात्मक स्कूल के तीन मुख्य प्रतिपादकों में से एक थे। गैरोफेलो ने इतालवी अदालतों में एक मजिस्ट्रेट के रूप में अपना करियर शुरू किया और 1903 में न्याय मंत्री के पद तक पहुंचे। उन्होंने अपराधियों की परिस्थितियों और रहने की स्थिति के करीब से अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि एक अपराधी अपने स्वयं के वातावरण का एक प्राणी है, वह एकमात्र प्रत्यक्षवादी था जिसे एक न्यायविद्, एक सीनेटर और आपराधिक कानून के प्रोफेसर के रूप में विविध अनुभव थे। इसलिए, उन्होंने अपने समकालीनों की तुलना में अपराध और अपराधियों की समस्या को पूरी तरह से अलग तरीके से देखा। अपराध के कारण के रूप में स्वतंत्र इच्छा के शास्त्रीय सिद्धांत को खारिज करते हुए गैरोफेलो ने अपराध को एक ऐसे कार्य के रूप में परिभाषित किया जो एक औसत व्यक्ति के पास दया और ईमानदारी की भावनाओं को ठेस पहुंचाता है और जो समाज के लिए हानिकारक है। उन्होंने जोर दिया कि दया की कमी व्यक्ति के खिलाफ अपराध उत्पन्न करती है जबकि ईमानदारी की कमी संपत्ति के खिलाफ अपराध की ओर ले जाती है। अपराधियों के वर्गीकरण के रूप में, उन्होंने फेरिस वर्गीकरण को खारिज कर दिया और अपराधियों को चार मुख्य श्रेणियों में रखा, अर्थात्

(1) हत्यारे जिन्हें उन्होंने "स्थानिक" अपराधी कहा जिनमें दया और ईमानदारी की भावनाओं का अभाव था;

(2) हिंसक अपराधी जो पर्यावरणीय प्रभावों से प्रभावित होते हैं, जैसे, सम्मान, राजनीति और धर्म के पूर्वाग्रह जो दया की कमी का संकेत देते हैं;

(3) अपराधियों में सत्यनिष्ठा की भावना की कमी, जैसे, चोर;

(4) कामुक या वासनापूर्ण अपराधी जो सेक्स और शुद्धता के खिलाफ अपराध करते हैं। उनमें नैतिक बोध की कमी होती है।

इतालवी 'न्यायपालिका' के सदस्य के रूप में गैरोफिलो आपराधिक न्याय के प्रशासन में तत्कालीन मौजूदा आपराधिक कानून और प्रक्रिया से अच्छी तरह परिचित थे और अपराधियों के लिए सजा के तीन तरीकों के रूप में मौत, आजीवन कारावास या परिवहन और मरम्मत की सिफारिश की थी। एक न्यायाधीश के रूप में अपने अनुभव से और फ्रांस में सुधारात्मक उपायों की पूर्ण विफलता को देखने के बाद, गैरोफेलो अपराधियों के सुधार के बारे में बहुत आशावादी नहीं थे। इसलिए, उन्होंने आदतन अपराधियों के उन्मूलन के लिए दृढ़ता से अनुरोध किया जो सामाजिक रक्षा के उपाय के रूप में सामाजिक अनुकूलन में असमर्थ थे।

प्रोफेसर अर्नेस्ट ए. हूटन ने अपराध में शारीरिक और नस्लीय कारकों को महत्वपूर्ण बताया। अपराधियों की शारीरिक संरचना निम्नतर होती है और इस प्रकार

वे गैर–अपराधियों से भिन्न होते हैं। उनके अनुसार 'आपराधिक स्टॉक' को समाप्त करने की आवश्यकता है। दोषपूर्ण प्रकार के व्यक्तियों की नसबंदी और बेहतर नस्ल का प्रजनन अपराध की जाँच के लिए आवश्यक है।

टिप्पणी

प्रत्यक्षवादियों का मुख्य योगदान उपचार के सिद्धांतों के संबंध में है कि किशोरों और वयस्कों के साथ अलग–अलग तरीके से व्यवहार किया जाना चाहिए। किशोरों और वयस्कों की सजा का निष्पादन मनोचिकित्सकों, अपराधियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं पर छोड़ दिया गया है। कारावास के विकल्प के रूप में जुर्माना, परिवीक्षा और पैरोल बेहतर है। प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण न्यायपालिका की भूमिका के पुनर्निर्धारण का सुझाव देता है। प्रत्यक्षवादी सुधारक वाक्य से दोष निर्धारण को अलग करने पर बल देते हैं। पहला एक योग्य न्यायाधीश द्वारा किया जाना है जबकि दूसरा एक सामाजिक चिकित्सक द्वारा किया जाना है।

क्रिमिनोलॉजी के सकारात्मक स्कूल का मूल्यांकन

यह देखा जाएगा कि अपराध विज्ञान का सकारात्मक स्कूल अनिवार्य रूप से पहले के शास्त्रीय और नव–शास्त्रीय सिद्धांतों के खिलाफ प्रतिक्रिया से उभरा है। इस स्कूल के अधिवक्ताओं ने आत्मा की सर्वशक्तिमानता और स्वतंत्र इच्छा के सिद्धांतों को इस आधार पर पूरी तरह से खारिज कर दिया कि वे काल्पनिक और तर्कहीन थे। वैकल्पिक रूप से, उन्होंने आपराधिकता को मानवशास्त्रीय, भौतिक और सामाजिक वातावरण के लिए जिम्मेदार ठहराया। आपराधिक विज्ञान के विकास में सकारात्मक स्कूल का सबसे बड़ा योगदान इस तथ्य में निहित है कि अपराधियों का ध्यान पहली बार व्यक्ति, यानी अपराधी के व्यक्तित्व के बजाय उसके कार्य (अपराध) या सजा की ओर खींचा गया था। इसने निश्चित रूप से आधुनिक दंडशास्त्रियों के लिए एक विधि और सुधार के रूप में वैयक्तिकरण के सिद्धांत को शामिल करते हुए एक आपराधिक नीति तैयार करने का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार, प्रत्यक्षवादियों ने अपराध विज्ञान के क्षेत्र में प्राकृतिक विज्ञान की कार्यप्रणाली और तर्क का परिचय दिया।

सकारात्मक स्कूल की प्रबलता के साथ, पेनोलॉजी से अपराध विज्ञान पर जोर दिया गया था और दंड की वस्तुओं को मौलिक रूप से बदल दिया गया था क्योंकि प्रतिशोधी तरीकों को छोड़ दिया गया था। अपराधियों को अब दंडित करने के बजाय इलाज किया जाना था। अपराधियों के समाज का संरक्षण प्राथमिक उद्देश्य होना था जिसे अपराधियों के विभिन्न वर्गों के लिए अलग–अलग डिग्री में सुधारात्मक तरीकों का उपयोग करके प्राप्त किया जा सकता था। इस संदर्भ में कहा जाता है कि सकारात्मक स्कूल ने आधुनिक समाजशास्त्रीय या नैदानिक स्कूल को जन्म दिया है जो अपराधी को उसकी परिस्थितियों और जीवन के अनुभव के उप–उत्पाद के रूप में मानता है।

प्रत्यक्षवादियों ने केवल उन अपराधियों को समाप्त करने का सुझाव दिया जिन्होंने अतिरिक्त संस्थागत तरीकों के लिए अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं दी। इस स्कूल के प्रतिपादकों ने स्वीकार किया कि ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनके तहत एक व्यक्ति को अपराध करने के लिए मजबूर किया जा सकता है। इसलिए, कानूनी दृष्टिकोण से अपराध को सख्ती से देखने के अलावा, न्यायिक अधिकारियों को अपने अपराध का निर्धारण करने और सजा देने के दौरान परिस्थितिजन्य परिस्थितियों की दृष्टि नहीं खोनी चाहिए।

1.4.3 मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

वर्तमान समय में मनोविज्ञान एवं मनश्चिकित्सा शास्त्र में अनेक अनुसंधान हुए हैं जिनके फलस्वरूप मानव का स्वभाव तथा उसकी आंतरिक भावनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। इन्हीं विस्तृत जानकारियों के कारण अपराधियों की मनोवृति तथा उनके मनोविकारों को अच्छी तरह समझने में सहायता प्राप्त हुई है।

गिलिन का इस संदर्भ में कहना है कि अपराधियों के मनोवैज्ञानिक परीक्षण से ही उनकी आपराधिकता के कारणों के विश्लेषण में सहायता प्राप्त होती है और उसी के अनुसार दंड निर्धारण करना भी सरल हो जाता है।

इस नवीन विचारधारा को क्लिनिकल विचारधारा भी कहा जाता है। इस विचारधारा के अनुसार व्यक्ति के स्वभाव पर उसके वंशानुगत लक्षणों का तथा जीवन के अनुभवों का गहरा प्रभाव पड़ता है। बाल्य काल से लेकर अपराध किए जाने तक के समस्त अनुभवों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही व्यक्ति अपराध करने की ओर अग्रसर होता है अतः उसके व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण करने के बाद उपचारात्मक पद्धति से ही उसका सुधार किया जाना चाहिए जिससे कि वह व्यक्ति पुनः अपराधिकता की ओर न जाए।

इस विचारधारा का यह मानना है कि जिस प्रकार किसी रोगी के रोग के कारणों का पता लगाने के उपरांत ही उसका उपचार किया जाता है ठीक उसी प्रकार अपराधी का भी उसकी अपराधिकता के कारणों का पता लगाने के बाद ही उपचारात्मक दंड पद्धति द्वारा निदान किया जाना चाहिए।

1.4.4 समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

अपराधशास्त्र की समाजशास्त्रीय विचारधारा के अनुसार किसी भी व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियां ही अपराधों के लिए कारणीभूत होती हैं।

संस्कृति, धर्म, गतिशीलता, आर्थिक दशा, राजनीतिक मान्यताएं, जनसंख्या की गहनता, रोजगार की स्थिति आदि अनेक सामाजिक कारण आपराधिकता से गहरा संबंध रखते हैं।

सदरलैंड द्वारा विविध कारकों के सिद्धांत में इन सामाजिक कारणों को समाविष्ट करके अपराधों से प्रत्यक्षतः संबंधित बताया गया है।

इस विचारधारा के अनुसार अपराध का कोई भी एक निश्चित कारण नहीं होता वरन विभिन्न कारण मिलकर एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं जो अपराध के लिए अनुकूल स्थिति को बनाती है और इसी स्थिति के प्रभाव में कोई भी व्यक्ति अपराध कर बैठता है। इस धारणा का यह भी मानना है कि अपराध और अपराधियों के प्रति एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। अतः आपराधिक कृत्य किसी भी व्यक्ति के आचरण का ही परिणाम होते हैं।

अपराधशास्त्री कोहेन का मानना है कि मानव में आपराधिकता का मूल कारण विभेदक अवसर है क्योंकि समाज में विधि का पालन करने वाले और विधि का उल्लंघन करने वाले लोगों में निरंतर संघर्ष बना रहता है किंतु जैसे ही अवसर प्राप्त होता है ऐसे लोग अपराध करने से नहीं चूकते। कोहेन आगे कहते हैं कि अपराध के कारणों को

टिप्पणी

उसके कारकों में ढूंढ़ना भूल होगी क्योंकि कारकों का सामाजिक वातावरण को बदले बिना सरलता से विलोपन किया जा सकता है।

1.4.5 मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

मार्क्सवादियों ने इस विचार का प्रचार किया है कि अपराध केवल समाज के पूंजीवादी वर्चस्व से उत्पन्न होते हैं। ऐसे समाज के अंतर्गत उच्च वर्ग कमजोरों का शोषण कर सकता है, उन्हें शारीरिक खतरे में डाल सकता है, और उनके मानवाधिकारों का उल्लंघन या तो दंड से या केवल हल्की सजा के साथ कर सकता है। मार्क्सवादी मानते हैं कि श्रम और पूंजी का अनुचित विभाजन अंततः अमीर और गरीब के बीच संघर्ष और अंततः पूंजीवादी आदर्शों को उखाड़ फेंकने का कारण बनेगा। नतीजतन, साम्यवाद पूंजीवाद की जगह लेगा। मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन करने वाले रिचर्ड क्विन्नी ने आरोप लगाया कि पूंजीवादी राज्य एक आपराधिक समाज का निर्माण कर रहा है और इसे समाजवादी समाज द्वारा प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता है जिसमें लोगों के सामाजिक–आर्थिक अधिकार अधिक सुरक्षित होंगे और इससे निश्चित रूप से अपराध में कमी आएगी। उनके अनुसार, पूंजीवादी शासन में आपराधिक विधि पूंजीवादी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए राज्य और शासक वर्ग का एक साधन है और यह उनके हितों की सुरक्षा के लिए है। इन परिस्थितियों में, समाज के गरीब वर्ग विधिक व्यवस्था के दबाव से उत्पीड़ित रहते हैं और उनका असंतोष अपराध को जन्म देता है। पूंजीवादी समाज के पतन से ही अपराध की समस्या का समाधान हो सकता है।

हालाँकि, आपराधिकता पर आर्थिक स्थितियों के प्रभाव के संबंध में मार्क्सवादी अपने विचार में भिन्न हैं। उनकी राय में दोनों विपरीत अनुपात में भिन्न होते हैं। हालाँकि, इस दृष्टिकोण का खंडन इस आधार पर किया गया है कि पिछले 150 वर्षों के दौरान दुनिया भर में लगातार आर्थिक प्रगति के बावजूद अपराध लगातार ऊपर की ओर बढ़ रहे हैं। आर्थिक समृद्धि के साथ अपराध दर में वृद्धि का वास्तविक कारण संभवतः लोगों की गिरफ्तारी और निरोध से बचने में अधिक व्यय करने की क्षमता है। इसके अलावा, अपराधी पर मुकदमा चलाने में या अपराधी की चालाकी भरी रणनीति के कारण पीड़ित की ओर से पहल की कमी के कारण अत्यधिक बड़ी संख्या में अपराध अनिर्धारित और बिना प्रतिवेदन किये रह जाते हैं। सफेदपोश अपराध जैसे रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, दुर्विनियोजन, गबन, जालसाजी, ठग–व्यापार, आदि अक्सर मुद्रा और धन के बल पर पता नहीं चल पाते हैं। वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों ने एक अजीबोगरीब स्थिति पैदा कर दी है, जिसमें अपराध बड़े पैमाने पर होने के लिए बाध्य हैं, चाहे आर्थिक स्थिति अनुकूल हो या प्रतिकूल।

अपराध पर आर्थिक स्थितियों की बातचीत की ओर इशारा करते हुए, हरमन मैनहेम ने देखा कि यातायात अपराधों को छोड़कर, आपराधिक विधि प्रशासकों को आर्थिक अपराधों से निबटने में अपना लगभग तीन–चौथाई समय और ध्यान देना पड़ता है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आर्थिक कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपराधी व्यवहार में योगदान करते हैं।

डॉ. मॉरिसन ने भारत में आर्थिक स्थिति और अपराध के बीच संबंधों पर एक व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि भारतीय जाति व्यवस्था में आर्थिक सुदृढ़ता

की एक अजीबोगरीब अंतर्धारा थी जहाँ जाति का प्रत्येक सदस्य आर्थिक दृष्टिकोण से स्वयं को पूर्ण रूप से सुरक्षित अनुभव कर सकता था।

1.4.6 भौगोलिक परिप्रेक्ष्य

भूगोलवेत्ताओं के अनुसार जलवायु और स्थलाकृति मानव व्यवहार को बहुत अधिक प्रभावित करती है। यह सिद्धांत विशेष रूप से निर्मित वातावरण के भीतर आपराधिक पैटर्न पर केंद्रित है और लोगों के संज्ञानात्मक व्यवहार पर इन बाहरी चर के प्रभावों का विश्लेषण करता है। मोंटेस्क्यू ने कहा कि अपराधी भूमध्य रेखा के पास अधिक थे और नशे की लत ध्रुवों के पास अधिक थी। सांख्यिकी के जनक एडॉल्फ क्वेटलेट ने अपराध के अपने 'थर्मिक लॉ' में कहा है कि गर्म जलवायु वाले देशों में, मानव हिंसा के अपराध संख्या में अधिक थे जबकि ठंडे देशों में संपत्ति के खिलाफ अपराध अधिक संख्या में थे। मौसम, महीनों, उत्तर और दक्षिण, ठंड और गर्म, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के अनुसार अपराध दर भिन्नता भी नोट की गई है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण को 1980 के दशक में पॉल और पेट्रीसिया ब्रैंटिंघम द्वारा विकसित किया गया था, जिसमें पर्यावरण या संदर्भ कारकों पर ध्यान केंद्रित किया गया था जो आपराधिक गतिविधि को प्रभावित कर सकते हैं। इनमें अंतरिक्ष (भूगोल), समय, विधि, अपराधी और लक्ष्य या शिकार सम्मिलित हैं। ये पांच घटक आवश्यक और पर्याप्त शर्त हैं, क्योंकि एक के बिना, अन्य चार, यहां तक कि एक साथ, एक आपराधिक घटना का गठन नहीं करेंगे।

अपराध की पारिस्थितिकी

पारिस्थितिकी पर्यावरण के संबंध में लोगों और संस्थाओं का अध्ययन है। स्थलाकृतिक स्थितियाँ किसी विशेष क्षेत्र या इलाके में अपराध की घटनाओं को भी प्रभावित करती हैं। अनुसंधान की एक शृंखला के बाद, प्रख्यात इतालवी अपराधी एनरिको फर्न ने अपने देश के अपराध सूचकांक का विश्लेषण किया और निष्कर्ष निकाला कि एक ही देश में अपराध दर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में काफी भिन्न होती है। कुछ विशिष्ट अपराध देश के अन्य हिस्सों की तुलना में किसी विशेष क्षेत्र के लिए अधिक विशिष्ट होते हैं। इसी तरह के अवलोकन फ्रांस, इंग्लैंड और यू.एस.ए. में अपराधियों द्वारा किए गए थे जिन्होंने अपराध पर पारिस्थितिकी के प्रभाव को पर्याप्त रूप से स्थापित किया था। यह सर्वविदित है कि सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और ड्रग कानूनों का उल्लंघन मैदानी इलाकों की तुलना में सीमावर्ती क्षेत्रों और तटीय क्षेत्रों में अधिक आम है। वन क्षेत्रों में पेड़ों की अवैध कटाई और वन कानूनों का उल्लंघन हर दिन की घटना है।

भारत में अपराध पर पारिस्थितिकी का प्रभाव स्पष्ट रूप से राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के डकैतों से प्रभावित वन क्षेत्रों और बीहड़ों में देखा जा सकता है जहाँ बचने और पता लगाने के अवसर बहुत हैं। एक और उदाहरण के लिए, भारत के तीर्थ स्थान सभी प्रकार की आपराधिक गतिविधियों जैसे कि धोखाधड़ी, चोरी, शोषण आदि के लिए प्रजनन स्थल हैं। भाग्य बताने वालों और साधुओं की आड़ में काम करने वाले धोखेबाज अक्सर प्रथम श्रेणी के अपराधी होते हैं।

पारिस्थितिक सिद्धांत के समर्थक सामाजिक अव्यवस्था को अपराध का मुख्य कारण मानते हैं। इसलिए, उनका मानना है कि व्यक्तिगत अपराधियों का इलाज करने

या उन्हें दंडित करने से समस्या कम नहीं होगी और इसका समाधान सामाजिक संगठन को स्थिर करने और समुदाय की भावना को बढ़ावा देने के प्रयास करने में है, खासकर युवाओं में। जैसा कि दुर्खीम ने ठीक ही कहा है, 'समग्र अव्यवस्था सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार को अपराध की दिशा में बदल देती है'।

देश के विभिन्न हिस्सों में अपराध–दर की क्षेत्रीय तुलना पर्याप्त रूप से संकेत देती है कि कुछ अपराध एक विशेष स्थान के लिए विशिष्ट हैं। इसलिए, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अपराध की पारिस्थितिकी स्थान के दृष्टिकोण से अपराधियों पर पड़ोस, जनसंख्या, स्थलाकृतिक कारकों आदि जैसे प्रभावों के अध्ययन में शामिल है। इस बिंदु पर टिप्पणी करते हुए, डोनाल्ड टाफ्ट ने देखा कि "अपराध की पारिस्थितिकी का अध्ययन अपराधी के स्थान या अपराधियों के निवास या अपराध पर कुछ कथित प्रभाव के संदर्भ में किया जा सकता है जिसका स्थान और स्थलाकृति के संदर्भ में वितरण है"। उन्होंने आगे देखा कि अपराधी अक्सर मोबाइल होते हैं और अपराध के स्थान और अपराधी के बीच एक आकस्मिक संबंध प्रतीत होता है। हालाँकि, यह बताया जा सकता है कि अपराध की पारिस्थितिकी को अपराध की निकटता और सामाजिक परिस्थितियों के साथ भ्रमित करने की आवश्यकता नहीं है। अपराध की पारिस्थितिकी में प्रमुख विचार विभिन्न क्षेत्रों की स्थलाकृतिक स्थिति और उन स्थानों के लिए विशिष्ट अपराधों के कारण पर उनका प्रभाव है। इस प्रकार, पारिस्थितिकी निस्संदेह अपराध के कई कारकों में से एक है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. मनुष्य को अपराध करने के लिए क्या हतोत्साहित करता है?

   (क) दंड (ख) धन

   (ग) ख्याति (घ) पुरस्कार

6. किसने अपराध में शारीरिक और नस्लीय कारकों को महत्वपूर्ण बताया?

   (क) अर्नेस्ट ए. हूटन ने (ख) गैरोफेलो ने

   (ग) लोम्ब्रोसो ने (घ) फेरी ने

1.5 अपराध की वर्तमान अनुमानित वृद्धि

वर्तमान काल में अपराध शास्त्रीय चिंतन में अनेक बदलाव देखने को मिलते हैं। आधुनिक अपराध शास्त्री परंपरागत अपराध शास्त्रीय विचारधारा का खंडन करते हुए कहते हैं कि उन्होंने अपराधियों के वर्गों में लाक्षणिक भेद को गलत धारणाओं पर आधारित किया है।

फ्लिपसन के अनुसार निम्नलिखित आधारों पर परंपरागत अपराध शास्त्र की आलोचना की गई है–

1. अपराध के कारण सार्वभौमिक होते हैं।
2. व्यक्ति समुदाय के दो वर्गों– आपराधिक तथा अनआपराधिक में वर्गीकृत किया जा सकता है।

3. वैयक्तिक अपराधियों के अध्ययन से अपराध के कारणों का पता लगाया जा सकता है।
4. व्यक्ति जिस समाज में रहता है उस समाज में उपलब्ध विभिन्न अवसरों पर उसका विधि को अनुसरण करना या उल्लंघन करना निर्भर करता है।
5. अपराध संबंधी सांख्यिकी अपराधों के बारे में बदलती हुई प्रवृत्तियों को दर्शाती है।

आधुनिक अपराध शास्त्री आपराधिकता को सामाजिक अंतर्विरोध का परिणाम मानते हैं। अपराधिकता के निवारण के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि समाज में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हो।

सामाजिक सीख का सिद्धांत

बीसवीं सदी में रोनाल्ड अकेर्स एवं बर्गेस ने आपराधिकता संबंधी एक नए सिद्धांत को प्रतिपादित किया जिसे सामाजिक सीख सिद्धांत कहा जाता है। यह सिद्धांत सदरलैंड के बहु विधि कारकों के सिद्धांत तथा अपराध संबंधी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के संयोजन से बना है।

इस सिद्धांत के अनुसार सामाजिक ढांचे में व्यक्तियों के आपसी व्यवहारों को देखकर उनसे सीखने की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति अपराधी अथवा सदाचारी बनता है।

निम्नलिखित कारण इस सिद्धांत के आधार हैं–

1. व्यक्ति की स्वयं की व्यक्तिक मान्यताएं तथा सामाजिक धार्मिक मूल्यों में विश्वास।
2. व्यक्ति की स्वयं की धारणाएं।
3. व्यक्ति की अन्य व्यक्तियों के आचरण एवं व्यवहार से सीखने की प्रवृत्ति।
4. समाज में प्रतिष्ठित जनों के कार्यकलापों का व्यक्ति की स्वयं की सोच पर प्रभाव।

इस विचारधारा के अनुसार समाज की विभिन्न गतिविधियां तथा मनुष्य के आचरण एवं व्यवहारों से व्यक्ति हमेशा कुछ न कुछ सीखता रहता है और अपनी बुद्धि एवं विवेक के अनुसार उसका अनुसरण तथा परित्यजन करता है। अतः सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों तथा सामाजिक वातावरण का व्यक्ति के स्वभाव एवं आचरण पर प्रभाव पड़ता है और सदाचरण से विचलन उसे आपराधिकता की ओर ले जाता है।

1.5.1 आपराधिक व्यक्तित्व

अपराध–कारण के संबंध में क्रिमिनोलॉजिस्ट हमेशा अपने विचारों में भिन्न होते हैं। महाद्वीपीय अपराधी अक्सर अपराधिता के अंतर्जात सिद्धांत का समर्थन करते हैं जो अपराधियों के जैव भौतिक विचार पर आधारित है। दूसरी ओर, अमेरिकी अपराधी सामाजिक कारकों के संदर्भ में आपराधिकता की व्याख्या करने के लिए अधिक इच्छुक हैं। इस प्रकार, पहला दृष्टिकोण अपराध–कारण की समस्या के विपरीत है जबकि बाद वाला उनके दृष्टिकोण में वस्तुनिष्ठ है। आपराधिकता के व्यक्तिपरक सिद्धांत के अनुयायी उसके व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं के अलावा अपराधियों की प्रकृति की जांच करने का प्रयास करते हैं। उनका मानना है कि अपराधी गैर–अपराधियों से उनके व्यक्तित्व के कुछ लक्षणों में भिन्न होते हैं जो उन परिस्थितियों में अपराध

टिप्पणी

करने के लिए असामान्य प्रवृत्ति विकसित करते हैं जिनमें अन्य नहीं करते हैं। वे आगे तर्क देते हैं कि आपराधिकता अनिवार्य रूप से अपराधी के अद्वितीय व्यक्तिगत लक्षणों की अभिव्यक्ति है और इसलिए, ऐसे मामलों में सामाजिक परिस्थितियां आपराधिक व्यवहार के लिए संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रदान नहीं करती हैं। अपराध–कारण के लिए इस व्यक्तिपरक दृष्टिकोण ने अंततः अपराध विज्ञान के टाइपोलॉजिकल स्कूल के विकास को जन्म दिया है जो बताता है कि कुछ निश्चित प्रकार के अपराधी हैं जो अपनी आनुवंशिकता, मनोरोगी और जैव–भौतिक लक्षणों के कारण आपराधिकता को अपनाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपराध–कारण के व्यक्तिपरक पहलू में अपराधी का मानवशास्त्रीय, जैविक, शारीरिक और मानसिक अध्ययन शामिल है, जो वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के विपरीत है जो सामाजिक–आर्थिक, पारिस्थितिक, स्थलाकृतिक और सांस्कृतिक वातावरण के विश्लेषण पर जोर देता है जिसके तहत अपराध आमतौर पर उत्पन्न होते हैं।

आनुवंशिकता और अपराध

लोम्ब्रोसियन मानवविज्ञानी अपने जैविक और मानवशास्त्रीय शोधों के माध्यम से अपराधी की आनुवंशिकता और उसकी आपराधिक प्रवृत्ति के बीच एक संबंध स्थापित करने में सफल रहे। दूसरी ओर, मनोचिकित्सकों ने अपराधियों के मानसिक पतन में अपराध को पाया। मनोवैज्ञानिकों ने अपराध को व्यक्तित्व विचलन के संदर्भ में समझाया।

हालांकि, आधुनिक शोधों ने दिखाया है कि वंशानुगत प्रभावों का आपराधिकता पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। पश्चिमी देशों में जुड़वा बच्चों के संबंध में किए गए लगातार अध्ययनों के परिणामस्वरूप, अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो गया है कि जब जुड़वा बच्चों को जीवन में जल्दी अलग कर दिया जाता है और अलग–अलग वातावरण में रखा जाता है, तो वे अपने स्वाद और जीवन के तरीकों में अलग व्यवहार करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह पर्यावरण की मजबूत पकड़ और अपराध–कारण पर वंशानुगत के कमजोर प्रभाव की बात करता है। इस दृष्टिकोण को दूर करने के लिए यह भी बताया जा सकता है कि पश्चिमी यूरोप में कुछ जातियों, कुलों या जनजातियों जैसे जिप्सियों को पीढ़ियों से आपराधिकता में लिप्त माना जाता है। भारत में, राजस्थान के कंजर और लुहार और बलूची कुछ खानाबदोश जनजातियाँ हैं जो आदतन आपराधिक लक्षणों का पीछा करते हैं और जीवन के एक मोड के रूप में आपराधिकता लेते हैं। हालाँकि, यह बताया जा सकता है कि यह वंशानुगत प्रवृत्ति नहीं है जो उन्हें आपराधिक व्यवहार में लिप्त होने के लिए प्रेरित करती है, बल्कि वास्तविक कारण यह है कि उन्हें आपराधिक वातावरण में लाया जाता है और उन पर पारिवारिक परिवेश का प्रभाव बहुत अधिक होता है। वे शायद ही आपराधिक कृत्यों से बच सकते हैं। उनके आपराधिक लक्षणों का एक अन्य कारण उनके प्रति समाज का अविश्वास है जो उन्हें सामाजिक मानदंडों के प्रति उदासीन बनाता है और वे असामाजिक कृत्यों में लिप्त होते हैं जिन्हें अपराध कहा जाता है। इन जनजातियों के सदस्य गलत तरीके से मानते हैं कि वे समाज के प्रति जवाबदेह नहीं हैं और इसलिए उनके पास अपनी आपराधिक गतिविधियों को जारी रखने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

मानसिक विकार और आपराधिकता

'मानसिक विकार' शब्द को मानसिक असामान्यता भी कहा जाता है। यह दर्शाता है कि मन भ्रम की स्थिति में है या किसी बीमारी से पीड़ित है। अध्ययनों से पता चला है कि यह साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि अपराधियों द्वारा किए गए अपराध उनके मानसिक विकार से प्रेरित थे।

जैसा भी हो, कानून अपराधी के दायित्व का निर्धारण करते समय मानसिक बीमारी या पागलपन को ध्यान में रखता है। यह अपराधियों को सजा देने में भी ध्यान में रखा जाता है जहां उन्हें सजा दिए जाने के बजाय नैदानिक उपचार के अधीन किया जाता है। अधिकांश दंड कानूनों में पागलपन को बचाव के रूप में मान्यता दी गई है।

बचाव के रूप में स्वीकार किए जाने वाले पागलपन या मानसिक विकार की प्रमुख विशेषता यह है कि व्यक्ति को सामान्य तर्क शक्ति के किसी भी प्रकार का प्रयोग करने में असमर्थ होना चाहिए और इस प्रकार कानूनी जिम्मेदारी स्वीकार करने में असमर्थ होना चाहिए क्योंकि वह अपने कार्य की प्रकृति, गुणवत्ता या परिणामों की सराहना नहीं कर सकता है। या क्योंकि यह अधिनियम स्वैच्छिक नहीं है और इसमें कोई पुरुषार्थ नहीं है। इसलिए तर्कसंगत समझ की कमी आपराधिक कानून के तहत किसी भी जिम्मेदारी को सही नहीं ठहराती है।

भारतीय आपराधिक कानून के तहत पागलपन

भारतीय दंड संहिता के तहत, पागलपन को अपराध के आरोप के बचाव के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 84 आपराधिक दायित्व से उस व्यक्ति को छूट प्रदान करती है, जो मानसिक अस्वस्थता के कारण, अधिनियम की प्रकृति को जानने में असमर्थ है या यह जानने में असमर्थ है कि वह जो कर रहा है वह 'या तो गलत है या इसके विपरीत है कानून के लिए'।

आपराधिक जिम्मेदारी के पूर्ण बचाव के रूप में अभियुक्त की ओर से इस तरह की मनःस्थिति को पहचानने में, कानून यह मानता है कि किसी ऐसे व्यक्ति को दंडित करना व्यर्थ है जो अपने कार्य की प्रकृति को नहीं जानता है, या वह जो कर रहा है वह या तो है गलत या कानून के विपरीत।

ऐसे मामलों में जहां I.P.C. की धारा 84 के तहत पागलपन की रक्षा स्थापित की जाती है, उन परिस्थितियों पर विचार करना महत्वपूर्ण है जो अपराध से पहले, भाग लिया और पीछा किया है; क्या अधिनियम के लिए विचार–विमर्श और तैयारी की गई थी, क्या यह इस तरह से किया गया था जिसमें अपराध की चेतना को छिपाने की इच्छा दिखाई दे रही थी और क्या आरोपी ने पता लगाने से बचने के लिए कोई प्रयास किया और क्या गिरफ्तारी के बाद उसने झूठे बहाने पेश किए या झूठे बयान दिए आदि।

जैव–भौतिक कारक और आपराधिकता

मानव व्यक्तित्व में जैविक भी मानव में आपराधिकता के लिए जिम्मेदार है। अपराध की जैविक व्याख्या के पीछे मुख्य बात यह है कि संरचना कार्य को निर्धारित करती है और

टिप्पणी

व्यक्ति इस तथ्य के कारण अलग व्यवहार करते हैं कि वे किसी तरह संरचनात्मक रूप से भिन्न हैं। शारीरिक और जैविक असामान्यताएं आमतौर पर आपराधिक व्यवहार के लिए जिम्मेदार होती हैं। दूसरे शब्दों में, अपराधी को एक जैविक जीव के रूप में देखा जाता है, जो जैविक और शारीरिक रूप से भिन्न, असामान्य, दोषपूर्ण और हीन होता है।

जैव–रासायनिक शोधों ने यह दिखाने की कोशिश की है कि हार्मोनल असंतुलन का आपराधिकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, हार्मोन असंतुलन मस्तिष्क की सोचने की शक्ति और तंत्रिका तंत्र पर नियंत्रण को प्रभावित करता है और इससे आपराधिकता हो सकती है। लेकिन आम सहमति इन निष्कर्षों को स्वीकार नहीं करती है।

उम्र, लिंग और कुछ अंतःस्रावी असंतुलन जैसे शारीरिक कारकों का भी अपराधियों की आपराधिकता के साथ संबंध प्रतीत होता है। किशोर चोरी, बर्बरता और यौन हमले जैसे अपराधों के प्रति अधिक प्रवृत्त होते हैं क्योंकि वे अपनी कम उम्र के कारण आसानी से सेक्स और अन्य वासनापूर्ण गतिविधियों के शिकार हो जाते हैं। चोरी, जुआ, मद्यपान, यातायात नियमों का उल्लंघन आदि के अपराध उन युवाओं में अधिक आम हैं जिनकी आयु सामान्यतः 18 से 30 वर्ष के बीच है। यह शायद इस तथ्य के कारण है कि इन अपराधों में साहस का काफी प्रदर्शन शामिल है जो इन युवाओं के पास सामान्य रूप से होता है। उम्र और अनुभव में उन्नत व्यक्ति सफेदपोश अपराध जैसे– धोखाधड़ी, गबन आदि के लिए अधिक प्रवण होते हैं, क्योंकि इन अपराधों की प्रकृति में पता लगाने के मामले में जटिल परिस्थितियों को संभालने के लिए दिमाग की परिपक्वता और चतुराई की आवश्यकता होती है।

1.5.2 लेबलिंग सिद्धांत

क्रय करने हेतु विभिन्न वस्तुओं को लेबल द्वारा चिन्हित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार विधि या समाज विरुद्ध व्यक्तियों को अपराधी के रूप में चिन्हित किया जाना लेबलिंग सिद्धांत का मुख्य लक्षण है। इस सिद्धांत के अंतर्गत अपराध शब्द का अर्थ अपराध विधि का उल्लंघन करना है तथा सिद्धांत के समर्थकों का मानना है कि किसी व्यक्ति द्वारा किसी को हानि पहुंचाने के कारण अपराधी नहीं माना जाता परंतु यदि उसके कृत्य को अपराध का लेबल लगा दिया जाए अर्थात यदि उसे विधि के अंतर्गत दंडनीय घोषित कर दिया जाए तो उस कृत्य को करने वाला व्यक्ति अपराधी माना जाता है।

लेबलिंग सिद्धांत लेमर्ट द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति को उसके प्रतिबंधित कृत्य के अनुसार चिन्हित करके अलग रखा जाना या उसके उपचार पर महत्व दिया जाना उसे समाज के व्यक्तियों से भिन्न बना देता है। यह भिन्नता प्राथमिक अथवा द्वितीय स्वरूप की हो सकती है। प्राथमिक भिन्नता जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक या आर्थिक कारणों से हो सकती है। द्वितीयक भिन्नता किसी व्यक्ति की आक्रामक प्रवृत्ति, प्रतिरक्षा या सामाजिक विघटन के प्रभाव के कारण हो सकती है।

इस भिन्नता को सामाजिक समेकता द्वारा दूर किया जा सकता है।

होवार्ड बेकर के अनुसार अपराध जगत में अनेक व्यक्तियों के लिए अपराधी लेबल लगना एक प्रतिष्ठात्मक चिन्ह है।

ऐसे व्यक्ति ऐसे व्यक्ति अपने आप को गौरवान्वित अनुभव करते हैं चाहे उनके परिवार जन एवं परीक्षितगढ़ उनके कृत्यों की भर्त्सना करते हों। एक बार अपराधी चिन्हित होने पर इन अपराधियों का समाज में सामान्य नागरिक की तरह वापस आना कठिन होता है और वे स्वेच्छा या विवशता से आपराधिकता की ओर अग्रसर होते रहते हैं।

होवार्ड बेकर के अनुसार अपराधी का विचलन सामाजिक एवं परिस्थितियों के कारण होता है।

विधि का उल्लंघन करने पर ऐसे व्यक्ति को सत्ता संपन्न राज्य द्वारा अपराधी का लेबल लगाकर समाज विरोधी घोषित कर दिया जाता है और जिसके लिए दंड की भी व्यवस्था होती है। हावर्ड बेकर ने आपराधिकता की दृष्टि से ऐसे व्यक्तियों को 4 श्रेणियों में बांटा है––

1. विधि का पालन करने वाले व्यक्ति लेबल रहित होते हैं।
2. कुछ कुछ व्यक्ति निर्दोष अपराधी कहलाते हैं जिन्हें विधि का उल्लंघन न करने पर भी अपराधी होने का लेबल लगाकर दंडित किया गया हो।
3. ऐसे व्यक्ति जो विधि का उल्लंघन करते हैं और अपराधी होने का लेबल पा जाते हैं।
4. समाज में कुछ ऐसे अपराधी भी होते हैं जो कानून का उल्लंघन करते रहने पर भी जिन पर अपराधी होने का लेबल नहीं लगता , उन्हें गुप्त विचलन वाले व्यक्ति कहा गया है। उदाहरणार्थ समाज में प्रतिष्ठित माने जाने वाले व्यक्ति जैसे नेता, सामाजिक कार्यकर्ता, उद्योगपति इत्यादि।

लेबलिंग सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर की गई है कि यह सामाजिक विघटन के सिद्धांत का एक दूसरा स्वरूप मात्र है। इस सिद्धांत के भविष्य के प्रति संदेह व्यक्त करते हुए कहा गया है कि आपराधिकता के सामाजिक एवं पारिस्थितिक पहलू को ध्यान में रखना, अपराध एवं अपराधियों का अध्ययन किया जाना जिससे उनके विभिन्न प्रकार के विचलनों का विश्लेषण किया जा सके और उनके निदान की योजनाएं बनाई जा सकें।

अपनी प्रगति जांचिए

7. आधुनिक अपराधशास्त्री किसे सामाजिक अंतर्विरोध का परिणाम मानते हैं?

   (क) सामाजिकता को (ख) आपराधिकता को

   (ग) राजनीति को (घ) नैतिकता को

8. लेबलिंग सिद्धांत किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?

   (क) होवार्ड बेकर द्वारा (ख) रोनाल्ड अकेर्स द्वारा

   (ग) बर्गेस द्वारा (घ) लेमर्ट द्वारा

टिप्पणी

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (क)
7. (ख)
8. (घ)

1.7 सारांश

अपराध के प्रति दृष्टिकोण को समझने के लिए अपराध को समझना आवश्यक है। एक अपराध, उसको निषिद्ध करने या समादेशित करने वाली किसी विधि की अवज्ञा का कार्य हो सकता है। लेकिन नागरिक विधि की अवज्ञा एक अपराध नहीं हो सकती है, उदाहरण के लिए, नागरिक विधियों या उत्तराधिकार या अनुबंधों की विधियों की अवज्ञा। इसलिए अपराध का अर्थ केवल विधि की अवज्ञा से बहुत अधिक कुछ होगा। "इसका अर्थ एक ऐसा कार्य है जो विधि द्वारा निषिद्ध है और समाज की नैतिक भावनाओं के लिए विद्रोही है।" डकैती या हत्या अपराध होगा, क्योंकि ये समाज की नैतिक भावनाओं के विरुद्ध हैं।

'समाज की नैतिक भावना' एक लचीला शब्द है क्योंकि यह समय–समय पर जनमत के विकास और समय की सामाजिक आवश्यकताओं के साथ बदलता रहता है। यह एक देश से दूसरे देश में भिन्न भी हो सकता है। व्यभिचार, अनाचार, सती, कन्या भ्रूण हत्या, बहुविवाह आदि दुनिया की प्रत्येक विधिक व्यवस्था में अपराध नहीं हैं। इसका अर्थ है कि अपराध की सामग्री समय–समय पर एक ही देश में और एक ही समय में एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है। बीते हुए कल का सदाचार आने वाले कल में अपराध हो सकता है या इसके विपरीत।

आधुनिक समय में ब्लैकस्टोन से लेकर केनी तक अपराध को परिभाषित करने के सभी प्रयास निष्फल साबित हुए हैं। रसेल का मानना है कि– "अपराध को परिभाषित करना एक ऐसा कार्य है जिसे अब तक किसी भी लेखक ने संतोषजनक ढंग से पूरा नहीं किया है। वास्तव में, दाण्डिक अपराध मूल रूप से समुदाय के उन वर्गों द्वारा समय–समय पर अपनाई गई आपराधिक नीति का निर्माण है जो अपनी सुरक्षा और आराम की रक्षा करने के लिए इतने (पर्याप्त) शक्तिशाली या चतुर हैं कि आचरण, जो उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति को खतरे में डाल सकता है, का दमन करने के लिए राज्य में संप्रभु शक्ति कारित कर सकते हैं।"

सामाजिक–वैज्ञानिक समुदाय के क्षेत्र में, विचलन, अपराध और अपचारिता की परस्पर जुड़ी तिपाई को सामाजिक घटना के रूप में माना जाता है; वे मूल्य–आधारित

अवधारणाएं हैं जो सापेक्ष हैं, दूसरे अर्थ में, समय से समय, स्थान से स्थान और व्यक्ति से व्यक्ति तक। उन्हें एक जटिल और गतिशील सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में स्थापित करने का प्रयास करने पर ये घटनाएं प्रासंगिक और परिस्थितिजन्य हैं। विचलन, अपराध और अपचारिता को कई अलग–अलग तरीकों से परिभाषित किया गया है और इसलिए इनको बेहतर रूप से समझने के लिए एक विशेष संदर्भ में स्थापित किया जा सकता है।

हालांकि, अपराध, विचलन और अपचारिता कारित करने के साथ–साथ उनकी रोकथाम और नियंत्रण व्यापक रूप से समाज की उपज है और प्रत्येक को प्रमाणिक होना चाहिए। अपराध की रोकथाम और नियंत्रण को नीतियों के कार्यान्वयन पर किसी भी सार्थक प्रभाव के लिए साक्ष्य–आधारित होना चाहिए और एक स्थायी सामाजिक व्यवस्था के लिए पूर्वापेक्षाओं के रूप में अंतरराष्ट्रीय मापदण्डों को भी पूरा करना चाहिए क्योंकि अपराध की रोकथाम और नियंत्रण पर नई नीति पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य नीतियों के साथ एकीकृत होती है। एक सामाजिक घटना के रूप में अपराध एक विधिक व्यवस्था के उल्लंघन से संबंधित कोई भी गलत कार्य है; इसके साथ आपराधिक परिणाम जुड़े हुए हैं और दोषकर्ता को दण्ड दिए जाने की संभावना है।

हिंसक अपराध हिंसा और अपराध दोनों है, इसलिए इसे समझने के लिए आक्रामकता और विचलन के सिद्धांतों की आवश्यकता है। हानि कारित करने वाले और नियम तोड़ने वाले दोनों ही महत्वपूर्ण व्यवहार हैं और एक सीमित तर्कसंगत विकल्प दृष्टिकोण दोनों व्यवहारों के लिए जिम्मेदार हो सकता है। हालांकि, जबकि हानि कारित करने वाले और विचलन (और हिंसक और अहिंसक अपराध) के कुछ कारण समान हैं, कुछ अलग हैं। अपराध और विचलन के सिद्धांत यह नहीं समझा सकते हैं कि कोई व्यक्ति केवल हिंसक अपराध में व्यक्तिगत और समूह के अंतर को क्यों देखता है और आक्रामकता और हिंसा के सिद्धांत यह नहीं समझा सकते हैं कि कोई सभी प्रकार के अपराधों में अंतर क्यों देखता है।

सफेदपोश अपराध की अवधारणा ई .एच. सदरलैंड द्वारा प्रतिस्थापित की गई थी। वे प्रथम विधिवेत्ता थे जिन्होंने अपराध के बारे में गहन अध्ययन करने के पश्चात लोगों का ध्यान बढ़ती हुई आपराधिकता के कारण समाज के नैतिक पतन की ओर आकर्षित किया तथा जनसाधारण को अवगत कराया कि चोरी, डकैती, मारपीट, हत्या, बलात्कार, अपहरण आदि जैसे अपराधों के अलावा कुछ ऐसी असामाजिक गतिविधियां भी होती हैं जो उच्च वर्ग के लोग अपने व्यापार या व्यवसाय के अनुक्रम में करते हैं लेकिन ऐसी गतिविधियों को अपराध की श्रेणी में नहीं रखा जाता इन गतिविधियों को एक लंबे समय से व्यवसाय या व्यापार का हिस्सा ही समझा जाता रहा है अतः इनके विरुद्ध शिकायतें भी अनदेखी की जाती रही हैं और ऐसे अपराधों को करने वाले भी दंड से बचे रहते हैं।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य के दौरान, आधुनिक अपराध विज्ञान के अग्रदूत बेकेरिया ने बुरी आत्मा की सर्वशक्तिमानता को खारिज करते हुए आपराधिकता के अपने प्राकृतिक सिद्धांत की व्याख्या की। उन्होंने व्यक्ति की मानसिक घटना पर अधिक जोर दिया और अपराध को व्यक्ति की 'स्वतंत्र इच्छा' के लिए जिम्मेदार ठहराया। इस प्रकार

टिप्पणी

वह अपने समय के उपयोगितावादी दर्शन से बहुत प्रभावित थे, जिसने सुखवाद, अर्थात् 'दर्द और आनंद सिद्धांत' पर निर्भरता रखी। जैसा कि डोनाल्ड टाफ्ट ने ठीक ही कहा था, इस सिद्धांत ने अपराध करने के लिए स्वतंत्र विकल्प के संदर्भ में कार्य–कारण की धारणा को निहित किया।

अपराध–कारण के संबंध में क्रिमिनोलॉजिस्ट हमेशा अपने विचारों में भिन्न होते हैं। महाद्वीपीय अपराधी अक्सर अपराधीता के अंतर्जात सिद्धांत का समर्थन करते हैं जो अपराधियों के जैव भौतिक विचार पर आधारित है। दूसरी ओर, अमेरिकी अपराधी सामाजिक कारकों के संदर्भ में आपराधिकता की व्याख्या करने के लिए अधिक इच्छुक हैं।

इस प्रकार, पहला दृष्टिकोण अपराध–कारण की समस्या के विपरीत है जबकि बाद वाला उनके दृष्टिकोण में वस्तुनिष्ठ है। आपराधिकता के व्यक्तिपरक सिद्धांत के अनुयायी उसके व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं के अलावा अपराधियों की प्रकृति की जांच करने का प्रयास करते हैं। उनका मानना है कि अपराधी गैर–अपराधियों से उनके व्यक्तित्व के कुछ लक्षणों में भिन्न होते हैं जो उन परिस्थितियों में अपराध करने के लिए असामान्य प्रवृत्ति विकसित करते हैं जिनमें अन्य नहीं करते हैं। वे आगे तर्क देते हैं कि आपराधिकता अनिवार्य रूप से अपराधी के अद्वितीय व्यक्तिगत लक्षणों की अभिव्यक्ति है और इसलिए, ऐसे मामलों में सामाजिक परिस्थितियां आपराधिक व्यवहार के लिए संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रदान नहीं करती हैं।

अपराध–कारण के लिए इस व्यक्तिपरक दृष्टिकोण ने अंततः अपराध विज्ञान के टाइपोलॉजिकल स्कूल के विकास को जन्म दिया है जो बताता है कि कुछ निश्चित प्रकार के अपराधी हैं जो अपनी आनुवंशिकता, मनोरोगी और जैव–भौतिक लक्षणों के कारण आपराधिकता को अपनाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपराध–कारण के व्यक्तिपरक पहलू में अपराधी का मानवशास्त्रीय, जैविक, शारीरिक और मानसिक अध्ययन शामिल है, जो वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के विपरीत है जो सामाजिक–आर्थिक, पारिस्थितिक, स्थलाकृतिक और सांस्कृतिक वातावरण के विश्लेषण पर जोर देता है जिसके तहत अपराध आमतौर पर उत्पन्न होते हैं।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **अपराध** : जुर्म, गुनाह।
- **दृष्टिकोण** : देखने–सोचने–विचारने का पहलू।
- **अवज्ञा** : अनादर, अपमान, उपेक्षा।
- **निषिद्ध** : जिस पर रोक लगाई गई हो।
- **तात्पर्य** : आशय, मतलब।
- **आदिम** : पहला, सर्वप्रथम।
- **ताजीर** : दंड, सजा।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अपराध के दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?
2. डिफरेंशियल एसोसिएशन का सिद्धांत कब और किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?
3. अपराध के प्रकारों से आप क्या समझते हैं?
4. सफेदपोश अपराध की परिभाषा दीजिए।
5. सामाजिक सीख का सिद्धांत क्या है?
6. लेबलिंग सिद्धांत क्या है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अपराध के विभिन्न दृष्टिकोणों की विवेचना कीजिए।
2. किशोर अपचारिताओं, युवा अपराधियों तथा वयस्क आपराधिक वर्ग का विश्लेषण कीजिए।
3. अपराध के विभिन्न प्रकारों की समीक्षा कीजिए।
4. अपराध के कारणों पर विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की व्याख्या कीजिए।
5. आपराधिक व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Taft, D. R. and R.W England. (1964).
2. *Criminology*. New York: Macmillan, 1958.
3. Fox, V. *Introduction to Criminology,* 2nd ed. New Jersey: Prentice Hall, 1985.
4. Sutherland, E.H. and D.R. Cressey. *Principles of Criminology,* 7th ed. Chicago: Lippincott, 1966.
5. Barnes, H. E. and N. K. Teeters. *New Horizons in Criminology.* New Jersey: Prentice Hall, 1959.
6. Ashworth Andrew and Mike Redmayne. *The Criminal Process.* USA: Oxford University Press.
7. Cross and Wilkins. *Outlines of the law of Evidence.* USA: Oxford University Press.
8. Hampton, Celia. *Criminal Procedure*. London: Sweet & Maxwell.
9. Lucia Zedner. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
10. Sanders Andrew, Richard Young and Mandy Burton. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.

टिप्पणी

11. Sarkar M.C., S.C. Sarkar and Prabas C Sarkar. *Law of Evidence.* New Delhi: LexisNexis Publisher.
12. Moberly, Hamilton, Sir Walter. 1968. *The Ethics of Punishment*. Faber and Faber.
13. Shah, H. Jyotsna. 1973. *Probation Services in India.* N. M. Tripathi.
14. Bhattacharya, B. K. 1958. *Prisons*. S.C. Sarkar.
15. Cross, Rupert. 1981. *The English Sentencing System.* Butterworth (Publishers) Limited.
16. Stewart, S. W. 1969. *A Modern View of Criminal Law*. Pergamon Press.
17. Fitzgerald, John, Patrick. 1962. *Criminal Law and Punishment.* Clarendon Press.

इकाई 2 अपराध और अपराधियों की चेनिंग प्रोफाइल एवं दंड के सिद्धांत

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 संगठित अपराध
2.3 महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध अपराध
  2.3.1 महिलाओं के विरुद्ध अपराध
  2.3.2 बच्चों के विरुद्ध अपराध
2.4 साइबर अपराध
2.5 भ्रष्टाचार
2.6 समकालीन भारत में अपराधियों की बदलती सामाजिक–आर्थिक प्रोफाइल
2.7 दंड के सिद्धांत
  2.7.1 प्रतिशोधात्मक सिद्धांत
  2.7.2 निवारक सिद्धांत
  2.7.3 सुधारात्मक सिद्धांत
  2.7.4 दण्ड की निरर्थकता और लागत
2.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.9 सारांश
2.10 मुख्य शब्दावली
2.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

अपराध एक वैश्विक घटना है। समय की प्रगति और ज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ जीवन की जटिलताएं कई गुना बढ़ गई हैं, जिसके परिणामस्वरूप कई असामाजिक तत्व अपनी आजीविका कमाने के लिए अपराध को एक पेशे के रूप में अपनाना लाभदायक समझते हैं। इससे अपराधियों को खुद को आपराधिक गिरोहों में संगठित करने का अवसर मिला है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आधुनिक युग में, अपराधी साजिशों को पूरा करने के लिए अपराधी द्वारा अपराध की नई तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

अपराध लगभग हर समाज में दशकों से मौजूद हैं। अपराधी कानून का उल्लंघन करते हुए अपनी अवैध गतिविधियों को अंजाम देने के लिए खुद को औपचारिक या अनौपचारिक समूहों में गठित करते हैं। किसी भी अन्य व्यावसायिक संगठन की तरह पेशेवर अपराधी लाभ कमाने के लिए कौशल और दक्षता के साथ अपनी असामाजिक गतिविधियों को अंजाम देने के लिए खुद को आपराधिक गिरोहों में गठित करते हैं।

प्रस्तुत इकाई में संगठित अपराधों, बच्चों एवं महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों, साइबर अपराधों तथा भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों का विस्तृत विवेचन किया गया है तथा दंड के सिद्धांतों की व्याख्या की गई है।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अपराध और अपराधियों की चेनिंग प्रोफाइल को समझ पाएंगे;
- संगठित अपराधों के बारे में जान पाएंगे;
- महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों की विवेचना कर पाएंगे;
- बच्चों के प्रति होने वाले अपराधों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- साइबर अपराधों की समीक्षा कर पाएंगे;
- भ्रष्टाचार की व्याख्या कर पाएंगे;
- समकालीन भारत में अपराधियों की बदलती प्रोफाइल पर चर्चा कर पाएंगे;
- दंड के सिद्धांतों पर प्रकाश डाल पाएंगे।

2.2 संगठित अपराध

सामान्यतया, एक संगठित अपराध एक ऐसा कार्य है जो दो या दो से अधिक अपराधियों द्वारा एक संयुक्त उद्यम के रूप में एक संगठित तरीके से किया जाता है। यह एक अवैध कार्य है जो एक गैरकानूनी संघ के सदस्य अपने पारस्परिक सहयोग और साहसिक प्रयास के साथ करते हैं।

डॉक्टर वॉल्टर रैकलेस संगठित अपराध को एक गैरकानूनी दुस्साहस के रूप में परिभाषित करते हैं जो एक मालिक, उसके सहयोगियों और प्रचालकों द्वारा किया जाता है जो एक विशिष्ट अवधि के लिए एक पदानुक्रमित संरचना बनाते हैं।

सेलिन के अनुसार, "संगठित अपराध उन आर्थिक कारनामों या उद्यमों से मिलता–जुलता है जो अवैध गतिविधियों को करने के लिए आयोजित किए जाते हैं"।

उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि "संगठित अपराध अवैध गतिविधियों के संचालन के उद्देश्य से आयोजित आर्थिक उद्यमों का पर्याय है और जब वे वैध उद्यम संचालित करते हैं, तो अवैध तरीकों से ऐसा करते हैं।" इस तरह की गतिविधियों का उद्देश्य अवैध तरीकों से भारी मुनाफा कमाना है। हालाँकि, मुनाफे का सबसे बड़ा हिस्सा, पूरे अन्यायपूर्ण उद्यम के प्रबंधक के पास जाता है, जैसे, वेश्यावृत्ति, तस्करी, जुआ, रैकेटियरिंग आदि।

संगठित अपराधों पर टिप्पणी करते हुए डोनाल्ड टैफ्ट ने स्पष्ट किया कि "अपराधियों के संगठन ने अपराध के क्षेत्र में नेतृत्व, समूह–अनुशासन, आज्ञाकारिता, निष्ठा, श्रम विभाजन, संगति, बलिदान, सहयोग और समूह नियोजन के उन कारकों को पेश किया जो सामान्य आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन में दक्षता का संकेत करते हैं।"

एडविन सदरलैंड ने ठीक ही देखा है कि इन आपराधिक संगठनों में कम से कम एक बात समान है कि वे कानून के प्रति एक समान शत्रुता से बंधे हैं और इसलिए, सदस्य कानून लागू करने वाले अधिकारियों से एक–दूसरे की सहायता और रक्षा करते

हैं। चूंकि गिरफ्तारी और पता लगाने के विरुद्ध सुरक्षा संगठित अपराधों का एक आवश्यक हिस्सा है, गैंगस्टर भी अक्सर "अपराधों को ठीक करने" की तकनीक अपनाते हैं जो उन्हें निष्पादित करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य के लिए वे पुलिस को शिकायत करने से रोकने के लिए पीड़ित के विरुद्ध गुप्त रणनीति या धमकी, अनुचित प्रभाव या जबरदस्ती का उपयोग करके पुलिस अधिकारियों को जीतने की कोशिश करते हैं। इसके अलावा, संगठित अपराधियों को अपने अवैध रूप से अर्जित धन, संपत्ति या वस्तु के निबटान के लिए कुछ समानांतर वैध व्यापारिक संगठनों से सहयोग और समर्थन भी लेना पड़ता है। इस प्रकार, संगठित अपराधों में उनके अंडरवर्ल्ड पेशे के सुचारु संचालन के लिए कई सहायक गतिविधियाँ शामिल हैं।

विभिन्न प्रकार के आपराधिक संगठन जो आपराधिक दुनिया में काम कर सकते हैं, उन्हें निम्नलिखित प्रमुखों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. संगठित हिंसक अपराध;
2. क्राइम सिंडिकेट;
3. आपराधिक रैकेट;
4. राजनीतिक भ्रष्टाचार।

(1) संगठित हिंसक अपराध

ऐसे अपराध जिनमें प्रभावित व्यक्ति या व्यक्तियों की किसी प्रकार की सेवा शामिल नहीं होती है, शिकारी अपराध कहलाते हैं। इसलिए, यह अनिवार्य रूप से एकतरफा लेन–देन है, जिसमें गैंगस्टर इस तरह के अपराध को अंजाम देकर पीड़ित को किसी भी स्पष्ट या वास्तविक सेवा के बिना पूरे लाभ का आनंद लेता है। गैंगस्टर के बीच कोई पश्चाताप नहीं है, हालांकि वे कानून का पालन करने वाले समाज के विरोध के प्रति सचेत हैं। किशोर अपराधी और मामूली अपराधी समय के साथ पेशेवर गैंगस्टर बन जाते हैं।

आमतौर पर होने वाले कुछ हिंसक अपराध चोरी, डकैती, जबरन वसूली, अपहरण, पिक–पॉकेटिंग आदि हैं।

विख्यात अपराधी विशेषज्ञ, सदरलैंड का मत है कि पेशेवर आपराधिक गिरोहों के सदस्यों को सामयिक अपराधियों की तुलना में अधिक कौशल और योजना की आवश्यकता होती है। उनके व्यवसायीकरण में न केवल अपराध को अंजाम देना शामिल है, बल्कि "स्पॉट" का पूर्व स्थान और पता लगाने के मामले में सजा से बचने की तैयारी शामिल है।

हाल ही में, हिंसक अपराध के एक संगठित रूप में आतंकवाद के उदय ने शांति और सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है। यह राजनीतिक आतंकवाद, धार्मिक आतंकवाद, नार्को आतंकवाद आदि जैसे विभिन्न रूपों में पाया जाता है। इसमें मूल रूप से हिंसा और हत्या शामिल हैं जिनसे राज्य प्रशासन के लिए एक गंभीर कानून और व्यवस्था की समस्या का समाधान होता है।

भारत सरकार ने भारत की राष्ट्रीय अखंडता और सुरक्षा को खतरे में डालने वाली गैरकानूनी गतिविधियों को अंजाम देने वाले किसी भी संघ या व्यक्तियों के समूह

पर प्रतिबंध लगाने के लिए गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 नामक एक अधिनियम पेश किया।

टिप्पणी

भारत में, महाराष्ट्र राज्य शायद एकमात्र ऐसा राज्य है जिसने महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 को अधिनियमित किया है, जो संगठित अपराध को किसी व्यक्ति द्वारा अकेले या संयुक्त रूप से, या तो एक संगठित अपराध के सदस्य के रूप में जारी किसी भी गैरकानूनी गतिविधि के रूप में परिभाषित करता है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने भी इसी तरह का अधिनियम यू.पी. आपराधिक गिरोहों की गैंगस्टर गतिविधियों से निबटने के लिए 'गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986' अधिनियमित किया है।

(2) क्राइम सिंडिकेट

अपराध सिंडिकेट शब्द उन ग्राहकों को कुछ निषिद्ध या अवैध सेवा प्रदान करने के व्यवसाय में लगे अपराधी के गिरोह को संदर्भित करता है जो इसे प्राप्त करने के इच्छुक हैं या उस सेवा के लिए अच्छी तरह से भुगतान करने को तैयार हैं। कुछ अवैध निषिद्ध सेवाओं के लिए बाजार की उपलब्धता के कारण क्राइम सिंडिकेट संचालित होता है। इस प्रकार, जुआ, व्यवसायीकृत वेश्यावृत्ति, नशीली दवाओं और अन्य नशीले पदार्थों की आपूर्ति आदि ज्यादातर अपराधियों के सिंडिकेट द्वारा किए जाते हैं। जाहिर है, ये अपराध सिंडिकेट नाजायज सार्वजनिक मांगों के कारण मौजूद हैं, जिन्हें कानूनी निषेधों के कारण कानूनी रूप से पूरा नहीं किया जा सकता है। इन अवैध मांगों को पूरा करने में भारी मुनाफे की संभावना शायद आपराधिक सिंडिकेट के संगठन में शामिल मुख्य विचार है। आपराधिक सिंडिकेट भारी मुनाफा कमाते हैं और यह मुख्य रूप से इन संगठित अपराधियों के कारण है कि कई मुनाफाखोर सेवा अपराधों के अवैध संचालन में एकाधिकार सुरक्षित करते हैं। ये एकाधिकार अनुनय, धमकी, हिंसा और यहां तक कि हत्या से भी हासिल किए जाते हैं। अधिक बार नहीं, इन गैंगस्टरों को अवैध सेवा की याचना करने के लिए अपनी आपराधिक गतिविधियों को अंजाम देने के लिए कानून का पालन करने वाले व्यक्तियों द्वारा सुरक्षा और आश्रय दिया जाता है।

(3) आपराधिक रैकेट

आपराधिक दुनिया में रैकेटियरिंग आमतौर पर व्यक्तिगत चोट या संपत्ति के किसी प्रकार के खतरे के तहत व्यवस्थित जबरन वसूली का अभ्यास है। डोनाल्ड टैफ्ट ने रैकेटियरिंग को "एक संगठित अपराध के रूप में परिभाषित किया है जिसमें आपराधिक तत्व समाज के ऐसे सदस्यों की सेवा करते हैं जो आम तौर पर कुछ वैध व्यावसायिक गतिविधि में लगे होते हैं"। रैकेटियरिंग एक संगठित हिंसक अपराध से अलग है क्योंकि इसमें किसी प्रकार की सेवा अनिवार्य रूप से शामिल है और इसलिए, यह पूरी तरह से शोषणकारी नहीं है। यह एक आपराधिक सिंडिकेट से भी अलग है क्योंकि रैकेट में सेवा उन लोगों को प्रदान की जाती है जो सामान्य रूप से वैध गतिविधियों में लगे होते हैं जबकि सिंडिकेट के मामले में सेवा पूरी तरह से अवैध और निषिद्ध है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि जब व्यापार कानूनी सीमा के भीतर नहीं है या मामूली सीमा के भीतर है और इसकी सुरक्षा के लिए पुलिस सहायता का वैध सहारा संभव नहीं है, तो रैकेटिंग के अवसर बढ़ जाते हैं। रैकेटियों द्वारा शोषित व्यक्तियों को कभी–कभी

अपने स्वयं के शोषण की कीमत पर भी उनके द्वारा ली गई सेवाओं के मूल्य के बारे में आश्वस्त किया जाता है। इस प्रकार, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि संगठित रैकेटियरिंग कुछ वैध या नाजायज मांग के लिए एक अवैध शोषण के अलावा और कुछ नहीं है।

(4) राजनीतिक भ्रष्टाचार

एक आम धारणा है कि कुछ वैध व्यवसाय करने वाले हाई स्टेटस के व्यक्ति और पेशेवर अपराधी साजिश के राजनीतिक माध्यम से परस्पर जुड़े हुए हैं। राजनीतिक सत्ता और पार्टियों की चुनावों में जीत हासिल करने के लिए राजनेता आम तौर पर कुख्यात अपराधियों के समर्थन की तलाश करते हैं और अपने राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अवैध प्रथाओं के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं, राजनीतिक खेलों के लिए राजनेताओं द्वारा कुख्यात अपराधियों के इस उपयोग को आमतौर पर राजनीतिक भ्रष्टाचार के रूप में जाना जाता है। ये सभी प्रकार के वैध या अवैध तरीकों का सहारा लेते हैं, कभी–कभी अपने नियोक्ता को सफलता दिलाने के लिए, ये कठोर पेशेवर अपराधी हिंसा का सहारा लेने से भी नहीं हिचकिचाते हैं और मतदाताओं को अपना वोट उस उम्मीदवार के पक्ष में डालने की धमकी देते हैं जिसके लिए वे काम कर रहे हैं। ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं जब कुछ पेशेवर मतदाता विभिन्न मतदाताओं के लिए एक से अधिक स्थानों पर मतदान करते पाए गए हैं। वोट खरीदना राजनीतिक भ्रष्टाचार का एक सामान्य उदाहरण है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. कौन संगठित अपराध को एक गैरकानूनी दुस्साहस के रूप में परिभाषित करते हैं?

   (क) डॉ. वॉल्टर रैकलेस (ख) सेलिन

   (ग) डोनाल्ड टैफ्ट (घ) एडविन सदरलैंड

2. जिन अपराधों में प्रभावित व्यक्तियों की किसी प्रकार की सेवा शामिल नहीं होती, क्या कहलाते हैं?

   (क) विकारी अपराध (ख) शिकारी अपराध

   (ग) निरपराध (घ) सेवा अपराध

2.3 महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध अपराध

आजकल महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध किए जाने वाले अपराध बढ़ते ही जा रहे हैं। ऐसे अपराधियों में मानवता का नितांत अभाव होता है।

2.3.1 महिलाओं के विरुद्ध अपराध

यद्यपि महिलाएं सामान्य अपराधों जैसे कि हत्या, डकैती, धोखाधड़ी आदि की शिकार हो सकती हैं, केवल वे अपराध जो विशेष रूप से महिलाओं के खिलाफ होते हैं, उन्हें 'महिलाओं के खिलाफ अपराध' के रूप में जाना जाता है। इन अपराधों से प्रभावी ढंग

टिप्पणी

से निबटने के लिए विभिन्न नए कानून लाए गए हैं और मौजूदा कानूनों में संशोधन किए गए हैं। इन्हें मोटे तौर पर निम्नलिखित दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

(क) भारतीय दंड संहिता के तहत महिलाओं के विरुद्ध अपराध–

1. बलात्कार (धारा 376)।
2. बलात्कार करने का प्रयास (धारा 376/511)।
3. महिलाओं का अपहरण (धारा 363, 364, 364–ए, 366)।
4. दहेज हत्याएं (धारा 304–बी)।
5. शील भंग करने के इरादे से महिलाओं पर हमला (धारा 354)।
6. महिलाओं की लज्जा का अपमान (धारा 509)।
7. पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता (धारा 498–ए)।
8. विदेश से लड़की का आयात (21 वर्ष की आयु तक) (धारा 366–बी)।
9. महिलाओं को आत्महत्या के लिए उकसाना (धारा 306)।

(ख) विशेष अधिनियमों के अंतर्गत महिलाओं के विरुद्ध अपराध–

1. दहेज निषेध अधिनियम, 1964।
2. महिलाओं का अश्लील प्रतिनिधित्व (निषेध) अधिनियम, 1986।
3. सती कृत्य (निवारण) अधिनियम, 1987।
4. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005।
5. अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम, 1956।

इन अपराधों के अलावा, भारतीय दंड संहिता महिलाओं के विरुद्ध किए जा सकने वाले यौन अपराधों के निम्नलिखित रूपों को भी मान्यता देती है–

(1) पति द्वारा उसकी सहमति के बिना अठारह वर्ष से कम उम्र की पत्नी के साथ संभोग (धारा 375–डी)।

(2) अलगाव के दौरान एक पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ संभोग (धारा 376– बी)।

(3) एक लोक सेवक द्वारा अपनी हिरासत में महिलाओं के साथ संभोग (धारा 376–सी)।

(4) जेल अधीक्षक या रिमांड होम कर्मचारी आदि द्वारा संभोग (धारा 376–सी)।

(5) अस्पताल के प्रबंधन या स्टाफ के किसी भी सदस्य द्वारा उस अस्पताल में किसी महिला के साथ संभोग (धारा 376–डी)।

(6) वेश्यावृत्ति के प्रयोजनों के लिए नाबालिगों को बेचना या खरीदना (धारा 372 और 373)।

(7) अप्राकृतिक अपराध जैसे कि किसी भी पुरुष, महिला या जानवर के साथ प्रकृति की व्यवस्था के खिलाफ शारीरिक संबंध (धारा 377)।

बलात्कार व सामूहिक बलात्कार

संयुक्त राष्ट्र महिलाओं के खिलाफ हिंसा को "लिंग आधारित हिंसा के किसी भी कार्य के रूप में परिभाषित करता है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं को शारीरिक, यौन या

मनोवैज्ञानिक नुकसान या पीड़ा होती है, जिसमें ऐसे कृत्यों की धमकी, जबरदस्ती या स्वतंत्रता के मनमाने ढंग से वंचित होना शामिल है। चाहे सार्वजनिक या निजी जीवन में घटित हो रहा हो"। बलात्कार की परिभाषा समय और स्थान जैसे कारकों के अनुसार भिन्न होती है, हालांकि बलात्कार को एक ऐसे अपराध के रूप में मान्यता दी जाती है जिसमें आम तौर पर एक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को अपनी इच्छा के विरुद्ध संभोग करने के लिए मजबूर किया जाता है, यानी बल द्वारा संभोग। भले ही केवल पुरुष ही बलात्कार नहीं करते हैं, बलात्कार हमेशा यौन संतुष्टि की तीव्र या जुनूनी इच्छा का परिणाम नहीं होता है। ज्यादातर पुरुष यौन हिंसा या बलात्कार को महिलाओं पर अपने नियंत्रण का प्रयोग करने के तरीके के रूप में सत्ता की स्थिति बनाए रखने के लिए करते हैं। विशेष रूप से पितृसत्तात्मक समाज में शक्ति और क्रोध के संयोजन से प्रेरित पुरुष महिलाओं पर यौन हिंसा करके अपनी मर्दानगी साबित करते हैं।

पुरुषों के लिए महिलाओं की अधीनता दुनिया के बड़े हिस्से में प्रचलित है लेकिन कुछ हिस्सों में महिलाओं को भेदभाव, शोषण, उत्पीड़न और हिंसा का भी शिकार होना पड़ता है। भारत में भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) के तहत बलात्कार कानून के संबंध में महत्वपूर्ण सुधारों के बावजूद, बलात्कार शब्द को कानूनी रूप से परिभाषित किया गया है, "जब भी कोई पुरुष किसी महिला के साथ उसकी सहमति या इच्छा के बिना प्रवेश करता है या संभोग करता है, तो यह बलात्कार के बराबर होता है", भारतीय दंड संहिता की धारा 376, 1860 (भारत का सर्वोच्च न्यायालय)। इसके अलावा, भारत में बलात्कार को 'शक्ति के कार्य' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है क्योंकि पितृसत्ता महिलाओं के खिलाफ हिंसा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति सत्ता संबंध की एक पदानुक्रमित प्रणाली पर आधारित है जहां पुरुष महिलाओं को नियंत्रित करते हैं।

बलात्कार का पीड़ितों के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। हालांकि ज्यादातर मामलों में सिर्फ पीड़िता ही यौन हिंसा के विनाशकारी परिणामों का अनुभव करती है। भारत जैसे पितृसत्तात्मक समाज में जहां महिलाओं की स्थिति बहुत कम है, नकारात्मक सामाजिक प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप पीड़ित से जुड़े लोग, विशेष रूप से परिवार के सदस्य भी प्रभावित होते हैं।

सामूहिक बलात्कार भारत में एक सामान्य प्रकार की यौन हिंसा है और कई हमलावरों द्वारा बलात्कार पीड़ित को एक ही हमलावर की तुलना में अधिक गंभीर संकट दिया जाता है। सामूहिक बलात्कार के शिकार ज्यादातर अपराधियों और सामाजिक कलंक के डर से अधिकारियों को इस मुद्दे का खुलासा करने से बचते हैं (कारमेन 2010 : 269)। भारत में सामूहिक बलात्कार ज्यादातर तब होते हैं जब महिलाएं एक ऐसे क्षेत्र में दिखाई देती हैं, जहां पुरुषों का वर्चस्व होता है, विशेष रूप से कुछ ऐसे स्थान जिन्हें पुरुष अपना क्षेत्र मानते हैं (जैसे कि बार)। यदि इस स्थिति में महिलाओं के साथ बलात्कार होता है, भले ही एक महिला को क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार हो, तो समाज द्वारा अपराध के लिए आंशिक रूप से या पूरी तरह से जिम्मेदार होने के लिए दोषी ठहराया जाएगा। महिलाओं को यौन हिंसा भड़काने के लिए दोषी ठहराया जाता है क्योंकि पुरुष कामुकता को पुरुषत्व माना जाता है जिसका अर्थ है शक्ति या आक्रामकता और प्रस्तुत किए जाने पर पुरुषों द्वारा सेक्स के अवसर को कभी भी

टिप्पणी

अस्वीकार नहीं किया जाएगा। समाज द्वारा पीड़ित को दोष देना या कलंकित करना ज्यादातर पीड़ित को आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है। विलियम्स (1984) के अनुसार, 'असहयोगात्मक व्यवहार प्रदर्शित करने से समाज और समुदाय भी अपराधी बन जाते हैं'।

बलात्कार ज्यादातर अत्यधिक हिंसा या यातना के साथ होता है और अपराधी सभी मामलों में यौन निष्क्रियता या वासना से निराश नहीं होते हैं, लेकिन बलात्कार विस्थापित आक्रामकता के कारण भी हो सकता है। विस्थापित आक्रामकता तब होती है जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति या स्थिति से क्रोधित होता है तो व्यक्ति उस क्रोध को किसी अन्य असंबद्ध व्यक्ति या स्थिति के प्रति छोड़ देता है। ज्यादातर मामलों में लोगों में निराशा के स्रोत के प्रति आक्रामकता को निर्देशित नहीं करने की प्रवृत्ति होती है, इस स्थिति में आक्रामकता का शिकार होने के लिए उपयुक्त किसी अन्य उपलब्ध व्यक्ति की ओर पुनर्निर्देशित किया जा सकता है। हालांकि, यह मुख्य रूप से इस कारण से है कि जब मूल स्रोत की तुलना में जहां क्रोध उत्पन्न होता है, तो प्रतिशोध की संभावना विस्थापित आक्रामकता के शिकार से कम होगी। विस्थापन लंबी श्रृंखलाओं में हो सकता है और आमतौर पर अल्पसंख्यकों के बीच समाज में दिखाई देता है। एक तरफ, भारत में शिक्षा और रोजगार में महिलाओं के लिए बढ़ते अवसरों के साथ, आधुनिक महिलाएं एक अच्छी तरह से मजबूत स्थिति में प्रवेश कर रही हैं, जिसके लिए पारंपरिक पुरुष हिंसा के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। दूसरी ओर, देश की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था के बदलते परिदृश्य और विकास के लिए सरकार के जुनून के कारण धन की बढ़ती एकाग्रता अमीर और बाकी के बीच असमानता पैदा करती है। समाज के निचले वर्गों के लोग, मुख्य रूप से झुग्गी–झोंपड़ी में रहने वाले लोग, गरीबी बेरोजगारी या कम भुगतान वाली महिलाओं से बदला लेने या ईर्ष्या के कारण बलात्कार करते हैं।

इसके अलावा, यौन हिंसा के शिकार लोगों को कई तरह की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। बलात्कार पीड़िता गंभीर प्रजनन स्वास्थ्य समस्याओं और पुरानी बीमारी से पीड़ित हो सकती है, पीड़िता को एचआईवी / एड्स या एसटीआई से संक्रमित होने का एक उच्च जोखिम भी हो सकता है, खासकर जब अजनबियों द्वारा यौन उत्पीड़न किया जाता है। मनोवैज्ञानिक रूप से, पीड़िता को भय, चिंता, कम सम्मान का अनुभव हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक समायोजन की समस्याएं भी हो सकती हैं। सबसे आम दीर्घकालिक मुद्दा है अवसाद के बाद का तनाव विकार। पीड़िता खराब स्वास्थ्य स्थिति और यहां तक कि गर्भावस्था से भी प्रभावित हो सकती है।

हाल ही में यह महसूस किया जा रहा था कि बलात्कार को यौन–अपराध के रूप में नहीं माना जाना चाहिए बल्कि इसे व्यक्ति के खिलाफ एक आक्रामक अपराध के रूप में देखा जाना चाहिए। शोधकर्ताओं ने दिखाया है कि अक्सर अपराधी का इरादा यौन आनंद के बजाय आक्रामकता होता है। ग्रोथ और बिरनबाम ने स्पष्ट किया कि बलात्कारी को कामुक आनंद सेक्स के माध्यम से नहीं बल्कि पीड़िता के शरीर पर एक भयानक हमले के माध्यम से मिलता है। मनोवैज्ञानिक आघात के अलावा बलात्कार के मामले में, महिला से शारीरिक चोट या उसकी ओर से किसी प्रकार की गैर–वास्तविक सहमति साबित करने की अपेक्षा की जाती है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि

बलात्कार के अधिकांश मामले अचानक नहीं होते हैं, लेकिन वे आम तौर पर सुनियोजित होते हैं।

टिप्पणी

दहेज और दहेज हत्या

बेटी की शादी में दहेज देना भारत में शायद इसलिए पुरानी प्रथा है क्योंकि पुराने हिंदू कानून के तहत उसे शादी के बाद पैतृक संपत्ति का वारिस बनने का कोई अधिकार नहीं था। हाल ही में, दहेज के रूप में अधिक से अधिक संपत्ति प्राप्त करने का लालच एक ऐसी स्थिति में पहुंच गया है जब लड़कियों के माता–पिता द्वारा दहेज की मांग को पूरा न करने पर विवाहित महिलाओं को पति या उसके ससुराल वालों द्वारा शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। कई बार इस यातना से विवाहित महिला की अप्राकृतिक मृत्यु हो जाती है या वह परिस्थितियों के कारण आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाती है।

दहेज निषेध अधिनियम 1961 और 1987 में संशोधन के बाद दहेज और दहेज हत्या के खतरे के लिए कड़ी सजा का प्रावधान है। अधिनियम की धारा 3 और 4 न केवल दहेज लेने या वास्तविक रूप से देने पर रोक लगाती है, बल्कि शादी से पहले या बाद में दहेज की मांग को दो साल तक के कारावास से दंडनीय अपराध बनाती है। एस गोपाल रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1996(3) अपराध 35 (एससी) में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि प्रस्तावित विवाह के लिए दहेज की मांग जो दहेज की मांग को पूरा नहीं करने के लिए नहीं होती है, वह भी एक दंडनीय अपराध है। दो साल तक की कैद के साथ यह अपराध पुलिस द्वारा जांच के उद्देश्य से संज्ञेय है।

दहेज हत्या के मामलों में अदालतों को अक्सर पति और रिश्तेदारों के बीच यह तय करने की समस्या का सामना करना पड़ता है कि क्या वे सभी पत्नी को जलाने या मारने या उसकी मौत के दोषी थे। समस्या तब और विकट हो जाती है जब पति–पत्नी घर में अकेले होते हैं। निर्णायक साक्ष्य के अभाव में विवाहित महिलाओं के पति या ससुराल वाले हमेशा संदेह के लाभ पर बरी हो जाते हैं।

निस्संदेह मृत्यु के कारणों को स्थापित करने में कठिनाई को ध्यान में रखते हुए, महिलाओं के खिलाफ अपराधों की बढ़ती घटनाओं की समस्या को हल करने के लिए विधायिका ने आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम 1983 पारित किया, विशेष रूप से दहेज हत्या के लिए, दुल्हन को जलाने के लिए। महिलाओं के प्रति क्रूरता को अपराध बनाने वाली एक नई धारा 498–ए को आईपीसी में जोड़ा गया और परिणामी परिवर्तन सीआरपीसी की धारा 174 और 176 में किए गए और इसमें एक नई धारा 198–ए जोड़ी गई। संशोधन अधिनियम ने साक्ष्य अधिनियम में एक नई धारा 113–ए को भी जोड़ा जो यह प्रावधान करती है कि जहां एक विवाहित महिला शादी के सात साल के भीतर आत्महत्या कर लेती है या उसकी अप्राकृतिक मृत्यु हो जाती है, तो यह माना जाएगा कि ऐसा उसके पति द्वारा क्रूरता के अधीन किया गया था या जैसा भी मामला हो, मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए।

पति और रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता

भारतीय परिवेश में, परिवार में किसी संपत्ति या मूल्यवान वस्तु की किसी भी गैर कानूनी मांग को पूरा करने के लिए महिलाओं को पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता का

शिकार होना आम बात है। यद्यपि विधायिका ने भारतीय दंड संहिता में धारा 498–ए के तहत पति या ससुराल वालों द्वारा पत्नी के खिलाफ क्रूरता से उसे बचाने के लिए एक वैधानिक प्रावधान डाला है, तथापि उससे ज्यादा लाभ नहीं हुआ है।

टिप्पणी

धारा 498–ए, आईपीसी में निहित प्रावधान का मूल उद्देश्य 'क्रूरता' से बचना है, जिसे इसके साथ संलग्न एक विशिष्ट अर्थ के रूप में परिभाषित किया गया है:

धारा 498–ए के प्रयोजन के लिए 'क्रूरता' का अर्थ है–

(ए) कोई भी जानबूझकर आचरण जो इस तरह की प्रकृति का है जिससे एक महिला को आत्महत्या करने या गंभीर चोट या उसके जीवन, अंग या स्वास्थ्य को गंभीर या मानसिक रूप से खतरे में डालने की संभावना है; या

(बी) जहां इस तरह का उत्पीड़न उसे किसी भी गैरकानूनी मांग को पूरा करने के लिए मजबूर करने या ऐसी मांग को पूरा करने में उसकी विफलता के कारण होता है।

यह कहा जा सकता है कि धारा 498–ए में उल्लिखित क्रूरता का दहेज की मांग से कोई लेना–देना नहीं है। जहां सबूत से पता चलता है कि मृतक (पत्नी) पीड़ित और परेशान थी क्योंकि उसके पति के किसी अन्य महिला के साथ अवैध संबंध थे। क्या ऐसी स्थिति धारा 498–ए के पहले अंग के तहत मानसिक क्रूरता का परिणाम होगी। पिनाकिन महिपात्रय रावल बनाम गुजरात राज्य, AIR 2014 SC 331 मामले में सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस तरह के विवाहेतर संबंधों से निबटने के दौरान कहा कि इस तरह के संबंध अंततः धारा 498–ए के स्पष्टीकरण के भीतर मानसिक उत्पीड़न और क्रूरता की ओर ले जाते हैं और यह पति द्वारा पत्नी को आत्महत्या के लिए उकसाने के बराबर होगा।

महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा

भारत में महिलाओं की भूमिका बेटी, गृहिणी और मां तक ही सीमित है। दुर्भाग्य से महिलाएं अपने घरों की चार दीवारी के भीतर भी सुरक्षित नहीं हैं। गृहिणियों को उनकी आर्थिक स्थिति, धर्म, जाति और पंथ की परवाह किए बिना शारीरिक यातना और मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न के अधीन किया जाता है। शायद पारिवारिक संघर्ष, तनाव, सांस्कृतिक मानदंड और यौन असमानता पत्नी को पीटने में योगदान करते हैं।

महिलाओं के खिलाफ हिंसा का सबसे बुरा पहलू यह है कि इसे सामाजिक पवित्रता मिली। पड़ोसी, अधिकारी और यहां तक कि पुलिस भी घरेलू हिंसा के मामलों में हस्तक्षेप करने से हिचकिचाती है क्योंकि वे इसे एक बहुत ही निजी मामले के रूप में महसूस करते हैं। महिलाएं परिवार में हिंसा के कृत्यों की चपेट में आती हैं जिनमें भ्रूण हत्या, शिशु हत्या, वैवाहिक क्रूरता, दहेज, हत्या, बाल शोषण, अनाचार, मारपीट आदि शामिल हैं। सामुदायिक स्तर पर उन्हें बलात्कार, यौन उत्पीड़न के रूप में हिंसा का सामना करना पड़ता है। छेड़खानी, तस्करी और यौन भेदभाव, हिरासत में की जाने वाली हिंसा और संस्थागत वंचन लैंगिक हिंसा के ऐसे प्रकार हैं जो राज्य के स्तर पर सामने आते हैं।

महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने के लिए जो परिवार के भीतर किसी भी प्रकार की हिंसा की शिकार होती हैं और इससे संबंधित मामलों की व्यवस्था करने के लिए संसद ने घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम 2005 अधिनियमित किया जो 26 अक्टूबर, 2006 से प्रभावी हुआ। अधिनियम अगस्त 2005 में संसद द्वारा पारित किया गया था और 13 सितंबर, 2005 को राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित किया गया था। अधिनियम मुख्य रूप से पति या लिव–इन पुरुष के हाथों हिंसा से पत्नी या महिला लिव–इन पार्टनर को सुरक्षा प्रदान करने के लिए है। साथी या उसके रिश्तेदारों से कानून उन महिलाओं को भी सुरक्षा प्रदान करता है जो बहनें हैं, माताएं पर विधवाएं हैं।

छेड़छाड़ और यौन उत्पीड़न (Molestation and Sexual harassment)

आधुनिक समाज की बुराइयों में से एक है कार्यस्थलों पर महिलाओं, विशेषकर कामकाजी महिलाओं का उनके पुरुष समकक्षों द्वारा यौन उत्पीड़न। सर्वोच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका में बार–बार भारत में कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए एक प्रभावी कानून की आवश्यकता पर जोर दिया है। अंत में विशाखा बनाम राजस्थान राज्य एआईआर 1997 एससी 3011 में अदालत ने इस मुद्दे पर विधायी शून्य को दूर करने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए। इसने "यौन उत्पीड़न" को किसी भी अवांछित यौन व्यवहार (चाहे सीधे या निहितार्थ) के रूप में परिभाषित किया है, जैसे शारीरिक संपर्क और यौन पक्ष के लिए मांग या अनुरोध, यौन रंगीन टिप्पणी, अश्लील साहित्य दिखाना और कोई अन्य अवांछित शारीरिक मौखिक और गैर–मौखिक यौन प्रकृति का आचरण। इस फैसले के परिणामस्वरूप कोई भी महिला कर्मचारी, जो किसी भी प्रकार के यौन उत्पीड़न की शिकार है, कानूनी कार्यवाही शुरू करने का सहारा ले सकती है और दोषी नियोक्ता या यौन उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार अन्य व्यक्ति से मुआवजे की मांग कर सकती है।

महिलाओं और लड़कियों की तस्करी (Trafficing of women and girls)

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं, युवा लड़कियों और बच्चों की तस्करी एक वैश्विक समस्या बनी हुई है जो हर साल सात अरब डॉलर का कारोबार पैदा कर रही है। यह ड्रग्स और हथियारों के बाद तीसरा सबसे बड़ा अवैध अंतरराष्ट्रीय व्यापार है। इस आकर्षक व्यापार के लिए माल ज्यादातर महिलाएं और सीमांत समुदायों के बच्चे हैं जो एक व्यवहार्य रोजगार और अस्तित्व के साधन की तलाश में हैं। अवैध व्यापार करने वाले पीड़ितों को धोखा देने के लिए बेहतर जीवन के अवसरों का उपयोग करते हैं और बेहतर अवसरों के लिए पलायन करने की उनकी सहज मानवीय आवश्यकता का फायदा उठाते हैं। महिलाओं और युवा लड़कियों की तस्करी मुख्य रूप से वैश्विक देह व्यापार की मांग को पूरा करने के लिए की जाती है। अवैध मानव तस्करी का सिद्धांत लैंगिक असमानताओं और आर्थिक विकल्पों की कमी से उत्पन्न पीड़ितों की नितांत शक्तिहीनता है। हालांकि प्रत्येक राष्ट्र राज्य में अवैध मानव तस्करी के खिलाफ कानून और नीतियां हैं लेकिन उनके प्रभावी कार्यान्वयन का अभाव है।

मानव अधिकारों के इस बड़े पैमाने पर उल्लंघन को कम करने के लिए वैश्विक समुदाय कई क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों को तैयार करके मानव तस्करी के खतरे के खिलाफ लगातार प्रतिक्रिया दे रहा है।

टिप्पणी

2.3.2 बच्चों के विरुद्ध अपराध

बच्चों के संदर्भ में, यौन हमले को गंभीर यौन हमला और अनाचार के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। 'गंभीर यौन हमले' में मौखिक सेक्स और गुदा मैथुन के साथ–साथ बच्चों को अश्लील फिल्मों के लिए पोज देने, एक–दूसरे के साथ यौन संबंध बनाने और जानबूझकर बच्चे के यौन अंगों को चोट पहुंचाने जैसे अपराध शामिल हैं। 'यौन हमले' में बच्चों की अश्लील तस्वीरें और दिखावटीपन दिखाना शामिल है।

यौन अपराधों के खिलाफ बच्चों को व्यापक सुरक्षा प्रदान करने के लिए, यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम, 2012 पेश किया गया था। यह अधिनियम पेनो–योनि पैठ के अलावा अन्य प्रवेश को अपराध के रूप में मान्यता देता है और बच्चों के खिलाफ अनैतिकता के कार्य को अपराधी बनाता है। कानून को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न प्रक्रियात्मक अनुपालनों की प्रक्रिया को संशोधित किया गया है।

बच्चों का अपहरण

जो कोई सोलह वर्ष से कम आयु के किसी अवयस्क को, यदि पुरुष हो या अठारह वर्ष से कम आयु का हो, यदि कोई महिला हो या कोई विकृतचित्त व्यक्ति हो, ऐसे अवयस्क के वैध अभिभावक या विकृतचित्त व्यक्ति के कानूनी संरक्षक की देखरेख में ले लेता है या बहकाता है। ऐसे अभिभावक की सहमति से ऐसे नाबालिग या व्यक्ति को वैध संरक्षकता से अपहरण करने के लिए कहा जाता है (धारा 361, भारतीय दंड संहिता)।

जो कोई बलपूर्वक, या किसी धोखे से किसी व्यक्ति को किसी स्थान से जाने के लिए प्रेरित करता है, उस व्यक्ति का अपहरण करने वाला कहा जाता है। (धारा 362, भारतीय दंड संहिता)।

नाबालिग लड़कियों व बच्चों को बेचना/खरीदना

जो कोई भी अठारह वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति को इस आशय से बेचता है, देता है या किराए पर देता है, या अन्यथा उसका निबटान करता है कि ऐसे व्यक्ति को किसी भी उम्र में वेश्यावृत्ति या किसी व्यक्ति के साथ अवैध संभोग या किसी भी गैरकानूनी और अनैतिक उद्देश्य के लिए नियोजित या उपयोग किया जाएगा, या यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति किसी भी उम्र में किसी भी तरह के उद्देश्य के लिए नियोजित या उपयोग किया जाएगा, उसे किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा (धारा 372, आईपीसी)।

जो कोई भी अठारह वर्ष से कम आयु के किसी व्यक्ति को इस आशय से खरीदता है, काम पर रखता है या अन्यथा प्राप्त करता है कि ऐसे व्यक्ति को किसी भी उम्र में वेश्यावृत्ति या किसी व्यक्ति के साथ अवैध संभोग या किसी भी गैरकानूनी और अनैतिक उद्देश्य के लिए नियोजित या उपयोग किया जाएगा, या यह जानते हुए कि इस तरह के व्यक्ति को किसी भी उम्र में नियोजित किया जाएगा या किसी ऐसे उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाएगा, उसे किसी भी तरह के कारावास से दंडित किया

जाएगा, जिसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माना भी लगाया जा सकता है (धारा 373, आईपीसी)।

टिप्पणी

भ्रूणहत्या व नवजात शिशु हत्या

महिला की सहमति से या उसके बिना गर्भपात करना भारतीय दंड संहिता की धारा 312 और 313 के तहत अपराध है। यद्यपि 'गर्भपात' शब्द का प्रयोग खंडों में नहीं किया गया है, लेकिन 'गर्भपात' शब्द तकनीकी रूप से गर्भपात को संदर्भित करता है जिसका अर्थ है भ्रूण का निष्कासन – भ्रूण को पूर्ण विकास प्राप्त करने से पहले किसी भी समय।

भारतीय दंड संहिता की धारा 315 में प्रावधान है कि किसी बच्चे को जीवित पैदा होने से रोकने या जन्म के बाद उसकी मृत्यु को रोकने के इरादे से किया गया कार्य कारावास के साथ दंडनीय है जिसे 10 साल तक बढ़ाया जा सकता है या जुर्माने के साथ। गर्भावस्था के उन्नत चरण में अजन्मे बच्चे की मृत्यु गैर इरादतन हत्या की श्रेणी में आती है और आईपीसी की धारा 316 में प्रदान किए गए जुर्माने के साथ या बिना 10 साल तक के कारावास की सजा है।

सभी कानूनी उपायों के बावजूद लिंग चयनात्मक गर्भपात से कोई राहत नहीं है, क्योंकि अपराधी इस कारण से दण्डित नहीं होते हैं कि प्रजनन मुद्दों को व्यक्तिगत और निजी मामलों के रूप में माना जाता है। आज भी, लिंग चयन को एक पारिवारिक और व्यक्तिगत मुद्दा माना जाता है, इसलिए, लोग सार्वजनिक रूप से इसके पेशेवरों और विपक्षों पर चर्चा करने से डरते हैं। यह अपेक्षित माता–पिता और उनके संबंधित परिवार के सदस्यों की चिंता माना जाता है। कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ सभी अभियानों और उपायों की विफलता का प्रमुख कारक एक पुरुष बच्चे के लिए वरीयता है। लिंग–चयनात्मक गर्भपात के खिलाफ कानून बुराई को रोकने में विफल रहा है और अल्ट्रासाउंड केंद्र और निजी क्लीनिक गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य जांच की आड़ में अवैध परीक्षण कर रहे हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. कहां पर महिलाओं की भूमिका बेटी, गृहिणी और मां तक ही सीमित है?

   (क) इंग्लैंड में (ख) अमेरिका में

   (ग) जर्मनी में (घ) भारत में

4. किसके खिलाफ बच्चों को व्यापक सुरक्षा प्रदान करने के लिए, बच्चों की सुरक्षा अधिनियम 2012 पेश किया गया?

   (क) छोटे अपराधों के (ख) सामान्य अपराधों के

   (ग) यौन अपराधों के (घ) मौन अपराधों के

2.4 साइबर अपराध

विगत सदी के सूचना प्रौद्योगिकी तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास ने कंप्यूटर जनित अपराधों का एक नया वर्ग जिसे साइबर अपराध के नाम से जाना जाता है वैश्विक स्तर पर स्थापित कर दिया है। विश्व एवं भारत में ऐसे अपराधों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है और ये अपराध विधि प्रवर्तन संस्थाओं के समक्ष नई–नई

टिप्पणी

चुनौतियों के रूप में उभर कर सामने आ रहे हैं। साइबर अपराधों की सबसे बड़ी जटिलता यह है कि अपराधी घटना स्थल पर उपस्थित हुए बिना घटना को किसी भी स्थान से कारित कर सकता है तथा अपराधी व उसके अपराध का शिकार हुआ व्यक्ति एक–दूसरे से पूर्ण रूप से अनजान रहते हैं। साइबर अपराधी के पकड़े जाने की संभावना नहीं के बराबर होती है क्योंकि वह स्वयं अदृश्य रहता है और कंप्यूटर तकनीक के माध्यम से किसी भी व्यक्ति को लक्षित कर क्षति पहुंचाता है। विभिन्न प्रकार के साइबर अपराधों में कंप्यूटर जनित अनेक प्रकार की अवैध गतिविधियां सम्मिलित होती हैं, जिनमें संचार सेवाओं की चोरी, औद्योगिक जासूसी, छल–कपट, अवांछित अश्लील प्रसारण,मनी लाउंड्रिंग, कर चोरी, ईमेल में हेराफेरी, अवैध हस्तक्षेप, गोपनीय सूचना का दुरुपयोग, षड्यंत्र आदि आते हैं।

साइबर अपराध की परिभाषा

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 के अंतर्गत साइबर अपराध को परिभाषित नहीं किया गया क्योंकि विद्वानों का यह मानना था कि इसकी परिभाषा अन्य अपराधों की परिभाषा से मूलतः भिन्न नहीं हो सकती क्योंकि अन्य अपराधों की भांति ही साइबर अपराध में भी कोई ऐसा कार्य किया गया है जिससे विधि का उल्लंघन होता है और राज्य द्वारा दंडनीय होता है।

फिर भी एक स्वतंत्र परिभाषा देने के लिए साइबर अपराध को एक ऐसा आपराधिक कृत्य माना जा सकता है जिसमें कंप्यूटर को माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है या कंप्यूटर को अपराध कार्य करने का साधन या लक्ष्य के रूप में निशाना बनाया जाता है।

साइबर अपराध अवैध गतिविधि है जिसमें किसी भी रूप में कंप्यूटर का प्रयोग किया जाता है इसमें अनेक प्रकार की आपराधिक गतिविधियां शामिल हो सकती हैं जो कि कंप्यूटर डाटा या सिस्टम की गोपनीयता अथवा विश्वसनीयता पर बुरा प्रभाव डालती हैं और जिन से कॉपीराइट संबंधी अधिकार का भी उल्लंघन हो सकता है।

साइबर अपराध में वृद्धि के कारण

साइबर अपराधी सूचना प्रौद्योगिकी का दुरुपयोग करने में सक्षम होता है और इसी कारण अन्य अपराधों की तुलना में साइबर अपराध शीघ्रता से वृद्धि कर रहे हैं। कंप्यूटर अपराधों की वृद्धि के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

1. कंप्यूटर में छोटे से चिप में अत्यधिक डाटा संग्रहित करने की विलक्षण क्षमता होती है, जिसके कारण इसमें विविध सूचनाएं एकत्रित कर संजोकर रख ली जा सकती हैं तथा आवश्यकता न होने पर सरलता से हटाई जा सकती हैं। यह डाटा किसी भी साइबर अपराधी द्वारा चुरा लिया जा सकता है।
2. सुरक्षा उपायों को अनदेखा करते हुए कंप्यूटर में अनाधिकृत अभिगमन द्वारा गोपनीय अथवा व्यक्तिगत जानकारी अपेक्षाकृत सफल होती है।
3. कंप्यूटर द्वारा जनित ऑपरेटिंग सिस्टम में हजारों कूट संकेत होते हैं। साइबर अपराधी मानव मस्तिष्क की विस्मृति का फायदा उठाते हुए कंप्यूटर सिस्टम में संचयित जानकारी चुरा सकते हैं।

4. कंप्यूटर सिस्टम की मुख्य समस्या यह है कि इसमें साक्ष्य आसानी से नष्ट किए जा सकते हैं और आपराधिक लक्ष्य पूरे होते ही साइबर अपराधी अपने विरुद्ध समस्त साक्ष्यों को नष्ट कर देता है। अन्वेषण संस्थाएं इन्हें पकड़ पाने में असमर्थ होती हैं और उनके विरुद्ध अभियोजन का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता।
5. कंप्यूटर प्रयोक्ता द्वारा कंप्यूटर में एकत्रित की गई जानकारी एवं डाटा असावधानी के कारण क्षतिग्रस्त हो सकता है और साइबर अपराधी कंप्यूटर सिस्टम में से अनधिकृत अभिगमन से जानकारी और डाटा चुरा कर उसका दुरुपयोग कर सकते हैं।

वायरस

वायरस किसी भी कंप्यूटर सिस्टम को गंभीर रूप से क्षति पहुंचाने में सक्षम होते हैं। वायरस ऐसे कंप्यूटर प्रोग्राम और कूट संकेत होते हैं जो किसी अन्य प्रोग्राम में प्रवेश कर उसे प्रतिकृत कर देते हैं और इस प्रकार कंप्यूटर में संगृहीत प्रोग्राम विनष्ट हो जाते हैं। वायरस डाटा फाइलों को भी क्षतिग्रस्त कर सकते हैं इस प्रकार वायरस से कंप्यूटर सॉफ्टवेयर दुष्प्रभावित होता है लेकिन कंप्यूटर हार्डवेयर इससे प्रभावित नहीं होता। वर्तमान समय में विश्व में लगभग 5000 से अधिक वायरस हैं जैसे उदाहरण के लिए लवबग वायरस के कारण मई 2000 में विश्व की अनेक इंटरनेट साइट्स गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हुई थीं।

वायरस मूल रूप से दो प्रकार के होते हैं पहले, फाइल इन्फेक्टर्स तथा दूसरे बूट रिकॉर्ड इन्फेक्टर्स–

1. **फाइल इनफैक्टर्स** : ये दो प्रकार के होते हैं– सीधे मारक और निवासी। सीधे मारक यानी सीधे मार करने वाले वायरस एक ही समय में एक से अधिक प्रोग्राम को नष्ट कर सकते हैं जबकि निवासी वायरस कंप्यूटर की मैमोरी में छिपे होते हैं और जब भी किसी प्रोग्राम का निष्पादन किया जाता है तब वे उसे संक्रमित कर देते हैं।
2. **बूट रिकॉर्ड इन्फैक्टर्स** : बूट रिकॉर्ड वायरस निष्पादनीय कूट संकेत को संक्रमित करता है जो कंप्यूटर डेस्क के सिस्टम भाग में पाया जाता है। उदाहरण के लिए जैसे ब्रेन (brain), अझूसा (Azusa) आदि हैं।

कुछ ऐसे भी वायरस होते हैं जो फाइल एवं बूट रिकॉर्ड दोनों को संक्रमित करते हैं, इन्हें 'बूट एंड फाइल' वायरस कहा जाता है।

एक अन्य वायरस जिसे झांसा देने वाला वायरस भी कहा जा सकता है यह वायरस ईमेल संदेश में पाया जाता है और यह सूचित करता है कि उस पर अमुक वायरस का संक्रमण है लेकिन वास्तव में ऐसा होता नहीं है। इस वायरस को प्रवंचना वायरस (hoax virus) कहते हैं। ऐसे वायरस का प्रयोजन केवल कंप्यूटर का उपयोग करने वाले व्यक्ति को झांसा देकर वायरस का डर उत्पन्न करना होता है। इस वायरस से बचने का सरल उपाय यह है कि ईमेल में इसकी अनदेखी की जाए अन्यथा यह एक लंबी श्रृंखला के रूप में पूरे इंटरनेट पर फैलता है। गुड टाइम्स वायरस सबसे पहले सन् 1994 में ईमेल पर लिखा गया था और उसने विश्व भर में अनेक बार कंप्यूटर प्रयोक्ता को गुमराह करके क्षति पहुंचाई है।

टिप्पणी

साइबर अपराध के प्रकार

साइबर अपराध मुख्यतः दो श्रेणियों में रखे जाते हैं––

1. पहली श्रेणी में ऐसे अपराध आते हैं जिनमें कंप्यूटर अपराध का लक्ष्य होता है।
2. दूसरी श्रेणी में ऐसे साइबर अपराध आते हैं जिनमें कंप्यूटर साधन के रूप में प्रयुक्त होता है।

1. अपराध जिनमें कंप्यूटर अपराध का लक्ष्य होता है उसमें विभिन्न प्रकार के अपराध सम्मिलित होते हैं जैसे कि कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क का विध्वंस होना, ऑपरेटिंग सिस्टम तथा प्रोग्रामों का विध्वंस, डाटा और सूचनाओं की चोरी होना, कंप्यूटर सॉफ्टवेयर की चोरी होना एवं कंप्यूटर सॉफ्टवेयर बौद्धिक संपदा की चोरी होना, बाजार संबंधी जानकारी एवं सूचनाओं की चोरी करना, कंप्यूटर फाइलों से अवैध अभिगमन द्वारा व्यक्तिगत जानकारी, वित्तीय डाटा इत्यादि की चोरी करना तथा इस डेटा का दुरुपयोग करके व्यक्ति को ब्लैकमेल करना।
2. अपराध जिनमें कंप्यूटर साधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं ऐसे साइबर अपराध का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक होता है। सूचना प्रौद्योगिकी तथा कंप्यूटर विज्ञान के विकास के कारण ही ऐसे अपराध कार्य होते हैं साइबर अपराधियों के लिए कंप्यूटर का साधन सुविधाजनक सिद्ध हुआ है क्योंकि कंप्यूटर से अपराध करने के लिए इन्हें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं होती और पहचान भी छिपी रहती है और इस प्रकार ये साइबर अपराधी दूर–दराज के स्थानों को भी अपना लक्ष्य बना सकते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे अपराधों में ई बैंकिंग, ई वाणिज्य संबंधित घोटाले, साइबर अश्लीलता, सॉफ्टवेयर पायरेसी, ऑनलाइन जुआखोरी, कॉपीराइट या व्यापार चिन्ह का दुरुपयोग आदि शामिल हैं।

साइबर क्राइम या अपराध परंपरागत रूप से भी वर्गीकृत किए जा सकते हैं–

1. आर्थिक स्वरूप के साइबर अपराध जो संसाधनों को क्षति पहुंचाते हैं।
2. निजता के विरुद्ध साइबर अपराध जो दूसरे व्यक्ति की निजता में अवैध रूप से हस्तक्षेप करते हैं।

साइबर अपराधों का सामान्य सरल रूप में भी वर्गीकरण किया गया है जो निम्न प्रकार से है–

1. व्यक्ति विशेष के विरुद्ध साइबर अपराध जिसमें ई–मेल में हेराफेरी, मानहानि, कंप्यूटर सिस्टम या प्रोग्राम में अनाधिकृत अभिगमन, अश्लील एवं अभद्र प्रदर्शन आदि शामिल हैं।
2. संपत्ति के विरुद्ध साइबर अपराध जिसमें कंप्यूटर को क्षतिग्रस्त करना, वायरस से संक्रमित करना, सेवा उपलब्धि को रोकना, प्रतिबंधित वस्तुओं का क्रय–विक्रय करना, बौद्धिक संपदा का हनन करना आदि शामिल हैं।
3. समाज या राज्य के विरुद्ध साइबर अपराध जिसमें साइबर आतंकवाद, ऑनलाइन जुआ, अश्लीलता, वित्तीय घोटाले आदि शामिल हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (2000)

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के कारण नए–नए साइबर अपराध उत्पन्न होते हैं और उनसे कारगर तरीके से निबटने के लिए भारतीय दंड संहिता 1860 के प्रावधान अपर्याप्त थे। कुछ परंपरागत अपराध जैसे कपट, षड्यंत्र, अश्लीलता, मानहानि, जासूसी आदि अपराध भी इंटरनेट के माध्यम से घटित हो रहे हैं अतः इन के निवारण हेतु नए कानून की आवश्यकता अनुभव की गई। साइबर अपराधों से निबटने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 पारित किया गया।

यह अधिनियम 17 अक्टूबर सन 2000 से प्रभावी हुआ और इस नए कानून के लागू किए जाने के फलस्वरूप भारतीय दंड संहिता तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 में संशोधन करना भी आवश्यक हो गया।

भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों की योग्यता की परिधि को विस्तृत करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम द्वारा नई धारा 29A को जोड़ा गया ताकि जहां कहीं भी दस्तावेज से संबंधी अपराध का उल्लेख है उसमें इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेजों को भी शामिल किया जाए।

धारा 29 A इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड

'इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड' का अर्थ ठीक वैसा ही होगा जैसा कि सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 धारा, 2(1)(t) में सम्मिलित किया गया है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा, 2(1)(t) के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड से आशय है डाटा रिकॉर्ड या डाटा से प्राप्त की गई प्रतिकृति या इलेक्ट्रॉनिक रूप में संग्रहित, प्राप्त या भेजी गई ध्वनि या माइक्रो फिल्म।

भारतीय दंड संहिता में अलग–अलग धाराओं में प्रयुक्त शब्द दस्तावेज में इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेज का भी समावेश हो गया। उदाहरण के लिए जैसे न्यायालय के अभिलेख या लोक रजिस्टर आदि की कूट रचना (धारा 466), मूल्यवान प्रतिभूति, बिल आदि की कूट रचना (धारा 467), छल के प्रयोजन से कूट रचना(धारा 468) आदि अनेक धाराएं हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 के मुख्य लक्षण

भारत में दिनांक 17 अक्टूबर, 2000 को सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 प्रवृत्त हुआ। इस अधिनियम में कुल 94 धाराएं तथा 4 अनुसूचियां हैं। इस अधिनियम को सन् 2008 में संशोधित करके और अधिक व्यापक रूप में लाया गया है। संशोधित अधिनियम (एक्ट 10 ऑफ 2009) 5 फरवरी, 2009 से प्रभावी हुआ। इस संशोधित अधिनियम, 2008 के अंतर्गत बनाए गए नियम 27 अक्टूबर, 2009 से लागू किए गए और उन्हें अप्रैल, 2011 में पुनः संशोधित किया गया।

इस अधिनियम के द्वारा ई वाणिज्य को विधिक मान्यता प्रदान की गई। जिसमें इलेक्ट्रॉनिक पत्राचार के माध्यम से वाणिज्यिक एवं व्यापारिक संव्यवहार सुविधाजनक किए गए। इलेक्ट्रॉनिक रूप में तैयार किए गए रिकॉर्ड को कागजी दस्तावेजों जैसी ही वैधानिक मान्यता प्रदान की गई। अधिनियम द्वारा डिजिटल हस्ताक्षर को भी विधिक मान्यता दी गई जिनका प्रमाणन प्राधिकारी द्वारा अधिप्रमाणन आवश्यक होता है।

टिप्पणी

अधिनिर्णय प्राधिकारी द्वारा दिए गए निर्णय के विरुद्ध अपील की सुनवाई हेतु अपीलीय न्यायाधिकरण की स्थापना की गई। इस अधिनियम के उपबंध परक्राम्य लिखित, पावर ऑफ अटॉर्नी, न्यास, अचल संपत्ति से संबंधित विक्रय या अभिहस्तांतरण, इच्छा पत्र की संविदा के प्रति लागू नहीं होंगे। यह अधिनियम ऐसे व्यक्तियों के प्रति भी लागू होगा जिन्होंने कोई साइबर अपराध या इस अधिनियम के प्रावधानों को भारत से बाहर कारित किया हो भले ही उस व्यक्ति की राष्ट्रीयता भी कोई भी हो।

अधिनियम के उपबंध को प्रवृत्त करने के लिए इस अधिनियम की धारा 90 के अंतर्गत राज्य सरकार अपने कार्यालयीन गजट में अधिसूचना जारी करके समुचित नियम बना सकती है। सूचना अधिनियम के पारित हो जाने के परिणाम स्वरूप इंटरनेट पर प्रतिभूतियों का व्यापार सेबी (SEBI) द्वारा भारत में वैध घोषित किया गया।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अपराध

निम्नलिखित अपराधों के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 में दांडिक प्रावधान किया गया है–

1. अनाधिकृत अभिगमन : अधिनियम की धारा 43 के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क के स्वामी या प्रभारी की अनुमति के बिना कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क में अनाधिकृत अभिगमन करता है या अभिगमन को प्राप्त करता है तो प्रभावित व्यक्ति को प्रतिकर देगा जो एक करोड़ रुपए से अधिक राशि हो सकती है।

धारा 43 के प्रयोजन के अनुसार कंप्यूटर या कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क में अनाधिकृत पहुंच कई रूप में हो सकती है जैसे कि किसी कंप्यूटर को अवैध रूप से स्विच ऑन करना या कंप्यूटर में संस्थापक सॉफ्टवेयर का अनाधिकृत उपयोग करना या किसी कंप्यूटर को अवैध रूप से बंद कर देना या अवैध रूप से कंप्यूटर को प्रयोग में लाना जैसे प्रिंट आउट निकालना, इंटरनेट के द्वारा अवैध तरीके से लॉग ऑन करना एवं कंप्यूटर से तीव्र घंटी नुमा ध्वनि उत्सर्जित करना।

मूल अधिनियम में सन 2008 में संशोधन के द्वारा एक नई धारा 43A को जोड़ा गया जिसके अंतर्गत किसी भी व्यक्ति के कंप्यूटर संसाधन में वैयक्तिक डाटा, जानकारी संरक्षित रखने में विफलता की स्थिति में प्रति कर प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होगा इस प्रकार इस धारा द्वारा डाटा या वैयक्तिक जानकारी को अनधिकृत अभिगमन के विरुद्ध सुरक्षा सुनिश्चित की गई है।

2. रिटर्न या जानकारी प्रस्तुत करने में विफलता : धारा 354 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम या इसके अधीन नियमों के अधीन किसी भी दस्तावेज रिटर्न या रिपोर्ट प्रमाणिकी प्राधिकारी को प्रेषित करने के लिए आबद्ध है और वह ऐसा करने में विफल रहता है तो उसे प्रत्येक विफलता के लिए जुर्माना देना होगा जो लगभग डेढ़ लाख रुपए तक हो सकता है।

3. अधिनियम के नियमों का उल्लंघन : धारा 45 के अंतर्गत अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों के उल्लंघन को अपराध माना गया है।

धारा 46 में उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को देय दंड या शास्तियों के न्याय निर्णय संबंधी प्रावधान है।

टिप्पणी

4. कंप्यूटर जनित दस्तावेजों में हेरफेर : धारा 65 के अंतर्गत कंप्यूटर जनित दस्तावेजों की हेराफेरी को दंडनीय अपराध माना गया है। इस अपराध के लिए 3 वर्ष तक कारावास तथा 2 लाख रुपए जुर्माने का दंड निश्चित है।

5. हैकिंग : धारा सिक्सटी सिक्स कंप्यूटर सिस्टम के साथ छेड़छाड़ या हैकिंग को साइबर अपराध मानती है इसके लिए 3 वर्ष तक का कारावास या 2 लाख रुपए का अर्थदंड या दोनों ही निश्चित किए गए हैं।

6. अश्लील जानकारी का इलेक्ट्रॉनिक रूप से प्रकाशन : इंटरनेट पर अश्लीलता धारा 67 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

साइबर अश्लीलता के अपराधी को पीडोफाइल कहा जाता है। इस धारा के अधीन 3 वर्ष तक के कारावास या दो लाख रुपए का अर्थदंड या दोनों दंडनीय है।

7. कंट्रोलर के निर्देशों का अपालन : धारा 68 कंट्रोलर को अधिकृत करती है। इसके द्वारा कंट्रोलर प्रमाणीकरण प्राधिकारी या उस प्राधिकारी के किसी कर्मचारी को यह शक्ति प्रदान कर सकता है कि वह कंप्यूटर या इंटरनेट पर संग्रहित या प्रसारित किसी भी जानकारी के संचालन में हस्तक्षेप कर उसके संबंध में उचित आदेश या निर्देश जारी कर सकता है।

कंट्रोलर के निर्देशों का पालन न किए जाने पर दोषी व्यक्ति को 3 वर्ष तक का कारावास या दो लाख रुपए का अर्थदंड या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

8. कंप्यूटर स्रोत से जनित जानकारी को रोकना या परिवीक्षण करने या मिटाने हेतु निर्देश देने की शक्ति : धारा 69 के अंतर्गत प्रमाणीकरण प्राधिकारी या उसके किसी कर्मचारी को यह अधिकार होगा कि वह आवश्यक होने पर इंटरनेट पर पोषित होने वाली किसी जानकारी को बीच में ही हस्तक्षेप करके रोक सके, मिटा सके या उसका पर्यवेक्षण कर सके जिससे कि देश की सुरक्षा, अखंडता या राज्य की सुरक्षा आदि को खतरा न हो।

9. संरक्षित सिस्टम में अभिगमन : धारा 70 में संरक्षित सिस्टम के संबंध में विशिष्ट प्रावधान है जिसके अनुसार समुचित सरकार अपने राजपत्र में अधिसूचना के प्रकाशन द्वारा किसी भी कंप्यूटर या कंप्यूटर सिस्टम या कंप्यूटर नेटवर्क को संरक्षित सिस्टम घोषित कर सकती है।

इस धारा का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को 10 वर्ष तक के कारावास से या अर्थदंड से दंडित किया जा सकता है।

10. दुर्व्यपदेशन : धारा 71 के अनुसार किसी व्यक्ति द्वारा डिजिटल हस्ताक्षर के प्रमाणीकरण हेतु कंट्रोलर या प्रमाणन अधिकारी को दिए गए आवेदन में दुर्व्यपदेशन किया गया है तो वह अपराध माना जाएगा। इस अपराध के लिए 2 वर्ष तक के कारावास या एक लाख रुपए के आर्थिक दंड या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

11. गोपनीयता एवं निजता भंग करने के लिए दंड : धारा 72 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम तथा इसके अधीन नियमों का उल्लंघन करते हुए किसी इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड, पुस्तक, रजिस्टर, पत्राचार, सूचना, दस्तावेज, जानकारी या किसी अन्य सामग्री को सदोष प्राप्त करता है तो उसे 2 वर्ष तक के कारावास या एक लाख रुपए का अर्थदंड या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

टिप्पणी

12. गलत ढंग से डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण पत्र का प्रकाशन : धारा 73 के अंतर्गत इसे दंडनीय अपराध माना गया है और इसके लिए 2 वर्ष तक के कारावास या एक लाख रुपए तक का अर्थदंड या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

13. कपट पूर्ण उद्देश्यों के लिए डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण पत्र प्रकाशित करना : धारा 74 के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो कपट पूर्ण आशय से डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण पत्र तैयार करता है और प्रकाशित करता है या किसी को उपलब्ध कराता है तो इस धारा के अंतर्गत दंडनीय होगा तथा उसे 2 वर्ष तक के कारावास या एक लाख रुपए का अर्थदंड या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

अपराधों का प्रशमन

सूचना प्रौद्योगिकी संशोधन अधिनियम 2008 द्वारा मूल अधिनियम में नई धारा 77A को जोड़ा गया जिसमें साइबर अपराध के प्रशमन संबंधी प्रावधान हैं। इस धारा के अनुसार ऐसे अपराध जो आजीवन कारावास या 3 वर्ष से अधिक कारावास से दंडनीय हैं प्रशमनीय नहीं होंगे।

अपनी प्रगति जांचिए

5. किस अपराधी के पकड़े जाने की संभावना नहीं के बराबर होती है?

   (क) साइबर (ख) साधारण

   (ग) मशहूर (घ) कमजोर

6. किसी भी कंप्यूटर सिस्टम को गंभीर रूप से क्षति पहुंचाने में कौन सक्षम होते हैं?

   (क) वायरस (ख) चोर

   (ग) इंजीनियर (घ) डॉक्टर

2.5 भ्रष्टाचार

जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार व्याप्त है और राजनीति का इस हद तक अपराधीकरण हो गया है कि लोग राजनेताओं से दूर रहने लगे हैं। राजनीतिक नेताओं और तथाकथित जन प्रतिनिधियों को एक ही दर्शन द्वारा निर्देशित किया जाता है, "मतलब कोई फर्क नहीं पड़ता, जाओ और जो तुम चाहते हो उसे प्राप्त करो और इसे प्राप्त करने के लिए सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग करो"। इस प्रकार, भारतीय राजनीति "आध्यात्मिककरण से अपराधीकरण" में बदल रही है। संक्षेप में, भारत तेजी से पतन की ओर बढ़ रहा है और यदि भौतिकवाद, अवसरवाद और बर्बरता की वर्तमान लहर को समय पर रोका नहीं गया, तो परिणाम भयावह हो सकते हैं। भारतीय समाज में इस गिरावट को दूर करने के लिए, ईमानदारी और अखंडता के पोषित मूल्यों को बहाल करने की आवश्यकता है, जिन्होंने वर्तमान भारतीय संदर्भ में अपनी विश्वसनीयता खो दी है, जहां मानव जीवन के सभी गुणों में 'समीक्षा' प्रमुख है। भ्रष्टाचार, तोड़फोड़ और इसी तरह की अन्य आपराधिक गतिविधियों में लिप्त पाए जाने वालों से सख्ती से निबटा जाना चाहिए और कड़ी सजा दी जानी चाहिए। उन प्रक्रियाओं की पहचान करने

टिप्पणी

की आवश्यकता है जो अपराध के प्रति लोगों की संवेदनशीलता को कमजोर कर रही हैं और परिणाम और सामाजिक विघटन की परवाह किए बिना व्यक्तियों को अनियंत्रित और आपराधिक व्यवहार में शामिल होने के लिए स्वतंत्र छोड़ रही हैं।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि भ्रष्टाचार का विनाशकारी प्रभाव शायद अपराध निवारण कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन में सबसे बड़ी बाधा है। भ्रष्टाचार को रोकने की दृष्टि से सार्वजनिक अधिकारियों के बीच सत्यनिष्ठा, ईमानदारी और जिम्मेदारी को बढ़ावा देने के लिए, न्यायिक और अभियोजन सेवाओं के लिए खरीद और आचार संहिता विकसित करने की पारदर्शी प्रणाली विकसित करने के लिए पर्याप्त उपाय किए जाने की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार के खतरे ने सभी समाजों और अर्थशास्त्र को प्रभावित करने वाले वर्षों में अंतरराष्ट्रीय आयाम ग्रहण कर लिया है। इसलिए, इसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कड़े नियामक उपायों के साथ सामना करना होगा। भारत में, कुख्यात अपराधी अक्सर भ्रष्ट प्रथाओं का सहारा लेकर या संबंधित अधिकारियों को रिश्वत देकर पता लगाने और अभियोजन से बचने का प्रबंधन करते हैं, जिसका आम आदमी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिससे आपराधिक न्याय प्रशासन प्रणाली की छवि खराब होती है।

व्यापक भ्रष्टाचार की भयावहता का अंदाजा केंद्रीय सतर्कता आयोग (CVC) द्वारा प्राप्त कथित भ्रष्ट आचरण की शिकायतों की संख्या में भारी वृद्धि से आसानी से लगाया जा सकता है। इन शिकायतों में भ्रष्टाचार के आरोपित व्यक्तियों में सामान्य लिपिकों से लेकर नौकरशाहों, वरिष्ठ राजनेताओं, कार्पोरेट, प्रतिष्ठित व्यक्तियों और उच्च पदों पर आसीन अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति शामिल हैं। यद्यपि सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 को नौकरशाही और राजनीतिक वर्ग के खिलाफ 'सुरक्षा वाल्व' के रूप में लाया गया था, लेकिन उन्होंने एक आरामदायक ऑपरेटिंग सिस्टम बनाया है जो ज्यादातर काले धन, मीडिया हेरफेर और गुप्त सौदों पर चलता है। यह ध्यान देने योग्य है कि हाल के वर्षों के लगभग सभी बड़े घोटाले जैसे 2जी स्पेक्ट्रम, आदर्श रक्षा समाज, फ्लैट आवंटन घोटाला, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन मामले, राष्ट्रमंडल खेल घोटाला, कोयला घोटाला, अवैध खनन अनुबंध आदि निरंकुशता का परिणाम हैं। सत्ता में बैठे राजनेता अधीनस्थ नौकरशाहों की मिलीभगत से इस अधिकार का दुरुपयोग कर रहे हैं।

संसद ने लंबे समय से प्रतीक्षित लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम 2013 को दिसंबर 2013 में भारत में भ्रष्टाचार और कदाचार से मुक्त एक पारदर्शिता क्रांति का आश्वासन देने के लिए पारित किया है, लेकिन यह कहा जाना चाहिए कि केवल कानून ही भ्रष्टाचार का उन्मूलन नहीं कर सकता जब तक कि मानसिक परिवर्तन न हो। सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार के खिलाफ उठने के लिए लोगों का रवैया और सरकार की राजनीतिक इच्छाशक्ति आवश्यक है।

भ्रष्टाचार के खिलाफ धर्मयुद्ध के संदर्भ में आगे बताया जा सकता है कि आरटीआई कार्यकर्ता और व्हिसलब्लोअर की रक्षा के लिए पर्याप्त कानून के अभाव में, जो प्रभावशाली राजनेताओं, नौकरशाहों, बिजनेस टाइकून, माफिया से जुड़े भ्रष्ट सौदे या कदाचार को उजागर करना चाहते हैं, उनकी अवैध गतिविधियां बनी रहती हैं और उनका खुलासा किया जाता है। इसलिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के व्हिसलब्लोअर (संरक्षण) अधिनियम

अल्पविराम 1989 के मॉडल पर एक विशेष कानून भारत के कानून आयोग द्वारा 2001 की अपनी 179 वीं रिपोर्ट में इस संबंध में की गई सिफारिशों को शामिल करते हुए संसद में पर्याप्त कानूनी सुरक्षा प्रदान करने के लिए पेश किया गया था। बेईमान सार्वजनिक प्राधिकरणों के खिलाफ व्हिसलब्लोअर और/या सूचना का अधिकार कार्यकर्ता बिल आखिरकार व्हिसलब्लोअर प्रोटेक्शन एक्ट 2014 में पारित हो गया।

अपनी प्रगति जांचिए

7. जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में क्या व्याप्त है?

   (क) शांति (ख) भ्रष्टाचार

   (ग) सुरक्षा (घ) संपन्नता

8. बेईमान सार्वजनिक प्राधिकरणों के खिलाफ व्हिसलब्लोअर/सूचना का अधिकार कार्यकर्ता बिल यानी व्हिसलब्लोअर प्रोटेक्शन एक्ट कब पारित हुआ?

   (क) 2011 में (ख) 2012 में

   (ग) 2013 में (घ) 2014 में

2.6 समकालीन भारत में अपराधियों की बदलती सामाजिक–आर्थिक प्रोफाइल

सामाजिक–आर्थिक अपराध वे हैं जिनका समाज के सामाजिक और आर्थिक कल्याण पर प्रभाव पड़ता है। ये गैर–पारंपरिक अपराध इस अर्थ में हैं कि उनमें पुरुषों की समझ का अभाव है। इन अपराधों का सामाजिक प्रभाव पड़ता है। ये किसी एक व्यक्ति को लक्षित नहीं करते हैं, बल्कि ऐसे लोगों के समूह को लक्षित करते हैं जिनके द्वारा ऐसी वस्तुओं या सेवाओं को खरीदने की संभावना होती है। सामाजिक–आर्थिक अपराध एक नए प्रकार का अपराध है, जिसमें उच्च और मध्यम वर्ग के व्यक्ति शामिल होते हैं और अपने व्यवसाय के दौरान प्रतिबद्ध होते हैं।

सदरलैंड इसे सफेदपोश अपराधों के रूप में संदर्भित करते हैं, जबकि अन्य इसे लोक कल्याणकारी अपराध, वैधानिक अपराध, सख्त दायित्व अपराध, और इसी तरह के रूप में संदर्भित करते हैं। इस प्रकार के अपराध दुनिया भर में अलग–अलग डिग्री तक फैल गए हैं। ऐसे अपराधों की गंभीरता काफी अधिक होती है। हालांकि भारत में कई कानून निर्माता स्थापित किए गए हैं, जिन्हें सामाजिक–आर्थिक विधायकों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

भारत में सामाजिक–आर्थिक अपराधों की परिभाषा और प्रकृति (Definition and nature of socio&economic offences in India)

भारत की 47वीं विधि आयोग की रिपोर्ट में उल्लिखित 'भारत में सामाजिक–आर्थिक अपराधों का विचार' महत्वपूर्ण है। अध्ययन के अनुसार, सामाजिक–आर्थिक अपराध ऐसे सामाजिक अपराध हैं जिनका प्रभाव केवल व्यक्तिगत शिकार के बजाय समग्र रूप

टिप्पणी

से समुदाय के स्वास्थ्य, नैतिकता, सामाजिक या समग्र कल्याण पर पड़ता है। आर्थिक अपराध वे हैं जो समाज की अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक हैं और न केवल व्यक्तिगत धन बल्कि देश की संपूर्ण आर्थिक संरचना को खतरे में डालते हैं।

सफेदपोश अपराध संपन्न वर्गों के सदस्यों द्वारा किए जाते हैं। दूसरी ओर, सामाजिक–आर्थिक अपराध ज्यादातर अन्य वर्गों के सदस्यों द्वारा किए जाते हैं। सामाजिक–आर्थिक अपराध न केवल सदरलैंड द्वारा समझे गए और दूसरों द्वारा स्वीकार किए गए सफेदपोश अपराध के दायरे को विस्तृत करते हैं, बल्कि इसके व्यापक निहितार्थ भी हैं।

सामाजिक–आर्थिक अपराध पारंपरिक अपराधों से भिन्न होते हैं क्योंकि वे, एक आम दिमाग में, किसी भी कलंक को शामिल या अपने साथ नहीं रखते हैं, जबकि पारंपरिक अपराध, सामाजिक–आर्थिक अपराधों के विपरीत, जनता के लिए एक प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं और एक अपमान से जुड़े कलंक को ढोते हैं, भ्रष्टता, और अनैतिकता और निश्चित रूप से निम्न वर्ग के लोगों का व्यवहार माना जाता है।

आमतौर पर, इस प्रकार के अपराधों में, शिकार मुख्य रूप से बड़े पैमाने पर सार्वजनिक होता है, विशेष रूप से उपभोग करने वाली जनता, और यहां तक कि अगर किसी व्यक्ति विशेष को कोई नुकसान नहीं होता है, तो समाज को नुकसान होता है जिसका समाज पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है।

पारंपरिक अपराधों के मामले में, दोष पूर्ण नहीं होता है और यह गलत करने वाले के इरादे से जुड़ा होता है। हालांकि, सामाजिक–आर्थिक अपराधों के मामले में, आपराधिक जिम्मेदारी के लिए पुरुषों की आवश्यकता को कम करने की सरकार की प्रवृत्ति है।

इन अपराधों से होने वाला नुकसान सामान्य अपराधों की तुलना में अधिक होता है। वे समग्र रूप से आबादी की नैतिकता, स्वास्थ्य और कल्याण को नुकसान पहुंचाते हैं, और उनके पास आर्थिक ताने–बाने को नष्ट करने की क्षमता है। नतीजतन, ऐसे मामलों में विधायिका की नीति रोकथाम, नियंत्रण और सजा के मामले में लिप्त नहीं होनी चाहिए, और अपराधी को बिना सजा के जाने की अनुमति नहीं है।

पारंपरिक अपराधों को गलत करने वाले के शारीरिक, पर्यावरणीय, या सामाजिक कुसमायोजन का परिणाम माना जाता था। परिणामस्वरूप, ऐसी स्थितियों में सुधारात्मक प्रयास भी किए जाने चाहिए; इसके विपरीत, सामाजिक–आर्थिक अपराध किसी भी कुव्यवस्था के बजाय पैसे की भूख का परिणाम है। नतीजतन, इन स्थितियों में, कठोर और भयावह सजा को स्वीकार्य माना जाता है, और सुधारक पहलों को लागू नहीं किया जाता है।

संथानम समिति की रिपोर्ट, 1964
(The Santhanam Committee Report, 1964)

संथानम समिति रिपोर्ट (1964)में भारत में व्यापारियों, उद्योगपतियों, ठेकेदारों, वस्तु सप्लाई करने वाले व्यक्तियों एवं लोक अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अपराधों का विस्तृत ब्योरा दिया गया था। इस रिपोर्ट में विस्तृत जानकारी ऐसे सफेदपोश अपराधों

टिप्पणी

और अपराधियों के बारे में दी गई थी जो समकालीन भारत में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से रूढ़ आपराधिक गतिविधियों में लिप्त लोगों से भिन्न थे।

1964 में स्थापित भ्रष्टाचार पर संथानम समिति को अपने व्यापक जांच कार्य और अनुशंसित रिपोर्ट के लिए मान्यता मिली। समिति के नाम, मंत्रियों, संसद सदस्यों और राज्य विधानसभाओं का स्पष्ट रूप से हमारे समाज में सत्ता, अधिकार या विश्वास के पदों पर किसी के लिए भी उनके व्यवहार संहिता में उल्लेख किया गया था। व्यक्तिगत या पारिवारिक लाभ के लिए पद का उपयोग नहीं होना चाहिए, पार्टी, धर्म, जाति, या सामुदायिक चिंताओं से प्रेरित कोई गतिविधि नहीं होनी चाहिए, और व्यापारियों या आतिथ्य या उनसे या अन्य निजी व्यक्तियों से लिए गए उपहारों के साथ कोई अनौपचारिक व्यवहार नहीं होना चाहिए।

भारत में, 29वें विधि आयोग की रिपोर्ट ने सिफारिश की कि 1964 की संथानम समिति की रिपोर्ट पर विचार किया जाए। समिति की रिपोर्ट के अनुसार, दंड संहिता उन गतिविधियों से संतोषजनक ढंग से नहीं निबटती है, जिन्हें सामाजिक अपराध के रूप में माना जा सकता है, क्योंकि वे विशेष परिस्थितियों में किए जाते हैं और जो अब आधुनिक समाज के कुछ मजबूत हिस्सों की प्रमुख विशेषता बन गई हैं। अधिकांश ज्ञात अपराधों में दो विशेषताएं देखी जा सकती हैंः आर्थिक लाभ और अन्यायपूर्ण संवर्धन। इसने प्रस्तावित किया कि सामाजिक–आर्थिक अपराधों से निबटने के लिए आईपीसी में एक नया अध्याय जोड़ा जाए।

बाद में, 47वें विधि आयोग की रिपोर्ट में सामाजिक–आर्थिक अपराधों की एक नई समग्र श्रेणी स्थापित की गई। तीन प्राथमिक प्रकार हैं गैरकानूनी आर्थिक संचालन, अवैध वाणिज्यिक और संबंधित लेनदेन, और सार्वजनिक करों या मौद्रिक जिम्मेदारियों से बचाव। रिपोर्ट में सामाजिक–आर्थिक अपराधों की धारणा अत्यधिक महत्वपूर्ण है, और इन उल्लंघनों के प्रमुख पहलुओं का विस्तार से पता लगाया गया है।

संथानम समिति रिपोर्ट (1964) में भारत में व्यापारियों, उद्योगपतियों, ठेकेदारों, वस्तु सप्लाई करने वाले व्यक्तियों एवं लोक अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अपराधों का विस्तृत ब्योरा दिया गया था। इस रिपोर्ट में विस्तृत जानकारी ऐसे सफेदपोश अपराधों और अपराधियों के बारे में दी गई थी जो समकालीन भारत में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से रूढ़ आपराधिक गतिविधियों में लिप्त लोगों से भिन्न थे।

सफेदपोश अपराध विश्वव्यापी समस्या बन चुके हैं एवं भारत में भी ऐसे अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है। भ्रष्टाचार निवारण हेतु गठित आयोग ने सफेदपोश अपराध के व्यापक स्वरूप को रेखांकित करते हुए अभिकथन किया था कि तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति से एकाधिकार जैसे सामाजिक–आर्थिक अपराधों में वृद्धि हुई है और इसी कारण कानूनों का प्रवर्तन प्रभावी ढंग से नहीं हो पा रहा है क्योंकि वह पर्याप्त रूप से निवारक नहीं है।

टैक्स की चोरी, शेयर बाजारों तथा कंपनी प्रबंधनों में व्याप्त कदाचार, जमाखोरी, चुनाव संबंधी धांधली आदि सफेदपोश अपराध के उदाहरण हैं।

आयोग ने ऐसे अपराधों को 8 श्रेणियों में वर्गीकृत किया और उन्हें भारतीय दंड संहिता में एक अलग अध्याय के रूप में समाविष्ट किए जाने का सुझाव दिया था।

सन् 1963 में विविन बोस जांच आयोग द्वारा डालमिया जैन समूह कंपनियों के उद्योगपतियों द्वारा किए गए सफेदपोश अपराधों का पर्दाफाश किया गया और यह भी बताया गया कि किस प्रकार धोखाधड़ी, कपट, हिसाब के लेखों में हेराफेरी तथा करों की चोरी के अपराध में यह समूह लिप्त था। न्यायमूर्ति एम. सी. छागला ने भारतीय कंपनी अधिनियम के कामकाज संबंधी अपनी सन् 1960 की वार्षिक रिपोर्ट में यह उल्लेखित किया कि किस प्रकार उद्योगपति मूंदड़ा अपने अवैध कार्यकलापों से स्वयं का एक औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रयासरत था। इसके विरुद्ध 124 आपराधिक प्रकरण चल रहे थे जिनमें अधिकांश के लिए उसे दोषी माना गया। सन् 1993 में हर्षद मेहता द्वारा प्रतिभूति घोटाला किया गया इस प्रकरण में योजना आयोग के पूर्व सदस्य वी कृष्णमूर्ति तथा उनके दो पुत्रों के विरुद्ध भी आरोप पत्र दाखिल किए गए। इसी प्रकार फरवरी 1996 में केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा हवाला कांड की जांच में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं तथा बड़े सरकारी अफसरों के विरुद्ध भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी के गंभीर आरोप लगाए गए थे।

सामाजिक–आर्थिक अपराधों की विशेषताएं (Features of socio&economic offences)

मकसद : पारंपरिक अपराधों के विपरीत, अपराध करने का कार्य अत्यधिक लालच या धन की इच्छा से प्रेरित होता है।

भावना : जबकि सामान्य अपराध भावनात्मक कारणों से किए जाते हैं, इस प्रकार के अपराधों का पीड़ित और अपराधी के बीच कोई भावनात्मक आधार या संबंध नहीं होता है।

लक्षित शिकार : ज्यादातर मामलों में, पीड़ित राज्य या व्यक्तियों का समूह होता है, विशेष रूप से वे जो विशेष वस्तुओं या सेवाओं के उपभोक्ता होते हैं, शेयरधारक या अन्य संपत्ति के धारक होते हैं, और इसी तरह।

संचालन का तरीका : इस तरह के अपराध को करने के लिए प्राथमिक प्रेरक धोखा है, जबरदस्ती नहीं।

मानसिक तत्व : ऐसे अपराध आम तौर पर उद्देश्य पर किए जाते हैं।

संरक्षित हित : व्यक्तिगत सदस्यों की संपत्ति, धन या स्वास्थ्य के साथ–साथ राष्ट्रीय संसाधनों के साथ–साथ व्यापक आर्थिक प्रणाली का संरक्षण, लोगों या संगठनों द्वारा शोषण या बर्बादी से, एक सामाजिक हित है। करों और बकाया राशि, विदेशी मुद्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, और इसी तरह के नियमों को लागू करने के माध्यम से देश के धन को बढ़ाने में सामाजिक हित।

भारत में सामाजिक–आर्थिक अपराधों की श्रेणियां (Categories of socio&economic offences in India)

भारत में सामाजिक–आर्थिक अपराधों की श्रेणियों में देश के आर्थिक विकास और स्वास्थ्य को बाधित करने के लिए नियोजित की गई कार्रवाइयाँ, इनकम टैक्स चोरी, सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा पद और अधिकार का दुरुपयोग, जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार होने की सबसे अधिक संभावना है, अनुबंध के उल्लंघन और माल की डिलीवरी सहित सभी अपराध जो वादे के अनुसार आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते हैं,

कालाबाजारी और जमाखोरी से संबंधित सभी कार्रवाई, भोजन और दवा में मिलावट से संबंधित गतिविधियाँ, सरकारी संपत्ति और वित्त की हेराफेरी और चोरी, लाइसेंस, परमिट आदि की तस्करी से संबंधित गतिविधियां शामिल हैं।

टिप्पणी

सामाजिक–आर्थिक अपराधों के कारण (Causes of socio-economic offences)

औद्योगिक क्रांति : औद्योगिक क्रांति ने देश में बदलाव लाए, जिसके परिणामस्वरूप अपराध नए लोगों में स्थानांतरित हो गए।

द्वितीय विश्व युद्ध : देशों में युद्ध के बाद की स्थिति बहुत खराब थी, जिसके परिणामस्वरूप समाज के नियमित कामकाज में बदलाव आया। नतीजतन, नई प्रथाओं ने नए अपराधों को जन्म दिया।

व्यवसाय : जब देश में नई फर्मों का विकास शुरू हुआ, तो इसने उनमें तीव्र प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा की। हर कोई किसी न किसी रूप में एक–दूसरे को पछाड़ना चाहता था।

प्रौद्योगिकी : हमारे देश की वरीयता को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक प्रौद्योगिक ऐसे अपराधों के लिए भी दोषी है। प्रौद्योगिकी के उदय और वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप सर्वशक्तिमान में विश्वास में गिरावट आई है।

नैतिकता की कमी : जैसे–जैसे लोगों का अंतिम निर्णय या सभी मानवीय चीजों से परे की दुनिया का डर मिटता गया, वैसे ही उनकी नैतिकता भी फीकी पड़ गई। परिणामस्वरूप, धोखे और सांसारिक संतुष्टि के लालच और प्यास में वृद्धि हुई है।

राज्य ने चीजों को अकेला छोड़ने का विकल्प चुना, और सार्वजनिक असंतोष की अनुपस्थिति के परिणामस्वरूप गंभीर परिणाम सामने आए जो अब हमारे देश में दिखाई दे रहे हैं। हालांकि, उचित शोध और ध्यान से देश में इन अपराधों को नियंत्रित किया जा सकता है।

भारत में सामाजिक–आर्थिक अपराधों से निबटने के लिए कानून (Laws to combat socio-economic offences in India)

अपराधियों को दंडित करने के लिए सामाजिक–आर्थिक अपराधों से निबटने के लिए कई अधिनियम स्थापित किए गए थे। इसके अलावा, इन अधिनियमों का गठन वाणिज्य, अनुबंधों आदि के सामान्य संचालन को संरक्षित करने के लिए किया गया है, और उन्हें कम से कम कदाचार के साथ होने की अनुमति देने के लिए बनाया गया है। इनमें से प्रमुख अधिनियम हैं–

- औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940
- खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954
- विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947
- संपत्ति कर अधिनियम, 1957
- आयकर अधिनियम, 1961
- आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955
- सीमा शुल्क अधिनियम, 1962

टिप्पणी

- दहेज निषेध अधिनियम, 1961
- भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988

सामाजिक–आर्थिक अपराधों में आपराधिक मनःस्थिति (Mens rea in socio-economic offences)

समस्या के प्रति भारतीय दृष्टिकोण अंग्रेजी तकनीक के समान ही विसंगतियों से ग्रस्त है, क्योंकि हमारा आपराधिक कोड सामान्य कानून पर आधारित है और सामान्य कानून सिद्धांतों के साथ लगातार पूरक है। भारतीय दंड संहिता में ऐसे अपराध शामिल हैं जिनके लिए पुरुषों के किसी तत्व की आवश्यकता नहीं है (सरकार के खिलाफ युद्ध छेड़ना एक उदाहरण है)। ऐसे मामलों में भी, अदालतों ने मेन्स री सिद्धांत को अपनाया है। अधिकांश अधिनियम मानसिक लक्ष्य की परवाह किए बिना अपना ध्यान स्वयं कृत्यों पर केंद्रित करते हैं। यह एक कारण है कि कुछ लोग इसे 'अपराध' कहने से इनकार करते हैं, क्योंकि यह एक दोषी मानसिकता को दंडित नहीं करता है। इस श्रेणी के अपराधों को स्पष्ट आपराधिकता वाले लोगों से अलग करने के कई प्रयास किए गए हैं। इस तरह के प्रयास इन अपराधों को "प्रशासनिक दंड कानून" और "लोक कल्याणकारी अपराधों" के रूप में वर्गीकृत करने में परिणत हुए।

भारत जैसे बढ़ते देश में आर्थिक संसाधन प्रतिबंधों के लिए नियोजित विकास (लाइसेंस, विनियमन, दुर्लभ वस्तुओं का वितरण, आदि) प्राप्त करने के लिए कुछ सामाजिक नियमों को लागू करने की आवश्यकता है। कुछ हद तक, व्यवहार के मानदंडों को स्थापित करने के लिए सख्त जवाबदेही की आवश्यकता है। यह कारण है लोक कल्याण के लक्ष्य के लिए। क्या यह हमेशा उचित है? यह याद रखना चाहिए कि हम उत्पादक सामाजिक और आर्थिक व्यवहार के अपराधीकरण के बारे में बात कर रहे हैं।

सामान्य कानून मेन्सरी आवश्यकता सामान्य कानून का अवशेष है। इसके परिणामस्वरूप, आम कानून (जैसे सार्वजनिक उपद्रव, अदालत की अवमानना, और मानहानि) में अवधारणा का अक्सर पालन नहीं किया जाता है। इस वजह से यह फैसला जायज था।

कभी–कभी पुरुषों को सच दिखाना मुश्किल होता था, आचरण को एक उद्देश्यपूर्ण व्याख्या देना आवश्यक था क्योंकि उन्हें सामाजिक सहायता कानूनों के तहत दंडित किया गया था, इसके परिणामस्वरूप, सजा आमतौर पर कम होती है।

सामाजिक–आर्थिक अपराधों और सफेदपोश अपराध के बीच अंतर (Difference between socio-economic offences and white-collar crime)

सफेदपोश अपराध वे हैं जो किसी व्यक्ति द्वारा अपने रोजगार के दौरान किए जाते हैं जो समाज के शीर्ष वर्ग से संबंधित है। सामाजिक–आर्थिक अपराधों की तुलना में यह एक संकुचित विचार है। सफेदपोश अपराधों के उदाहरणों में बहुराष्ट्रीय निगम कर चोरी, एक प्रसिद्ध निर्माता द्वारा घटिया दवाओं की बिक्री, और इसी तरह के अपराध शामिल हैं। इन सभी अपराधों को सामाजिक–आर्थिक अपराधों के रूप में भी वर्गीकृत किया गया है। दूसरी ओर, एक सेवानिवृत्त व्यक्ति द्वारा झूठी वापसी, एक सफेदपोश अपराध नहीं माना जा सकता है जब तक कि उच्च–वर्ग समाज के सदस्य द्वारा नहीं किया जाता है। नतीजतन, सभी सफेदपोश अपराध सामाजिक–आर्थिक अपराध हो

टिप्पणी

सकते हैं, लेकिन सभी सामाजिक–आर्थिक अपराधों को सफेदपोश अपराधों के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है।

भारत में सामाजिक–आर्थिक अपराधों के लिए दृष्टिकोण (Approaches to socio-economic offences in India)

अर्थव्यवस्था और अपराध के बीच की कड़ी उलटी है, जिसका अर्थ है कि आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर अपराध की आवृत्ति अपेक्षाकृत कम होती है, लेकिन जब आर्थिक स्थिति खराब होती है, तो आपराधिकता बढ़ जाती है। आर्थिक संरचना और अपराध के बीच की कड़ी प्रत्यक्ष और सकारात्मक है; अर्थात्, आपराधिकता, नियमित आर्थिक गतिविधि के विस्तार के रूप में, आर्थिक सफलता या विफलता के साथ बढ़ती या घटती है। अपराध दर और गरीबी के बीच सह–संबंध का तात्पर्य है कि अपराध गरीब क्षेत्रों से उनकी खराब रहने की स्थिति, कठोर परिस्थितियों और संसाधनों की कमी के कारण जुड़ा हुआ है।

औद्योगीकरण और अत्यधिक उपभोक्तावाद ने अपराध की मूल धारणा को भी बदल दिया है। इसके कारण इस अवधि के दौरान सामाजिक–आर्थिक अपराध में वृद्धि हुई है। इनमें वित्तीय धोखाधड़ी, कर चोरी और जमाखोरी शामिल हैं। साथ ही अन्य प्रकार की मिलावट, 21वीं सदी के कंप्यूटर युग के दौरान, साइबर अपराधों ने सफेदपोश अपराध में नए पहलू लाए हैं। सामाजिक सुधार उपायों के अपर्याप्त निष्पादन के कारण सामाजिक कानून इन अपराधों को रोकने में सक्षम नहीं हैं। आपराधिक गतिविधि के बदलते पैटर्न ने सामाजिक–आर्थिक अपराधों से निबटने के लिए सख्त कानून को लागू करना आवश्यक बना दिया है। COFEPOSA और FERA नियम भारत में कई वर्षों से लागू हैं, लेकिन तस्करी और विदेशी मुद्रा उल्लंघनों के बारे में अपराध सूचकांक, जो भारतीय अर्थव्यवस्था को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहे हैं, में बहुत अधिक बदलाव नहीं आया है। इसलिए, आपराधिक कानून प्रवर्तन एजेंसियों को इस खतरे को रोकने के लिए कठोर कदम उठाने चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

9. कौन–से अपराध विश्वव्यापी समस्या बन चुके हैं?

   (क) सफेदपोश अपराध (ख) जेब काटना

   (ग) चीजें चुराना (घ) खाना चुराना

10. विविन बोस जांच आयोग द्वारा डालमिया जैन समूह कंपनियों के उद्योगपतियों द्वारा किए गए सफेदपोश अपराधों का पर्दाफाश कब किया गया?

    (क) 1960 में (ख) 1961 में

    (ग) 1962 में (घ) 1963 में

2.7 दंड के सिद्धांत

अपराधियों को दंडित करना सदियों से सभी सभ्य राज्यों का एक मान्यता प्राप्त कार्य है। लेकिन आधुनिक समाज के बदलते पैटर्न के साथ, दंड के प्रति दंडशास्त्रियों के

टिप्पणी

दृष्टिकोण में भी आमूल–चूल परिवर्तन आया है। पेनोलॉजिस्ट आज दंड के अंत और पैनल नीति में इसके स्थान के रूप में महत्वपूर्ण समस्या से चिंतित हैं।

यद्यपि सदियों पुराने परंपरावाद से लेकर हाल के आधुनिकतावाद तक अपराधियों की दण्ड के संबंध में राय हमेशा भिन्न रही है। मोटे तौर पर चार प्रकार के विचारों को स्पष्ट रूप से प्रचलित पाया जा सकता है। आधुनिक पेनोलॉजिस्ट उन्हें 'दंड के सिद्धांत' कहना पसंद करते हैं। हालाँकि, इन सिद्धांतों के बीच सीमांकन की रेखा इस प्रकार है कि उन्हें एक–दूसरे से पूरी तरह से अलग नहीं किया जा सकता है।

18वीं शताब्दी के उपयोगितावाद ने एक सामाजिक नीति तैयार की जिसने इंग्लैंड में पैनल सुधारों और कानून बनाने के लिए एक खाका प्रदान किया। उस अवधि के दौरान निर्धारित दंड के प्रमुख सिद्धांत प्रतिशोध के सिद्धांत को छोड़कर आज भी प्रासंगिक हैं, जो आधुनिक दंड कार्यक्रमों में पूरी तरह से खारिज कर दिया गया है। ये सिद्धांत इस प्रकार हैं:

2.7.1 प्रतिशोधात्मक सिद्धांत

जहां निवारक सिद्धांत ने दंड को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने का एक साधन माना, वहीं प्रतिशोधात्मक सिद्धांत ने इसे अपने आप में एक अंत के रूप में माना। यह अनिवार्य रूप से प्रतिशोधात्मक न्याय पर आधारित था जो यह सुझाव देता है कि परिणामों की परवाह किए बिना बुराई को बुराई के लिए वापस किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के समर्थकों ने दंड को लोक कल्याण के साधन के रूप में नहीं माना। इसलिए सिद्धांत ने प्रतिशोध या प्रतिशोध के विचार को रेखांकित किया। इस प्रकार, अपराधी को दण्ड के रूप में दिया जाने वाला दर्द उसके द्वारा अपराध से प्राप्त आनंद से अधिक था। दूसरे शब्दों में, प्रतिशोधात्मक सिद्धांत ने सुझाव दिया कि दंड अपराधी के आपराधिक कृत्य के लिए समाज की अस्वीकृति की अभिव्यक्ति है।

प्रतिशोध के सिद्धांत का समर्थन करते हुए इमानुएल कांट ने देखा– "न्यायिक दंड का उपयोग कभी भी अपराधी या नागरिक समाज के लिए किसी अन्य अच्छे को बढ़ावा देने के साधन के रूप में नहीं किया जा सकता है, इसके बजाय, सभी मामलों में इसे केवल इस आधार पर लगाया जाना चाहिए कि उसने अपराध किया है; एक इंसान के लिए किसी और के उद्देश्यों के साधन के रूप में कभी भी हेरफेर नहीं किया जा सकता है।"

उनके अनुसार, दण्ड अपने आप में एक अंत है, इसलिए, प्रतिशोध एक प्राकृतिक औचित्य है क्योंकि समाज सोचता है कि एक बुरे आदमी को अनिवार्य रूप से दंडित किया जाना चाहिए और अच्छे को पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

प्रतिशोधात्मक सिद्धांत पर टिप्पणी करते हुए सर वाल्टर ने सामूहिक रूप से कहा कि प्रतिशोध का सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि दंड न्याय के सामान्य सिद्धांत का एक विशेष अनुप्रयोग है, कि पुरुषों को उनका हक दिया जाना चाहिए। दण्ड धर्मी आक्रोश को व्यक्त करने और संतुष्ट करने का कार्य करता है जिसे एक स्वस्थ दिमाग वाला समुदाय अपराध मानता है। जैसे, यह कभी–कभी अपने आप में एक अंत होता है।

टिप्पणी

यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि प्रतिशोध के सिद्धांत की उत्पत्ति किसी व्यक्ति या समूह की क्रूड पशु प्रवृत्ति में हुई है जब चोट लगने पर प्रतिशोध किया जाता है। हालाँकि, आधुनिक दृष्टिकोण इस विवाद का समर्थन नहीं करता है क्योंकि यह न तो बुद्धिमान है और न ही वांछनीय। इसके विपरीत, इसे आम तौर पर अपराधी के प्रति प्रतिशोधी दृष्टिकोण के रूप में निंदा किया जाता है।

प्रतिशोधात्मक सिद्धांत प्रायश्चित की धारणा के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है जिसका अर्थ है उचित दंड भुगतकर अपराध को मिटा देना। यह विचार है जो अपराध के गणितीय समीकरण को रेखांकित करता है, अर्थात् अपराध और दंड निर्दोषता के बराबर है।

अधिकांश पेनोलॉजिस्ट इस तर्क को मानने से इनकार करते हैं कि अपराधियों को उनके बकाया का भुगतान करने की दृष्टि से दंडित किया जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि जैसे ही अपराधी अपनी दण्ड की अवधि पूरी करता है, वह सोचता है कि उसका अपराध धुल गया है और वह फिर से अपराध करने के लिए स्वतंत्र है।

हेगल ने प्रतिशोध के सिद्धांत का विरोध किया और देखा कि यह एक चोट के लिए प्रतिशोध की अभिव्यक्ति है। उसे उद्धृत करने के लिए, उसने कहा, "तुमने मुझे चोट पहुँचाई तो मैं तुम्हें चोट पहुँचाऊँगा। वास्तव में प्रतिशोध का यही शाब्दिक अर्थ है। और अगर मैं खुद आपको चोट नहीं पहुँचा सकता, तो मैं माँग करता हूँ, कि आप दूसरों से आहत हों। अपराधी को पीड़ित करने की इच्छा, इसलिए नहीं कि इसकी आवश्यकता है, ताकि अपराध–बोध मिट जाए, इसलिए भी नहीं कि पीड़ा उसे भविष्य के अपराध से रोक सकती है, बल्कि केवल इसलिए कि वह पीड़ित होने का पात्र है, प्रतिशोध का सार है।

यह कहा जाना चाहिए कि सर जेम्स स्टीफन ने इस आधार पर प्रतिशोध के सिद्धांत का बचाव किया कि "अपराधियों से नफरत की जानी चाहिए और दण्ड को इस तरह से चित्रित किया जाना चाहिए कि उस घृणा को अभिव्यक्ति दी जा सके, और एक स्वस्थ प्राकृतिक भावना को संतुष्ट करके उचित ठहराया जा सके।"

हालाँकि, आधुनिक तकनीक प्रतिशोध को प्रतिशोध के अर्थ में त्याग देती है, लेकिन प्रतिशोध के अर्थ में यह हमेशा किसी भी प्रकार के दण्ड में एक आवश्यक तत्व होना चाहिए।

2.7.2 निवारक सिद्धांत

दण्ड के पहले के तरीके, प्रकृति में बड़े निवारक थे। अपराधियों को अपराध करने से रोकने की दृष्टि से कठोर दंड देने का प्रावधान है।

जेरेमी बेंथम के सिद्धांत के संस्थापक, सुखवाद के सिद्धांत पर दंड निर्धारित करने के अपने सिद्धांत पर आधारित थे, जिसमें कहा गया था कि एक व्यक्ति को अपराध करने से रोका जा सकता है, यदि लागू किया गया दण्ड तेज, निश्चित और गंभीर हो। यह सिद्धांत दण्ड को एक बुराई के रूप में मानता है लेकिन समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए दंड आवश्यक है।

निवारक सिद्धांत अपराधियों को पर्याप्त दंड और अनुकरणीय दंड प्रदान करके दूसरों के मन में किसी प्रकार का भय पैदा करने का प्रयास करता है जो उन्हें अपराध

से दूर रखता है। इस प्रकार दंडात्मक अनुशासन की कठोरता अपराधियों के साथ–साथ अन्य लोगों के लिए भी पर्याप्त चेतावनी के रूप में कार्य करती है। इसलिए, निवारण निस्संदेह प्रभावी नीतियों में से एक है जिसे लगभग हर दंड प्रणाली इस तथ्य के बावजूद स्वीकार करती है कि यह अपने व्यावहारिक अनुप्रयोग में हमेशा विफल रहती है। कठोर अपराधियों के मामले में विशेष रूप से दंड के उपाय के रूप में प्रतिरोध विफल हो जाता है क्योंकि दण्ड की गंभीरता का उन पर शायद ही कोई प्रभाव पड़ता है। यह सामान्य अपराधियों को रोकने में भी विफल रहता है क्योंकि बिना किसी पूर्व इरादे या योजना के कई अपराध पल भर में किए जाते हैं। निवारक दंड की निरर्थकता इस तथ्य से प्रकट होती है कि बड़ी संख्या में कठोर अपराधी अपनी रिहाई के तुरंत बाद जेल लौट जाते हैं। वे समाज में एक स्वतंत्र जीवन जीने के बजाय जेल में रहना पसंद करते हैं। इस प्रकार, निवारक दंड का उद्देश्य निर्विवाद रूप से पराजित होता है। इस दृष्टिकोण को इस तथ्य से समर्थन मिलता है कि जब सार्वजनिक स्थानों पर व्यक्ति को फांसी पर लटकाकर मौत का दण्ड दिया जा रहा था, तो कई लोगों ने भयानक दृश्य के बावजूद उन भीड़–भाड़ वाली सभाओं में जेब–काटने, चोरी, हमला या यहां तक कि हत्या के अपराध किए।

यह कहने के लिए पर्याप्त है कि निवारक दंड से संबंधित सिद्धांत अपराध और आपराधिक उत्तरदायित्व के आदिम सिद्धांतों के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। पहले के समय में, अपराध को अपराधी की 'दुष्ट आत्मा' या 'स्वतंत्र इच्छा' के प्रभाव के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता था। इसलिए समाज ने अपराधी के लिए स्वैच्छिक विकृति के कार्य के लिए कठोर और निवारक दंड को प्राथमिकता दी, जिसे भगवान या धर्म के लिए एक चुनौती माना जाता था।

दण्ड बुराई करने वालों के लिए एक आतंक और अन्य सभी लोगों के लिए जो उनकी नकल करने के लिए प्रलोभित हो सकते हैं एक भयानक चेतावनी होना चाहिए। इस तर्क को बेंथम के अवलोकन में समर्थन मिलता है, जिन्होंने कहा–

"सामान्य रोकथाम दण्ड का मुख्य अंत होना चाहिए। एक अदंडित अपराध का मार्ग न केवल उसी अपराधी के लिए, बल्कि उन सभी के लिए भी खुला छोड़ देता है जिनके पास इसमें प्रवेश करने के लिए कुछ उद्देश्य और अवसर हो सकते हैं। हम देखते हैं कि व्यक्ति को दिया गया दण्ड सभी के लिए सुरक्षा का स्रोत बन जाता है। दण्ड को एक दोषी व्यक्ति के खिलाफ क्रोध या प्रतिशोध के कार्य के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, जिसने शरारती प्रवृत्तियों को रास्ता दिया है, बल्कि समाज के लिए एक अनिवार्य बलिदान के रूप में माना जाना चाहिए।

हालांकि, बेंथम का मानना था कि पुनर्वास की प्रक्रिया द्वारा अपराधियों को सुधार के लिए एक अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से, उनके सिद्धांत को अग्रगामी माना जा सकता है क्योंकि उन का सिद्धांत किये गए गलत कार्य, जो कि एक अतीत होने के कारण बदला नहीं जा सकता, के बजाय दंड के परिणामों से अधिक संबंधित था।

2.7.3 सुधारात्मक सिद्धांत

समय बीतने के साथ, आपराधिक विज्ञान के क्षेत्र में विकास आपराधिक सोच में आमूल–चूल परिवर्तन लाया। इसमें अपराध और अपराधियों की समस्या के लिए एक

नया दृष्टिकोण था। अपराधियों के सुधार के लिए व्यक्तिगत उपचार मौलिक सिद्धांत बन गया। इस विचार को दण्ड के सुधारवादी सिद्धांत में अभिव्यक्ति मिली।

टिप्पणी

निवारक प्रतिशोधात्मक और निवारक न्याय के विपरीत, दण्ड के लिए सुधारात्मक दृष्टिकोण अपराधी के दृष्टिकोण में बदलाव लाना चाहता है ताकि उसे समाज के कानून का पालन करने वाले सदस्य के रूप में पुनर्वासित किया जा सके। दंड का उपयोग अपराधी को सुधारने के उपाय के रूप में किया जाता है न कि उसे प्रताड़ित करने या परेशान करने के लिए। सुधारवादी सिद्धांत सभी प्रकार के शारीरिक दंडों की निंदा करता है। सुधारवादी आंदोलन का प्रमुख बल दंड–सुधारात्मक संस्थानों में कैदियों के पुनर्वास पर है ताकि वे कानून का पालन करने वाले नागरिकों में बदल सकें। इन सुधारक संस्थानों में या तो अधिकतम या न्यूनतम सुरक्षा व्यवस्था होती है। सुधारवादी जेल संस्थानों के अंदर कैदियों के साथ मानवीय व्यवहार की वकालत करते हैं। उनका यह भी सुझाव है कि संस्था से मुक्त होने के बाद कैदियों को समाज में मुक्त जीवन के लिए खुद को समायोजित करने के लिए उचित रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। पैरोल और परिवीक्षा जैसी एजेंसियों को सुधारित व्यक्तियों के रूप में समाज में अपराधियों को सुधारने के सर्वोत्तम उपायों के रूप में अनुशंसित किया जाता है।

दंडशास्त्र के सुधारात्मक दृष्टिकोण से पता चलता है कि दंड केवल तभी न्यायसंगत है जब वह भविष्य को देखता है न कि अतीत को। इसे एक पुराने खाते को निबटाने के रूप में नहीं बल्कि एक नया खाता खोलने के रूप में माना जाना चाहिए"। इस प्रकार, इस दृष्टिकोण के समर्थक न केवल अपराधियों को अलग–थलग करने और उन्हें समाज से समाप्त करने के उद्देश्य से जेल में बंद होने को उचित ठहराते हैं, बल्कि उनकी दण्ड की अवधि के दौरान सुधार के प्रभावी उपायों के माध्यम से उनके मानसिक दृष्टिकोण में बदलाव लाते हैं।

निःसंदेह, आधुनिक पेनोलॉजिस्ट सुधारात्मक न्याय में अपने विश्वास की पुष्टि करते हैं, लेकिन वे दृढ़ता से महसूस करते हैं कि इसे बहुत दूर तक नहीं बढ़ाया जाना चाहिए। सुधारात्मक तरीके किशोर अपराधियों, महिलाओं और पहले अपराधियों के मामलों में उपयोगी साबित हुए हैं। सेक्स मनोरोगी भी दण्ड के व्यक्तिगत उपचार मॉडल के अनुकूल प्रतिक्रिया देते हैं। हालाँकि, पुनरावर्ती और कठोर अपराधी सुधारवादी विचारधारा के अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं देते हैं। यही कारण है कि सैल्मन ने देखा है कि हालांकि निवारक के लिए सुधार का सामान्य प्रतिस्थापन विनाशकारी लग सकता है, यह कुछ मामलों में विशेष रूप से असामान्य और पतित लोगों के लिए आवश्यक है जिन्होंने जिम्मेदारी कम कर दी है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि दण्ड को अपने आप में एक अंत के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, बल्कि केवल एक साधन के रूप में, सामाजिक सुरक्षा और समाज में अपराधी के पुनर्वास के अंत के रूप में माना जाना चाहिए।

कुछ दण्ड शास्त्रियों ने व्यक्तिगत उपचार मॉडल में अंतर्निहित 'पुनर्वास आदर्श' या 'सुधारवादी विचारधारा' की निंदा की है क्योंकि व्यवहार में वे प्रतिशोध या निरोध से अधिक दंडात्मक, अन्यायपूर्ण और अमानवीय हैं। रूस और फ्रांस में जेल की स्थिति

के बारे में लिखते हुए, पीटर क्रोपोटकिन ने कहा, "जेल को पुनर्वास के संबंध में हमारे पाखंड के प्रतीक, विचलन के लिए हमारी असहिष्णुता या गरीबी, भेदभाव, बेरोजगारी, अज्ञानता, अति–भीड़ आदि जैसे अपराध के मूल कारणों से निबटने से हमारे इनकार के रूप में देखा जाता है।

फिर भी एक और तर्क जो अक्सर सुधारात्मक उपचार के खिलाफ दिया जाता है, वह यह है कि इसमें किसी प्रकार के दर्द के संदर्भ में कोई दंड शामिल नहीं है और इसलिए, इसे सही अर्थों में दंड के रूप में नहीं माना जा सकता है। लेकिन यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यद्यपि सुधारात्मक उपचार में परोपकारी न्याय शामिल है, फिर भी अपराधी को जेल या किसी अन्य सुधारात्मक संस्था में उसके सुधार या पुनर्समायोजन के लिए हिरासत में रखना अपने आप में मानसिक पीड़ा के कारण एक दंड है जो वह अपनी स्वतंत्रता से वंचित होने की अवधि के दौरान झेलता है, जिस अवधि में वह इतना संस्थागत है। इसलिए, यह सोचना गलत है कि सुधार के लिए संस्थागत हिरासत दंड का एक रूप नहीं है। वास्तव में, निगरानी और निकट पर्यवेक्षण स्वयं दंडात्मक है, हालांकि इसमें कोई शारीरिक दर्द या पीड़ा शामिल नहीं है।

एक अमेरिकी अध्ययन के लेखकों ने भी सुधारवादी विचारधारा की आलोचना करते हुए कहा कि, इसने अपने अधिक शक्तिशाली अनुयायियों में से अधिकांश से दिखावटी सेवा से अधिक सराहना कभी नहीं की। पुनर्वास के आदर्श को अपनाने वाले जेल प्रशासकों ने ऐसा इसलिए किया है क्योंकि इससे कैदियों पर उनकी शक्ति में वृद्धि हुई है।

यह एक ज्ञात तथ्य है कि दंड हमेशा अपने साथ एक कलंक लेकर आता है, क्योंकि यह व्यक्ति की सामान्य स्वतंत्रता को प्रभावित करता है। यह सामाजिक नियंत्रण हासिल करने के लिए कानून प्रवर्तन का एक अभिन्न अंग बन गया है। आदतन कानून तोड़ने वालों के लिए सजा अनिवार्य है। पुनरावर्तों में अपराध को दोहराने की प्रवृत्ति समाज के स्वीकृत मानदंडों की पुष्टि करने में उनकी अक्षमता के कारण है। अन्वेषित शोधों से पता चलता है कि अपराधियों की मानसिक दुर्बलता ही उन्हें अपराधी बनाती है और इसलिए ऐसे अपराधियों के सुधार के लिए नैदानिक उपचार की एक प्रणाली अपरिहार्य लगती है। हालांकि, इस उद्देश्य के लिए उम्र, लिंग, अपराध की गंभीरता और मानसिक स्थिति के आधार पर अपराधियों को विभाजित करने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य को विभिन्न श्रेणियों में अपराधियों के वैज्ञानिक वर्गीकरण द्वारा प्राप्त किया जाता है जैसे कि पहले अपराधी, आदतन अपराधी, पुनरावर्ती, किशोर अपराधी, पागल अपराधी, यौन मनोरोगी, आदि। सही दृष्टिकोण यह होगा कि दंड को एक प्रकार की सामाजिक सर्जरी के रूप में माना जाए चूंकि अपराधी अनिवार्य रूप से समाज के हितों के बीच संघर्ष का एक उत्पाद है।

2.7.4 दण्ड की निरर्थकता और लागत

आधुनिक पैनल प्रणालियों की पर्याप्तता का आकलन करने के लिए यह आवश्यक है कि प्राचीन काल से ही दंड की उत्पत्ति और विकास को सिद्ध किया जाए।

प्रारंभिक समाजों में सजा का आधार प्रतिशोध था, इसे रोकने के लिए स्पष्ट रूप से कमजोरों का मजबूत द्वारा शोषण किया गया जिसके परिणामस्वरूप पूर्ण

अराजकता हुई। जीवन और संपत्ति सबसे असुरक्षित थे और हमेशा खतरों के संपर्क में थे। कई बार पीड़ित या उसके कबीले के परिवार के सदस्य भी अपराधी या उसके परिवार के साथ विवाद सुलझा लेते हैं।

टिप्पणी

संपत्ति के नुकसान के मामलों को आम तौर पर अपराधी द्वारा घायलों को मुआवजे का भुगतान करके सुलझाया जाता था। इस उपाय का उपयोग वास्तव में व्यक्तिगत चोटों के लिए किया जाता था। सभ्यता की प्रगति के साथ, लोगों के बीच आपसी अधिकारों और कर्तव्यों के लिए सम्मान का विकास हुआ, जिसके कारण अंततः कानून का विकास हुआ, राज्य अस्तित्व में आया और उसने समुदाय में कानून और व्यवस्था बनाए रखने का कार्य अपने हाथों में ले लिया। राज्य ने पीड़ितों की शिकायतों का निवारण करने की भी मांग की, जो अपराधियों के गलत कार्य से घायल हुए थे। शुरुआती दिनों में सजा के लोकप्रिय तरीके गैरकानूनी थे। इस पद्धति ने समुदाय के भीतर कानून और व्यवस्था बनाए रखने में एक प्रभावी निवारक के रूप में काम किया।

मध्यकाल

मानव सभ्यता के इतिहास में मध्यकालीन काल में पश्चिमी दुनिया में धार्मिक प्रभुत्व का युग देखा गया। धर्म के कृत्यों का न्याय प्रशासन पर बहुत प्रभाव पड़ा और अपराध की पहचान पाप से होने लगी और हिंसा से घृणा होने लगी। अपराधियों के अपराध को तपस्या, पछतावे या प्रायश्चित से धोया जा सकता है जो अपने आप में उसके गलत को कम करने के लिए पर्याप्त सजा थी। इसने अंततः अपराधियों को अलग–थलग करके एकांत कारावास को तपस्या के साधन के रूप में विकसित किया।

प्रायश्चित के सिद्धांत की आलोचना करते हुए, खोज लियो पेज ने देखा कि, "सिद्धांत न केवल गलत है बल्कि सक्रिय रूप से रहस्यमय है क्योंकि इसका मतलब नैतिक अपराध की अपेक्षा करने के लिए दर्द की डिग्री निर्धारित करने के लिए अदालत पर एक कर्तव्य लागू करना होगा।"

सजा का युक्तिकरण

प्रायश्चित के सिद्धांत ने दंड की सटीक मात्रा के निर्धारण में व्यावहारिक कठिनाइयों को प्रस्तुत किया जो अपराधियों के नैतिक अपराध को धोने के लिए पर्याप्त होगा। इसके अलावा इसका मतलब न्यायाधीश को एक ऐसा कार्य सौंपना भी था जिसे किसी भी मानवीय एजेंसी द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता है।

सामाजिक विषयों में विज्ञान और ज्ञान की प्रगति के साथ, पूरे यूरोपीय महाद्वीप में पुनर्जागरण और सुधार की लहर चल रही है। इसने आपराधिक न्याय के प्रशासन में आमूल–चूल परिवर्तन लाए। अपराध और अपराधियों के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने निस्संदेह दिखाया है कि यातनापूर्ण सजा समाज के प्रति अधिक खतरनाक और आक्रामक हो जाती है। वैकल्पिक रूप से उनके गठन की विधि के माध्यम से उनका पुनर्वास अधिक उपयोगी माना जाता है।

फिर भी सजा को युक्तिसंगत बनाने की आवश्यकता का एक अन्य कारण वह संपादक था जिसने व्यक्तियों की स्थितियों का मूल्यांकन किया था जो जेल अधिकारियों

के सामने कई समस्याओं को पोस्ट करता है। मध्यकाल के दौरान स्थिति बहुत खराब थी और कैदी वस्तुतः पृथ्वी पर नर्क का जीवन जी रहे थे। अपराधियों को पीड़ा पहुँचाने के लिए दण्ड का प्रयोग किया जाता था।

टिप्पणी

आधुनिक पेनोलॉजी

विशेष रूप से पेनोलॉजी के क्षेत्र में नए तकनीकी विकास के साथ, यह आम तौर पर स्वीकार किया गया है कि दंड अपराध की गंभीरता के अनुपात में होना चाहिए। यह आगे सुझाव दिया गया है कि समाज से निष्कासन के बजाय अपराधी का गठन उसके पुनर्वास के लिए अधिक उद्देश्यपूर्ण है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आधुनिक कलम विज्ञानी ने उपचार विधियों के माध्यम से अपराधी के वैयक्तिकरण पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। आज, पुराने बर्बर तरीकों जैसे कि अंग–भंग, फांसी, जलाना, पत्थरबाजी, अपराधी को भूखा मारना आदि को पूरी तरह से त्याग दिया गया है।

आम तौर पर यह माना गया है कि सजा का उद्देश्य अपराधी को अपराध के परिणामों के बारे में बताना है। इसमें एक संदेश होना चाहिए कि अपराधी को उसके अपराध की प्रतिक्रिया के रूप में दंडित किया जा रहा है। सजा का प्रभाव अपराधी को कानून का पालन करने वाले नागरिक के रूप में समाज में बहाल करने का होना चाहिए।

संक्षेप में कहा जाए तो अब यह सर्वविदित है कि अपराध की रोकथाम और समाज की सुरक्षा सजा का मुख्य उद्देश्य है। इसलिए यह इस प्रकार है कि सजा का कोई भी सिद्धांत वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगा।

एक आदर्श पैनल नीति को किशोरों के मामले में पुनः गठन का सहारा लेना चाहिए। यही कारण है कि आधुनिक विशेषज्ञ दंड के पारंपरिक तरीकों के बजाय अपराधी के इलाज के संस्थागत तरीकों पर अधिक जोर देते हैं जो अब अप्रचलित और पुराने हो गए हैं। दंड व्यवस्था को इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि अपराधियों को कम से कम पीड़ा हो और साथ ही नागरिकों के बीच सामाजिक नैतिकता और सामाजिक अनुशासन का विकास हो।

यह महसूस किया जाना चाहिए कि दंड नीति शून्य में मौजूद नहीं है। एक सुसंगत विश्लेषण के उद्देश्य के लिए, किसी भी दंडात्मक नीति को उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भ में तैयार किया जाना चाहिए। समकालीन समाजों में अपराध को परिभाषित करने और उससे निबटने के तरीके पर ये ताकतें प्रमुख प्रभाव डालती हैं। इसलिए, आपराधिक न्याय के क्षेत्र में विकासशील प्रवृत्तियों के अनुरूप दंड नीति को बनाए रखने के लिए अपराधों और अपराधियों से निबटने के लिए वैकल्पिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

हाल ही में, प्रगतिशील देशों के दंडात्मक कार्यक्रमों में व्यापक परिवर्तन हुआ है, लेकिन अभी भी अपराधियों की कुछ अभिव्यक्तियों जैसे कि अपराधियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण, दंडात्मक संस्थानों की कार्यप्रणाली और प्रभावशीलता में गहन अंतर्दृष्टि की अधिक आवश्यकता है। सजा और उपचार के अन्य तरीकों के मामले में अपराध विज्ञान और कानून के प्रभाव को दंडात्मक न्याय और अपराधियों के मानवीय उपचार की प्रभावी

टिप्पणी

प्राप्ति के लिए मजबूत किया जाना चाहिए। यह मौलिक मानवाधिकारों में विश्वास की पुष्टि करने और मानव की गरिमा और मूल्य को महसूस करने से संभव है।

एक प्रभावी आपराधिक न्याय प्रणाली में यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि अपराधियों में निहित आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाकर समाज को अपराधियों के खिलाफ संरक्षित किया जाए। यह एक दंडात्मक नीति अपनाकर प्राप्त किया जा सकता है जो उचित दंड लगाता है। दंडात्मक न्याय के इस पहलू पर जोर देते हुए, अंकुश मारुति शिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 2009 SC 2609 में सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि, "सजा प्रणाली को बनाए रखने में, कानून को सुधारात्मक तंत्र या तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर अंतर को अपनाना चाहिए। सामाजिक व्यवस्था पर इसके प्रभाव पर विचार किए बिना सजा को लागू करना वास्तव में निरर्थक अभ्यास हो सकता है इसलिए प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि अपराध की प्रकृति और जिस तरह से वह किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे।"

कुछ पेनोलॉजिस्टों ने सुझाव दिया है कि अपराध के लिए दंडात्मक प्रतिक्रिया भिन्न होती है और उस चरण के अनुसार उतार–चढ़ाव होता है जिसके माध्यम से एक विशेष समाज या राष्ट्र गुजर रहा है। उदाहरण के लिए, क्रांति या युद्ध की अवधि के दौरान सजा के रूप में मौत की सजा, निर्वासन, एकान्त कारावास, संपत्ति की जब्ती आदि का व्यापक रूप से उपयोग किया जा सकता है, लेकिन शांति की अवधि में इसे उचित नहीं ठहराया जा सकता है। भारतीय संदर्भ में, आतंकवादी हमलों की घटनाओं में निरंतर वृद्धि के साथ, आतंकवादी के लिए मौत की सजा पूरी तरह से उचित हो सकती है, हालांकि इसे "दुर्लभ से दुर्लभ मामलों" में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इसी तरह, सभी स्तरों पर व्यापक भ्रष्टाचार, विशेष रूप से उच्च स्थान वाले नौकरशाहों, राजनेताओं, निगमों आदि के बीच लाखों रुपये का जुर्माना, गलत तरीके से अर्जित धन की जब्ती के साथ, कारावास बहिष्कार के विकल्प के बजाय अधिक उपयुक्त होगा। इससे अपराधी अधिक प्रभावी होंगे।

देश में प्रचलित आपराधिक न्याय प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए, भारत के मुख्य न्यायाधीश ने राष्ट्रीय कानूनी सेवा दिवस के अवसर पर बोलते हुए कहा कि न्याय को सुलभ बनाने के प्रयासों के बावजूद आम आदमी के लिए अभी भी यह एक निंदनीय चेहरा है। अपने विचारों का समर्थन करते हुए, न्यायमूर्ति जीएस सिंघवी ने कानूनी बिरादरी को अपने संबोधन में कहा कि अब मौसम पर विचार करने का समय है। 65 वर्षों में हम लोगों को न्याय प्रदान करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम हैं और क्या हमने ऐसा माहौल बनाया है जहां सभी को समानता हो लोगों के लिए अवसर हों।

उनके अनुसार, "देश में लाखों लोगों के लिए न्याय अभी भी एक भ्रम था और यह बहुसंख्यक आबादी के लिए सुलभ नहीं है।" अपराध के पीड़ितों की व्यथा अदालतों और कानून के निर्णायकों की प्राथमिकता सूची में होनी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

11. अपराधियों को दंडित करना सदियों से सभी सभ्य राज्यों का कैसा कार्य है?
    (क) मान्यता प्राप्त (ख) अनावश्यक
    (ग) मनचाहा (घ) इनमें से कोई नहीं
12. यह किसका मानना था कि पुनर्वास की प्रक्रिया द्वारा अपराधियों को सुधार के लिए एक अवसर प्रदान किया जाना चाहिए?
    (क) जेम्स स्टीफन का (ख) बेंथम का
    (ग) हेगल का (घ) सर वाल्टर का

2.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (घ)
4. (ग)
5. (क)
6. (क)
7. (ख)
8. (घ)
9. (क)
10. (घ)
11. (क)
12. (ख)

2.9 सारांश

सामान्यतया, एक संगठित अपराध एक ऐसा कार्य है जो दो या दो से अधिक अपराधियों द्वारा एक संयुक्त उद्यम के रूप में एक संगठित तरीके से किया जाता है। यह एक अवैध कार्य है जो एक गैरकानूनी संघ के सदस्य अपने पारस्परिक सहयोग और साहसिक प्रयास के साथ करते हैं। डॉक्टर वॉल्टर रैकलेस संगठित अपराध को एक गैरकानूनी दुस्साहस के रूप में परिभाषित करते हैं जो एक मालिक, उसके सहयोगियों और प्रचालकों द्वारा किया जाता है जो एक विशिष्ट अवधि के लिए एक पदानुक्रमित संरचना बनाते हैं।

सेलिन के अनुसार, "संगठित अपराध उन आर्थिक कारनामों या उद्यमों से मिलता–जुलता है जो अवैध गतिविधियों को करने के लिए आयोजित किए जाते हैं"।

टिप्पणी

उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि "संगठित अपराध अवैध गतिविधियों के संचालन के उद्देश्य से आयोजित आर्थिक उद्यमों का पर्याय है और जब वे वैध उद्यम संचालित करते हैं, तो अवैध तरीकों से ऐसा करते हैं।" इस तरह की गतिविधियों का उद्देश्य अवैध तरीकों से भारी मुनाफा कमाना है। हालाँकि, मुनाफे का सबसे बड़ा हिस्सा, पूरे अन्यायपूर्ण उद्यम के प्रबंधक और किंगपिन के पास जाता है, जैसे, वेश्यावृत्ति, तस्करी, बूटलेगिंग, जुआ, रैकेटियरिंग आदि।

यद्यपि महिलाएं सामान्य अपराधों जैसे कि हत्या, डकैती, धोखाधड़ी आदि की शिकार हो सकती हैं, केवल वे अपराध जो विशेष रूप से महिलाओं के खिलाफ होते हैं, उन्हें 'महिलाओं के खिलाफ अपराध' के रूप में जाना जाता है। इन अपराधों से प्रभावी ढंग से निबटने के लिए विभिन्न नए कानून लाए गए हैं और मौजूदा कानूनों में संशोधन किए गए हैं।

संयुक्त राष्ट्र महिलाओं के खिलाफ हिंसा को "लिंग आधारित हिंसा के किसी भी कार्य के रूप में परिभाषित करता है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं को शारीरिक, यौन या मनोवैज्ञानिक नुकसान या पीड़ा होती है, जिसमें ऐसे कृत्यों की धमकी, जबरदस्ती या स्वतंत्रता के मनमाने ढंग से वंचित होना शामिल है। चाहे सार्वजनिक या निजी जीवन में घटित हो रहा हो।" बलात्कार की परिभाषा समय और स्थान जैसे कारकों के अनुसार भिन्न होती है, हालांकि बलात्कार को एक ऐसे अपराध के रूप में मान्यता दी जाती है जो आम तौर पर एक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को अपनी इच्छा के विरुद्ध संभोग करने के लिए मजबूर किया जाता है, बल द्वारा संभोग। भले ही केवल पुरुष ही बलात्कार नहीं करते हैं, बलात्कार हमेशा यौन संतुष्टि की तीव्र या जुनूनी इच्छा का परिणाम नहीं होता है, लेकिन ज्यादातर पुरुष यौन हिंसा या बलात्कार को महिलाओं पर अपने नियंत्रण का प्रयोग करने के तरीके के रूप में सत्ता की स्थिति बनाए रखने के लिए करते हैं। . विशेष रूप से पितृसत्तात्मक समाज में शक्ति और क्रोध के संयोजन से प्रेरित पुरुष महिलाओं पर यौन हिंसा करके अपनी मर्दानगी साबित करते हैं।

बच्चों के संदर्भ में, यौन हमले को गंभीर यौन हमला और अनाचार के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। 'गंभीर यौन हमला' में मौखिक सेक्स और गुदा मैथुन के साथ–साथ बच्चों को अश्लील फिल्मों के लिए पोज देने, बच्चों को एक–दूसरे के साथ यौन संबंध बनाने और जानबूझकर बच्चे के यौन अंगों को चोट पहुंचाने जैसे अपराध शामिल हैं। 'यौन हमले' में बच्चों को अश्लील तस्वीरें दिखाना शामिल है।

यौन अपराधों के खिलाफ बच्चों को व्यापक सुरक्षा प्रदान करने के लिए, यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम, 2012 पेश किया गया था। यह अधिनियम पेनो–योनि पैठ के अलावा अन्य प्रवेश को अपराध के रूप में मान्यता देता है और बच्चों के खिलाफ अनैतिकता के कार्य को अपराधी बनाता है। कानून को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न प्रक्रियात्मक अनुपालनों की प्रक्रिया को संशोधित किया गया है।

विगत सदी के सूचना प्रौद्योगिकी तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास ने कंप्यूटर जनित अपराधों का एक नया वर्ग जिसे साइबर अपराध के नाम से जाना जाता है वैश्विक स्तर पर स्थापित कर दिया है। विश्व एवं भारत में ऐसे अपराधों की संख्या

निरंतर बढ़ती जा रही है और ये अपराध विधि प्रवर्तन संस्थाओं के समक्ष नई–नई चुनौतियों के रूप में उभर कर सामने आ रहे हैं। साइबर अपराधों की सबसे बड़ी जटिलता यह है कि अपराधी घटना स्थल पर उपस्थित हुए बिना घटना को किसी भी स्थान से कारित कर सकता है तथा अपराधी व उसके अपराध का शिकार हुआ व्यक्ति एक–दूसरे से पूर्ण रूप से अनजान रहते हैं। साइबर अपराधी के पकड़े जाने की संभावना नहीं के बराबर होती है क्योंकि वह स्वयं अदृश्य रहता है और कंप्यूटर तकनीक के माध्यम से किसी भी व्यक्ति को लक्षित कर क्षति पहुंचाता है। विभिन्न प्रकार के साइबर अपराधों में कंप्यूटर जनित अनेक प्रकार की अवैध गतिविधियां सम्मिलित होती हैं, जिनमें संचार सेवाओं की चोरी, औद्योगिक जासूसी, छल–कपट, अवांछित अश्लील प्रसारण, मनी लाउंड्रिंग, कर चोरी, ईमेल में हेराफेरी, अवैध हस्तक्षेप, गोपनीय सूचना का दुरुपयोग, षड्यंत्र आदि आते हैं।

जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार व्याप्त है और राजनीति का इस हद तक अपराधीकरण हो गया है कि लोग राजनेताओं से दूर रहने लगे हैं। राजनीतिक नेताओं और तथाकथित जन प्रतिनिधियों को एक ही दर्शन द्वारा निर्देशित किया जाता है, "मतलब कोई फर्क नहीं पड़ता, जाओ और जो तुम चाहते हो उसे प्राप्त करो और इसे प्राप्त करने के लिए सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग करो"। इस प्रकार, भारतीय राजनीति "आध्यात्मिककरण से अपराधीकरण" में बदल रही है। संक्षेप में, भारत तेजी से पतन की ओर बढ़ रहा है और यदि भौतिकवाद, अवसरवाद और बर्बरता की वर्तमान लहर को समय पर रोका नहीं गया, तो परिणाम भयावह हो सकते हैं। भारतीय समाज में इस गिरावट को दूर करने के लिए, ईमानदारी और अखंडता के पोषित मूल्यों को बहाल करने की आवश्यकता है, जिन्होंने वर्तमान भारतीय संदर्भ में अपनी विश्वसनीयता खो दी है, जहां मानव जीवन के सभी गुणों में 'समीक्षा' प्रमुख है। भ्रष्टाचार, तोड़फोड़ और इसी तरह की अन्य आपराधिक गतिविधियों में लिप्त पाए जाने वालों से सख्ती से निबटा जाना चाहिए और कड़ी सजा दी जानी चाहिए। उन प्रक्रियाओं की पहचान करने की आवश्यकता है जो अपराध और अपराध के प्रति लोगों की संवेदनशीलता को कमजोर कर रही हैं और परिणाम और सामाजिक विघटन की परवाह किए बिना व्यक्तियों को अनियंत्रित और आपराधिक व्यवहार में शामिल होने के लिए स्वतंत्र छोड़ रही हैं।

संथानम समिति रिपोर्ट (1964) में भारत में व्यापारियों, उद्योगपतियों, ठेकेदारों, वस्तु सप्लाई करने वाले व्यक्तियों एवं लोक अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अपराधों का विस्तृत ब्योरा दिया गया था। इस रिपोर्ट में विस्तृत जानकारी ऐसे सफेदपोश अपराधों और अपराधियों के बारे में दी गई थी जो समकालीन भारत में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से रूढ़ आपराधिक गतिविधियों में लिप्त लोगों से भिन्न थे।

सफेदपोश अपराध विश्वव्यापी समस्या बन चुके हैं एवं भारत में भी ऐसे अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है। भ्रष्टाचार निवारण हेतु गठित आयोग ने सफेदपोश अपराध के व्यापक स्वरूप को रेखांकित करते हुए उल्लेख किया था कि तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति से एकाधिकार जैसे सामाजिक–आर्थिक अपराधों में वृद्धि हुई है और इसी कारण कानूनों का प्रवर्तन प्रभावी ढंग से नहीं हो पा रहा है क्योंकि वह पर्याप्त रूप से निवारक नहीं है।

टिप्पणी

अपराधियों को दंडित करना सदियों से सभी सभ्य राज्यों का एक मान्यता प्राप्त कार्य है। लेकिन आधुनिक समाज के बदलते पैटर्न के साथ, दंड के प्रति दंडशास्त्रियों के दृष्टिकोण में भी आमूल–चूल परिवर्तन आया है। पेनोलॉजिस्ट आज दंड के अंत और पैनल नीति में इसके स्थान के रूप में महत्वपूर्ण समस्या से चिंतित हैं।

2.10 मुख्य शब्दावली

- **अवैध** : नाजायज, गैर कानूनी।
- **मुनाफा** : लाभ, फायदा।
- **निष्ठा** : लगन, मनोयोग।
- **दक्षता** : योग्यता, कुशलता।
- **सुचारु** : सही ढंग से।
- **जबरन** : बलपूर्वक, जबरदस्ती।
- **आश्रय** : शरण, सहारा।
- **कुख्यात** : बदनाम, बुराई के लिए प्रसिद्ध।
- **यातना** : कष्ट, तकलीफ।

2.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संगठित अपराध क्या होता है?
2. 'महिलाओं के खिलाफ अपराध' से आप क्या समझते हैं?
3. किन धाराओं के अंतर्गत गर्भपात को अपराध माना जाता है?
4. साइबर अपराध कैसा कृत्य है?
5. समकालीन भारत में अपराधियों की बदलती सामाजिक–आर्थिक प्रोफाइल पर टिप्पणी कीजिए।
6. पेनोलॉजिस्ट आज किस बात से चिंतित हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संगठित अपराधों की विवेचना कीजिए।
2. महिलाओं के खिलाफ किए जाने वाले प्रमुख अपराधों की व्याख्या कीजिए।
3. बच्चों के विरुद्ध होने वाले अपराधों की समीक्षा कीजिए।
4. साइबर अपराधों की व्याख्या कीजिए तथा इसमें वृद्धि के कारणों का उल्लेख कीजिए।
5. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार का विश्लेषण कीजिए।
6. दंड के विभिन्न सिद्धांतों की समीक्षा कीजिए।

2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

1. Taft, D. R. and R.W England. (1964).
2. *Criminology*. New York: Macmillan, 1958.
3. Fox, V. *Introduction to Criminology,* 2nd ed. New Jersey: Prentice Hall, 1985.
4. Sutherland, E.H. and D.R. Cressey. *Principles of Criminology,* 7th ed. Chicago: Lippincott, 1966.
5. Barnes, H. E. and N. K. Teeters. *New Horizons in Criminology.* New Jersey: Prentice Hall, 1959.
6. Ashworth Andrew and Mike Redmayne. *The Criminal Process.* USA: Oxford University Press.
7. Cross and Wilkins. *Outlines of the law of Evidence.* USA: Oxford University Press.
8. Hampton, Celia. *Criminal Procedure*. London: Sweet & Maxwell.
9. Lucia Zedner. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
10. Sanders Andrew, Richard Young and Mandy Burton. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
11. Sarkar M.C., S.C. Sarkar and Prabas C Sarkar. *Law of Evidence.* New Delhi: LexisNexis Publisher.
12. Moberly, Hamilton, Sir Walter. 1968. *The Ethics of Punishment*. Faber and Faber.
13. Shah, H. Jyotsna. 1973. *Probation Services in India.* N. M. Tripathi.
14. Bhattacharya, B. K. 1958. *Prisons*. S.C. Sarkar.
15. Cross, Rupert. 1981. *The English Sentencing System.* Butterworth (Publishers) Limited.
16. Stewart, S. W. 1969. *A Modern View of Criminal Law*. Pergamon Press.
17. Fitzgerald, John, Patrick. 1962. *Criminal Law and Punishment.* Clarendon Press.

इकाई 3 सुधार और उसके रूप एवं जेलों में सुधार कार्यक्रम

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 सुधार और उसके रूप
  3.2.1 सुधार का अर्थ और महत्व
  3.2.2 सुधार के रूप
3.3 जेलों में सुधार कार्यक्रम
  3.3.1 भारत में जेल सुधारों का इतिहास
  3.3.2 जेलों पर राष्ट्रीय नीति
  3.3.3 कैदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण
3.4 जेल उद्योग का आधुनिकीकरण
  3.4.1 निजी क्षेत्र की भागीदारी
  3.4.2 सुधारात्मक कार्यक्रम
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

अपराध के निर्धारण के बाद न्यायालयों द्वारा किया जाने वाला महत्वपूर्ण कार्य अपराधी को दंड देना है। दंड देने की शक्ति और दंड की विविध मात्रा वास्तविक विधि मानदंडों का एक अभिन्न पहलू है। बीसवीं सदी के मध्य तक सुधारात्मक दंड का औचित्य कठोर दंड के दृश्य पर हावी हो गया है। दंड के कई अन्य रूप और तरीके हैं, लेकिन अब यह एक स्वीकृत सिद्धांत है कि क्रूर और अपमानजनक दंड बढ़ती अपराध दर को रोकने में मदद नहीं करता है। यह भी माना जाता है कि विधि और व्यवस्था के लिए कठोर दंड की उन्मादपूर्ण मांग अपराध को कभी नहीं रोकेगी, क्योंकि अपराध की जड़ें हमारे सामाजिक ढांचे में गहरी हैं। पेंडुलम का झूला अब दंड से सुधार की ओर है। दंड के रूप में कारावास अब अपराधियों के सुधार और उपचार के लिए तेजी से उपयोग किया जा रहा है।

प्रस्तुत इकाई में अपराधियों के सुधार और उसके विभिन्न रूपों का अध्ययन किया गया है तथा कारावास में किए जाने वाले सुधार कार्यक्रमों की विवेचना की गई है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अपराधियों के सुधार के रूप को समझ पाएंगे;

टिप्पणी

- सुधार के अर्थ और महत्व की व्याख्या कर पाएंगे;
- दंड के रूप और उसके तरीकों के बारे में जान पाएंगे;
- अपराधियों से संबंधित न्यायिक दृष्टि को परख पाएंगे;
- अपराधियों के सुधार के रूपों की समीक्षा कर पाएंगे;
- जेलों के सुधार कार्यक्रमों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- जेल उद्योग के आधुनिकीकरण की विवेचना कर पाएंगे।

3.2 सुधार और उसके रूप

दंड के रूप में कारावास आधुनिक दंडशास्त्र की शाखा है, क्योंकि यह आदिम समाज में अज्ञात था। 16वीं शताब्दी में कारावास की शुरुआत धीमी रही और 20वीं शताब्दी में यह दंड का प्रमुख हिस्सा बन गया। जेल की आबादी में वृद्धि हुई और चार दीवारों के भीतर अत्यधिक भीड़ ने कई दोषों को जन्म दिया और इस तरह अपराधियों और दंडशास्त्री का ध्यान आकर्षित किया। अपराध–शास्त्र और दंडशास्त्र में शोध अध्ययनों से पता चला है कि प्रतिरोध के आधार पर दंड वांछित परिणाम नहीं देता है और इसलिए, मुख्य ध्यान अपराधियों के सुधार की ओर स्थानांतरित हो गया और सुधार और पुनर्वास प्रक्रिया ने गति प्राप्त की। अपराधी को समाज में वापस लाने के लिए कई सुधारात्मक उपाय शुरू किए गए। एक दृढ़ विश्वास है कि वह उचित दंड के मूल उद्देश्य का अनुभव कर सकता है, जहां कठोर दंड नकारात्मक परिणामों के साथ पलटाव के लिए बाध्य है।

सुधारात्मक दर्शनशास्त्र के अंतर्गत दंड का उद्देश्य अपराधी का पुनर्वास करना है और इसलिए, व्यक्तिगत सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों के अनुसार कैदियों के इलाज पर जोर देता है। यह दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि निवारक मूल्य दंड की गंभीरता में नहीं है, बल्कि विधि के शिक्षाप्रद और नैतिक कार्य में निहित है। दंड के इतिहास ने दिखाया है कि दंड की गंभीरता वांछित परिणाम नहीं देती है। इस इकाई में आधुनिक सुधारवादी दर्शनशास्त्र के अंतर्गत सुधारात्मक व्यवस्था की अवधारणा पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है।

3.2.1 सुधार का अर्थ और महत्व

अपराधियों के सुधार को 'एक बेहतर और अच्छे नागरिक के रूप में समाज में एक आदमी को बहाल करने के प्रयास' के रूप में परिभाषित किया गया है। सुधार का उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक सुधार, उसकी बुद्धि को तेज करना और ईमानदारी की भावना विकसित करना है। सुधारक दर्शनशास्त्र का उद्देश्य अपराधियों का सुधार करना है, और इस दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत, एक गलतकर्ता न केवल दंडित होने वाला अपराधी है, बल्कि एक रोगी को देखभाल के साथ इलाज किया जाना है। यह इस अवधारणा के साथ है कि सुधारात्मक सिद्धांत को दार्शनिकों ने प्लेटो से लेकर वर्तमान युग तक अपनाया है। एक प्रसिद्ध दार्शनिक विक्टर हेग ने एक बार टिप्पणी की थी कि 'एक स्कूल खोलना एक जेल को बंद करना है'। मेरा मतलब यह नहीं है कि यदि संदिग्ध चरित्र के व्यक्ति को शिक्षा दी जाती है और उसे उचित प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वह ईमानदारी से अपनी आजीविका कमाने के लिए सक्षम हो, तो वह अपराध करने से

हिचकिचाएगा। दूसरे शब्दों में, यदि एक अपराधी को सामान्य रूप से पुनर्जीवित किया जाता है, तो उसकी आपराधिक प्रवृत्ति विलुप्त हो सकती है या काफी निष्क्रिय हो सकती है।

टिप्पणी

सुधारवादी दर्शनशास्त्र का मानना है कि गलत करने वाले के चरित्र को सकारात्मक दिशा में बदलने और उसकी बेहतर मात्रा विकसित करने के लिए दंड के उपचारात्मक रूपों को तैयार किया जाना चाहिए, ताकि वह गलत कार्य करने से डरने के बजाय सही कार्य करने की इच्छा रखता हो। इस संबंध में एक प्रसिद्ध न्यायविद वोर्टली (1967) ने अपनी राय इस प्रकार व्यक्त की–

"...दंड की कोई भी प्रणाली सामाजिक रूप से उपयोगी होने की संभावना नहीं है जो एक अपराधी को उसके साथियों से अलग प्रजाति के रूप में मानता है, और जो उसके और उसके व्यक्तित्व के साथ सम्मान और विचार के साथ व्यवहार नहीं करता है, जो उसकी प्रकृति की मांग करता है... "

न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर (1980) ने दंड और सुधारात्मक विकल्प के संबंध में बताया–

"... मेरी थीसिस वह दंड है जो चोट पहुंचाती है, सुधार नहीं हो सकता है, कि कैदी व्यक्ति हैं और उन्हें मानवाधिकारों के साथ रखा जाना चाहिए, वह सामाजिक रक्षा जो दंडात्मक कानून को वैध बनाती है, आंतरिक व्यक्ति पर चिकित्सीय ध्यान द्वारा बढ़ावा दिया जाता है, न कि दुखवादी अभ्यासों के आधार पर शरीर के प्रति सचेत भय। मनुष्य में देवत्व की प्रगतिशील अभिव्यक्ति मानव की गरिमा और मूल्य की पहचान है और यह सिद्ध करती है कि यह अपराध से मुक्ति की आशा है ... न पत्थर की दीवारें, न लोहे की छड़ें और न ही अन्य सूक्ष्म बर्बरता। यह ज्ञात है कि अकेले मानवीकरण कैसे दुविधा को दूर कर सकता है।"

जस्टिस कृष्णा अय्यर ने आगे कहा कि अपराधी पैदा नहीं होते बल्कि बनते हैं। दरअसल, हर संत का एक अतीत होता है और हर अपराधी का एक भविष्य होता है। जब कोई अपराध किया जाता है, तो अपराधी को अपराध करने के लिए तैयार करने के लिए कई तरह के कारक जिम्मेदार होते हैं। वे कारक सामाजिक और आर्थिक हो सकते हैं, मूल्य क्षरण या माता–पिता की उपेक्षा का परिणाम हो सकते हैं, परिस्थितियों के तनाव के कारण हो सकते हैं, या गरीबी या अन्य अभावों के विपरीत संपन्नता के मिलन में प्रलोभनों के प्रकट होने के कारण हो सकते हैं। एक आदमी को जेल का दंड सुनाना अक्सर उसे शर्मिंदा कर सकता है और जब वह जेल की सलाखों से बाहर आता है, तो वह समाज का दुश्मन बन जाता है। यह समय की आवश्यकता है कि वह उसकी सहज अच्छाई को फिर से जगाए, उसे उसके नैतिक मूल्यों के बारे में समझाए और सामाजिक परिवेश में उसकी मदद करे जहां उसके अस्तित्व की सूक्ष्म ज्योति उसकी छाती में जलेगी। हर एक में मानवीय क्षमता अच्छी है और इसलिए, किसी भी अपराधी को मोचन से परे कभी न लिखें। सुधार प्रक्रिया संपूर्ण आपराधिक न्याय प्रणाली का एक अभिन्न अंग है।

दंड के रूप (Forms of Punishment)

आपराधिक न्याय की प्रक्रिया तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचती है, जब आरोपी का अपराध उचित संदेह से परे स्थापित हो जाता है। इस स्तर पर मुकदमा अब एक अलग क्षेत्र में

प्रवेश करता है और इसे दंड कहा जाता है। इस स्तर पर न्यायालय को दंड के उपलब्ध रूपों के भीतर दंड देना होता है। दंड सुनाना कोर्ट के लिए बहुत मुश्किल कार्य है।

टिप्पणी

दंड के रूप और तरीके सीधे अपराधियों के सुधार से संबंधित हैं। मृत्युदंड किसी भी प्रकार के सुधार के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता है, लेकिन निस्संदेह कारावास कई दोषों के साथ है, लेकिन हमेशा सुधार की गुंजाइश होती है, बशर्ते उचित उपचार विधियों को उचित परिप्रेक्ष्य में तैयार किया जाए। अधिकांश अपराधों और दंडों का वर्णन भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत किया गया है। संहिता की धारा 53 निम्नलिखित प्रकार का दंड प्रदान करती है–

(1) मृत्यु;

(2) आजीवन कारावास;

(3) कारावास जो दो प्रकारों का है–

(क) कठोर (श्रम के साथ कारावास),

(ख) सामान्य;

(4) संपत्ति की जब्ती; सुधारात्मक प्रक्रिया

(5) अर्थदण्ड

कई देशों में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया गया है और उसे अन्य प्रकार के दंडों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। जिन देशों में अभी तक मौत के दंड को समाप्त नहीं किया गया है, वहां असाधारण मामलों में यह दंड दिया जाता है। हालाँकि, इस दंड और अर्थ के उन्मूलन या प्रतिधारण पर एक राष्ट्रीय बहस चल रही है, जबकि विधायिका और न्यायपालिका ने इसके निष्पादन के प्रति घृणा दिखाई है। अब, नई दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार, कोर्ट को मौत का दंड देते समय इस तरह का दंड देने के लिए कारण बताना होगा, क्योंकि विधायिका ने मौत के दंड से उम्रकैद के दंड पर जोर दिया है। न्यायपालिका ने कई मामलों में यह निर्धारित किया है कि मौत का दंड दुर्लभतम मामलों में देना है। इसके अलावा, भले ही न्यायालय द्वारा मौत की सजा दी गई हो, न्यायालय को ऐसी सजा देने के कारणों को दर्ज करना होगा। इसके अलावा, ट्रायल कोर्ट द्वारा प्रत्येक मौत के दंड की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की जानी चाहिए। इसके अलावा, दोषसिद्धि और दंड के मुद्दों पर सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की जा सकती है। अंत में मृत्युदंड का प्रत्येक मामला दंड प्राप्तकर्ता को मुख्य कार्यकारी के समक्ष क्षमा या रूपांतरण के लिए दया याचिका दायर करने का अधिकार देता है।

न्यायिक दृष्टिकोण (Judicial View)

दुनिया भर में न्यायपालिका ने आधुनिक सुधारवादी दर्शनशास्त्र के सिद्धांतों को उचित मान्यता दी है और अपराधियों के इलाज की आवश्यकता पर बल दिया है। इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालयों ने इस संबंध में नेतृत्व किया है और सुधारात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से दंड के मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सक्रिय दृष्टिकोण का प्रदर्शन किया है। भारतीय न्यायपालिका ने विशेष रूप से उच्च स्तर पर भी अपराधियों के उपचार और पुनर्समाजीकरण पर उचित जोर दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने

टिप्पणी

कई मामलों में इस संबंध में सक्रिय दृष्टिकोण का प्रदर्शन किया है और इस तरह देश में शेष न्यायपालिका के लिए एक प्रकाशस्तंभ की तरह साबित हुआ है। जनहित याचिकाओं (PIL) के माध्यम से शीर्ष न्यायालय ने कई फैसले दिए हैं, जिन्होंने न केवल कैदियों के कानूनी और संवैधानिक अधिकारों की पहचान की है, बल्कि उनके कार्यान्वयन के लिए निर्देश भी जारी किए हैं और इस तरह पत्थर की दीवारों के भीतर कैदियों की स्थिति में सुधार हुआ है। न्यायिक सक्रियता ने मानव जाति और मानवता के लाभ के लिए इसे झुकाने के लिए कानून की व्याख्या करने में एक बहुत ही गतिशील भूमिका निभाई है।

दी गई परिस्थितियों में एक उचित दंड देने के लिए यानी वह दंड जो आरोपी और राज्य दोनों के लिए न्यायसंगत और उचित है, उच्च न्यायालयों ने पूरक प्रावधान विकसित किए हैं। जस्टिस अय्यर ने राजेंद्र प्रसाद केस 1976 में फैसला सुनाते हुए कहा–

"जब विधायी पाठ आत्म–अभिनय के लिए बहुत अधिक गंजा है या कार्रवाई में वक्र विकृति का शिकार है, तो प्राथमिक दायित्व संसद पर है कि वह संबंधित प्रावधानों में उचित संशोधन करके आवश्यक खंड लागू करे। लेकिन, यदि विधायी उपक्रम प्रकाश में नहीं है, तो जिन न्यायाधीशों को संहिता को लागू करना है, वे अपने पेशेवर हाथ नहीं जोड़ सकते हैं, लेकिन पूरक सिद्धांतों के विकास द्वारा प्रावधान को व्यवहार्य बनाना चाहिए।"

सकारात्मक न्यायिक प्रवृत्ति ने यह स्पष्ट कर दिया है कि दंड सुनाने के बाद दंड सुनाने वाला न्यायाधीश अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है, लेकिन उसके द्वारा दी गई दंड की प्रभावकारिता और प्रभाव को देखना और उसकी निगरानी करना है। उन्हें दंड के संभावित परिणामों के बारे में पता होना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए, दंड देने वाले न्यायाधीश को अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि जेल प्रणाली आधुनिक सुधारवादी दर्शनशास्त्र का जवाब देती है।

मूटीराम मामले (1972) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि सभी प्रगतिशील सभ्य समाजों में, न्यायालयों द्वारा अपराधियों के दंड के व्यापक उद्देश्यों को देखते हुए, न्याय के सच्चे निर्देश मांग करते हैं कि उपस्थित प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उचित और न्यायसंगत चेतना का निर्धारण करने के लिए उसके द्वारा किया गया अपराध उसके अपने हित के खिलाफ था, साथ ही अपने स्वयं के समाज के हित के खिलाफ था, जिसका वह सदस्य होता है। प्रवीण कुमार के एक और मामले में सुप्रीम कोर्ट(1974) ने जोर देकर कहा कि दंड का उद्देश्य संभावित अपराधियों को आगे के अपराध करने से रोकने और उन्हें कानून का पालन करने वाले नागरिकों में सुधार कर समाज की सुरक्षा करना है।

न्यायपालिका ने मामलों की एक श्रृंखला में यह सुनिश्चित किया है कि दंड को लागू करते समय, न्यायालय को प्राप्त करने के लिए अंत निर्धारित करना चाहिए और यह स्पष्ट करना चाहिए कि दंड के पुरस्कार में क्या इरादा है। संत सिंह के मामले (1976) में सर्वोच्च न्यायालय ने न्याय के माध्यम से सुधारवादी दर्शनशास्त्र की ओर बदलते रुझान में न्यायपालिका के महत्व पर प्रकाश डाला और न्यायिक अधिकारियों को बदलते परिदृश्य के साथ रखने की आवश्यकता पर बल दिया।

टिप्पणी

दंड और न्यायाधीशों के प्रशिक्षण के संबंध में शीर्ष न्यायालय ने कहा– "... नए न्यायिक नियुक्तों या यहां तक कि सेवारत न्यायाधीशों को न्यायिक विचारों की बदलती प्रवृत्ति और नए विचारों के साथ नए न्यायिक दृष्टिकोण ने वर्षों से आत्मसात करने के लिए प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना करना समय की प्रमुख आवश्यकता है। नई परिस्थितियों के प्रभाव के परिणामस्वरूप जो अस्तित्व में आई हैं।"

कई राज्यों में न्यायिक अकादमियों नामक कई संस्थान स्थापित किए गए हैं, जहां न्यायिक अधिकारियों को नियमित और निरंतर आधार पर प्रशिक्षण दिया जाता है।

हालाँकि, भारत में न्यायालयों को त्वरित न्याय देने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। न्याय में देरी का मूल कारण यह है कि देश भर की न्यायालय मामलों के बैक–लॉग के बोझ से दब जाती हैं और एक मामले को तय करने में दशकों लग जाते हैं और हर दिन बकाया जमा हो जाता है। यह बताया गया है कि निचली न्यायालयों में निबटान के लिए 30 मिलियन मामले लंबित हैं और भारत के 21 उच्च न्यायालयों में 37.1 लाख मामले लंबित हैं।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि न्यायपालिका ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो आज भी लोगों के सम्मान की कमान संभालती है। लेकिन न्यायधीशों पर देश भर में अत्यधिक कार्य करने का दबाव है, न्यायधीशों के नए पद सृजित नहीं होते हैं, रिक्त पदों को नहीं भरा जाता है, बुनियादी ढांचा संतोषजनक नहीं है और न्यायिक व्यवस्था कई स्तरों पर टूट रही है, विशेषकर अधीनस्थ न्यायालयों में। देरी, बल्कि अत्यधिक देरी भ्रष्टाचार को जन्म देती है और सुधारात्मक उपचार रणनीति को ही निराश करती है।

सुधारात्मक उपाय (Correctional Measures)

दुनिया भर में वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि सभी सभ्य समाजों ने न्यायपालिका और अपराधियों के पुनर्वास के प्रति लोगों में एक प्रकार का विश्वास पैदा करने के लिए विभिन्न उपाय किए हैं। इसके अलावा, परीक्षण अवधि को कम करने के लिए कई कदम उठाए गए हैं और चार दीवारों के साथ–साथ चार दीवारों के बाहर भी विभिन्न उपचार विधियों को तैयार किया गया है। तैयार की गई उपचार विधियों का उद्देश्य अपराधियों का सुधार और पुनर्वास करना है।

आधुनिक सुधारवादी दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत दंड का सीधा संबंध सुधार प्रक्रिया से है। आधुनिक दंड के अन्तर्गत दंड के मूल उद्देश्यों को अनुभव करने के लिए, दंड न केवल अपराध के लिए, बल्कि अपराधी के लिए भी उपयुक्त होना चाहिए, ताकि वह कानून का पालन करने वाले नागरिक के रूप में समाज में वापस आ सके। आधुनिक सुधार प्रक्रिया के अन्तर्गत मुख्य फोकस अपराधी पर है। पहले के समय में, विशिष्ट अपराधों के लिए विशिष्ट दंड कानून द्वारा निर्धारित किए गए थे, और एक बार अपराध का फैसला वापस आने के बाद, न्यायाधीश ने केवल उचित दंड देने का आदेश दिया। दंड सुनाने वाले न्यायाधीशों ने शायद ही उन जगहों के बारे में अपनी चिंता दिखाई, जहां अपराधी दर्ज किए गए थे और न ही उन्हें अपराधी के भविष्य की चिंता थी।

दंड सुनाने वाला न्यायाधीश अपराधियों के सुधार और पुनर्वास के लिए दंड का चयन करने या उनकी जरूरतों और क्षमताओं के लिए दंड को अनुकूलित करने के लिए बाध्य नहीं था। दंड की प्रकृति और मात्रा पर वकील को सुनने का कोई प्रावधान नहीं था। अब स्थिति बदल गई है, और अपराध विज्ञान में नई प्रगति के परिणामस्वरूप, अपराध और दंड के बारे में पुनर्विचार किया जा रहा है।

टिप्पणी

सुधारात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत दंड के लिए अपराध की प्रकृति और आसपास की परिस्थितियों से परे विचारों की आवश्यकता होती है। सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने और अपराधियों के पुनर्वास में वर्तमान में यह दंड आपराधिक कानून की महत्वपूर्ण रणनीति है। दंड देना सामाजिक न्याय का एक पहलू है और इस समय अदालत की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है।

दंड संस्थाओं में कई उपाय किए गए हैं जिनका उद्देश्य कैदी के उपचार और पुनर्वास के उद्देश्य से है, ताकि समाज में लौटने पर, वह कानून का पालन करने वाला जीवन जी सके। अन्य उपायों के बीच मुख्य कदमों में व्यवसाय, प्रशिक्षण, मजदूरी, स्वास्थ्य सेवा, परिवार या दोस्तों द्वारा उचित मुलाकात का समय, उचित संचार सुविधाएं, समाचार पत्र पढ़ना, किताबें पढ़ना, खेल और मनोरंजक गतिविधियों में भागीदारी, सामाजिक द्वारा विस्तार व्याख्यान शामिल हैं। और धार्मिक उपदेशक और मानव गरिमा और मानवाधिकारों के लिए अंतिम लेकिन कम से कम सम्मान नहीं।

सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति के.जी. बालकृष्ण (2007) ने देखा कि देश में आपराधिक न्याय प्रणाली इस देश के नागरिकों को आपराधिक गतिविधियों के हमले से बचाने के लिए है यदि समाज का एक वर्ग इस तरह के कृत्यों में लिप्त है। आपराधिक न्याय प्रणाली का परिणाम विश्वास को प्रेरित करने और कानून के शासन के लिए सम्मान का रवैया बनाने के लिए होना चाहिए। यह सभी संबंधितों के हित में है कि आरोपी का दोष या बेगुनाही जल्द से जल्द स्थापित की जाए। उन्होंने आगे कहा कि दुर्भाग्य से, इस देश में बड़ी संख्या में विचाराधीन कैदी हैं। यह तथ्य की बात है कि देश भर की जेलों में कैदियों की भीड़ अधिक है और अधिकांश कैदी विचाराधीन कैदी हैं, जो कि अधिकांश मामलों में सुधार प्रक्रिया में एक बड़ी बाधा है।

3.2.2 सुधार के रूप

सुधार को दो रूपों में बांटा जा सकता है– (1) जेल–आधारित सुधार, और (2) समुदाय–आधारित सुधार।

जेल–आधारित सुधार (Prison&based Correction)

अपराधियों के सुधार या पुनर्वास का वांछित लक्ष्य जेल की संस्था में विभिन्न उपकरणों और तकनीकों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। जेल सुधार के कुछ ऐसे उपकरण और तकनीकें इस प्रकार हैं–

परख

प्रोबेशन शब्द सुधारात्मक दंडशास्त्र का एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपकरण है; यह मूल रूप से एक ऐसी अवधि है जिसके दौरान दोषी को जेल में रहने के बजाय, निगरानी में रहने का आदेश दिया जाता है। परिवीक्षा पर दोषी की रिहाई अदालत द्वारा निर्धारित एक सुधारात्मक उपचार योजना के रूप में कार्य करती है और इस उपचार के दौरान, परिवीक्षा पर दोषसिद्धि उसके समुदाय के भीतर रहती है और अदालत द्वारा लगाई गई शर्तों के तहत दोषी स्वयं के जीवन को व्यवस्थित करता है और एक परिवीक्षा अधिकारी की निगरानी में रहता है।

पैरोल

पैरोल एक अपराधी की दंडात्मक सुधारात्मक संस्था से रिहाई है जो यह पता लगाने के प्रयास में सुधारक अधिकारियों के नियंत्रण में रहता है कि क्या वह पर्यवेक्षण के बिना

टिप्पणी

मुक्त समाज में रहने के योग्य है या नहीं। इस प्रकार यह सुधार योजना का अंतिम चरण है जिसकी परिवीक्षा संभवतः पहली हो सकती है। सावधानीपूर्वक अध्ययन के साथ–साथ सुधार की क्षमता दिखाने के बाद उसे सशर्त रूप से समाज में शामिल होने की अनुमति दी जाती है।

थोड़े दिन की छुट्टी (फरलो)

फरलो एक अन्य सुधारात्मक उपकरण है जिसे अक्सर पैरोल के साथ भ्रमित किया जाता है। निस्संदेह, पैरोल और फरलो दंड व्यवस्था के सुधारक उपकरण हैं लेकिन दोनों अलग हैं। कैदी को समय–समय पर किसी विशेष कारण के बावजूद फरलो दी जानी चाहिए। इस उपकरण के पीछे का उद्देश्य केवल उसे पारिवारिक और सामाजिक संबंधों को बनाए रखने और निरंतर जेल जीवन के नकारात्मक प्रभावों से बचने में सक्षम बनाना है। फरलो की अवधि को सजा की छूट के रूप में माना जाता है।

क्षमा

क्षमा शब्द दया के कार्य के रूप में जिसके द्वारा कैदी को उस पर लगाए गए दंड से मुक्त किया जाता है, क्षमा का अनुदान पूर्ण या सशर्त हो सकता है। भारत में, कुछ प्रावधान हैं जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 में निहित हैं, यह प्रदान करता है कि भारत के राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों को क्रमशः किसी भी दोषी की सजा को क्षमा करने, राहत देने या सजा को कम करने का अधिकार है।

खुली जेल

ओपन जेल को ओपन एयर कैंप भी कहा जाता है, ओपन जेल आपराधिक सुधार का एक और महत्वपूर्ण उपकरण है। गहन देखभाल कार्यक्रम के माध्यम से कैदियों को समाज में सामान्य जीवन के लिए पुनर्वास के लिए ओपन जेल संस्थान अनिवार्य रूप से 21 वीं सदी का उपकरण है। वे कैदियों को जेल की कोठरियों के अंदर बेकार रहने देने के बजाय जंगलों, कृषि फार्मों और निर्माण स्थलों में काम देते हैं। ये जेलें एक कैदी के सुधार की योजना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जिसे सुधारात्मक प्रबंधन के मानदंडों में से एक होना चाहिए। भारत में पहली खुली जेल वर्ष 1905 में बॉम्बे प्रेसीडेंसी में शुरू की गई थी, हालांकि इस खुली जेल को 1910 में बंद कर दिया गया था। इसके बाद वर्ष 1953 में उत्तर प्रदेश ने भारत में खुली जेल की स्थापना की।

कैदियों द्वारा स्वशासन

जेलों में स्वशासन की प्रणाली के तहत, कैदी अपने कुछ साथी कैदियों को अपने प्रतिनिधियों के रूप में चुनते हैं और संपूर्ण जेल प्रबंधन कैदियों के उस निर्वाचित निकाय द्वारा चलाया जाता है, जो गंदगी पर पूर्ण या कम से कम आंशिक नियंत्रण रखते हैं और उनसे देखभाल की उम्मीद की जाती है। अपने साथी कैदियों के हितों और कल्याण के लिए।

कार्य विमोचन

कार्य रिहाई को आधुनिक आपराधिक न्याय में एक बहुत प्रभावी सुधार उपकरण माना जाता है। इस पद्धति में, कैदी को पार्ट टाइम आधार पर सोसायटी में वेतन के लिए काम करने की अनुमति दी जाती है। यह उसे बिना किसी सीमा के सामान्य तरीके से समाज के साथ घुलने–मिलने का अवसर देता है। इससे कैदियों को रिहाई के बाद कार्यस्थल पर स्थिति में समायोजित होने में मदद मिलती है।

टिप्पणी

विपश्यन

विपश्यन मन की शांति प्राप्त करने और एक सुखी उपयोगी जीवन जीने का एक सीधा तरीका है। जेल में पहला विपश्यन पाठ्यक्रम 1975 में जयपुर, भारत में हुआ था। हालाँकि, लगभग 20 वर्षों के बाद ही विपश्यन ने 1990 के दशक में खुद को सामाजिक और जेल सुधार के लिए एक उपकरण के रूप में स्थापित किया था। यह भावनात्मक बातों से निबटने के उद्देश्य के साथ था और जेल के कैदियों की मनोवैज्ञानिक समस्याएं सुलझाने के लिए था। यह जेल का एक अभिन्न अंग बन गया जिसने समुदाय के निर्माण के साथ–साथ उनके व्यक्तित्व को सकारात्मक तरीके से विकसित करने में मदद की।

कारागार सुधारों से संबंधित सामान्य मुद्दे

कुछ सामान्य मुद्दे हैं जो कारागार सुधारों से संबंधित हैं जो इस प्रकार हैं–

मुलाक़ात प्रणाली : मुलाक़ात की व्यवस्था यानी जेल में बंदियों की पारिवारिक बैठक को गंभीरता से लेने की जरूरत है क्योंकि यह सुधार का एक अत्यंत प्रभावी लेकिन अप्रयुक्त साधन है, हालांकि कैदियों को निश्चित अंतराल पर अपने निकट संबंधियों से मिलने की अनुमति है। मुलाक़ात की अवधि बहुत कम समय के लिए और बहुत असहज माहौल में होती है। इस तरह की बैठकों के दौरान कोई गोपनीयता नहीं होती है। जेल प्रहरियों की देखरेख में बैठकें कैदी के साथ–साथ आगंतुक के लिए गोपनीयता की कमी के कारण वास्तव में असुविधाजनक होती हैं। कैदियों के मित्रों, रिश्तेदारों और कानूनी सलाहकारों से संवाद करने और मिलने के अधिकार को एक विशेष सीमा से अधिक प्रतिबंधित नहीं किया जाना चाहिए।

त्योहारों और अन्य समारोहों का उत्सव : सुधारकों का मत है कि उत्सवों और अन्य समारोहों के अवसरों को कैदियों के लिए केवल स्वादिष्ट व्यंजनों तक सीमित करने की व्यवस्था को आनंद और अन्य सार्थक कार्यक्रमों के माध्यम से उत्सवों में लाकर बदलने की आवश्यकता है ताकि कैदी कम से कम क्षण भर के लिए भूल सकें कि वे बंधी जिंदगी जी रहे हैं।

डाक या मेल द्वारा संचार : बंदियों के डाक मेल के प्रतिबंधों और जांच से संबंधित मौजूदा नियमों को उदार बनाया जाना चाहिए। यह जेल अधिकारियों के लिए कैदियों के बीच विश्वास और आत्मविश्वास जगाएगा, ज्यादातर समय जेल अधिकारियों द्वारा इस तरह के प्रतिबंधों के समर्थन में एकमात्र बहाना प्रस्तुत किया जाता है कि जेल की सुरक्षा के हित में ऐसा किया जाता है।

शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण : बंदियों की निरंतर शिक्षा एक अन्य उपकरण है जो उन्हें व्यस्त रखता है और जेल से रिहा होने के बाद उनके पुनर्वास में भी मदद करता है। कैदियों के व्यावसायिक प्रशिक्षण पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए जो उन्हें जेल से रिहा होने के बाद अपनी आजीविका कमाने के लिए सम्मानजनक साधन प्रदान करेगा। इसका उद्देश्य उन्हें कौशल और योग्यता हासिल करने में सक्षम बनाना है जो उन्हें रिहाई पर रोजगार में मदद कर सके।

आध्यात्मिक प्रशिक्षण : कुछ पेनोलॉजिस्टों ने कैदियों के आध्यात्मिक प्रशिक्षण की आवश्यकता की वकालत की है, जो निश्चित रूप से सुधार की दिशा में एक सकारात्मक कदम है। यह दृढ़ता से माना जाता है कि योग और ध्यान के अभ्यास से कैदी अपने मन को नियंत्रित कर सकते हैं और नकारात्मक स्वभाव को भी सकारात्मक

बना सकते हैं। जेल सुधारों के प्रति इस दृष्टिकोण से निश्चित रूप से कैदियों के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव आएगा और उनके पुनर्वास में मदद मिलेगी।

टिप्पणी

समुदाय–आधारित सुधार (Community&based Correction)

समुदाय आधारित सुधार कार्यक्रम किशोर और वयस्क न्याय प्रणाली दोनों का एक अनिवार्य घटक बन गया है। सबसे प्रसिद्ध सामुदायिक सुधार कार्यक्रम परिवीक्षा और पैरोल हैं। अन्य व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले सामुदायिक सुधार कार्यक्रमों में पुनर्स्थापन शामिल है, जिसमें अपराधी अपने अपराध से होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए तैयारी करता है; हाउस अरेस्ट जिसमें अपराधी काम या अन्य स्वीकृत गतिविधियों को छोड़कर घर नहीं छोड़ सकता है; और सामुदायिक सेवा, जिसमें अपराधी को सामान्य समुदाय को भुगतान के रूप में अवैतनिक कार्य करने का आदेश दिया जाता है।

परिभाषा

सामुदायिक सुधार, कारावास में रहने वाले किशोरों और दोषी वयस्कों के लिए एक विकल्प प्रदान करता है। यदि अच्छी तरह से प्रबंधित किया जाता है, तो ऐसे कार्यक्रम पुनर्वास, नियंत्रण और दंड के लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक अधिक लागत प्रभावी तरीका हो सकते हैं। अपराधी जो अपने स्वयं के समुदायों में रहते हैं, कारावास के नकारात्मक प्रभावों से बचते हैं और संभावित रूप से अपने स्वयं के पुनर्वास को बढ़ाते हैं। समुदाय में पर्यवेक्षण अपराधियों को राज्य संचालित सुविधा में "समय करने" के बजाय सीधे समुदाय को नुकसान का भुगतान करने में सक्षम बनाता है। सामुदायिक सुधार अधिवक्ताओं का तर्क है कि क्योंकि कैद में रखे गए अपराधियों के विशाल बहुमत अंततः समुदाय में लौट आते हैं, समुदाय में दंड और पर्यवेक्षण प्रदान करने से उन्हें उसी सामाजिक संदर्भ में काम करने और उपचार प्राप्त करने की अनुमति मिलती है जिसमें उन्हें न्याय प्रणाली से रिहाई के बाद रहना चाहिए। दूसरे शब्दों में, सामुदायिक सुधार पर्यवेक्षण से मुक्त होने के बाद अपराधी के समाज में समायोजन को बहुत बढ़ा सकते हैं और ऐसा माना जाता है कि यह पुनरावृत्ति की संभावना को कम करता है।

संरचनाएं और कार्य

सामुदायिक सुधार विभिन्न संगठनात्मक और सरकारी संरचनाओं के अन्तर्गत प्रशासित होते हैं। कुछ न्यायालयों में या तो राज्य या स्थानीय सरकार की सामुदायिक सुधारों की पूरी जिम्मेदारी होती है। अन्य न्यायालयों में राज्य और स्थानीय सरकारें इस जिम्मेदारी को साझा करती हैं। राज्य या स्थानीय सरकार के अनुबंध के अन्तर्गत निजी कंपनियों द्वारा तेजी से सामुदायिक सुधार कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं।

सामुदायिक सुधार कार्यक्रमों का उपयोग न्याय प्रणाली के सामने या पीछे के छोर पर किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उनका उपयोग पहली बार कम जोखिम वाले अपराधियों के लिए किया जा सकता है जिन्हें कैद नहीं किया गया है (कभी–कभी दोषी भी नहीं) या अधिक गंभीर अपराधियों के लिए कैद के विकल्प के रूप में और उन लोगों की निगरानी करने के साधन के रूप में जिन्हें रिहा किया जा रहा है या समुदाय को पैरोल किया जा रहा है।

संघीय अपराध करने वालों को छोड़कर, अपराधियों पर राज्य या स्थानीय न्यायालयों द्वारा मुकदमा चलाया जाता है और उन्हें दंड दी जाती है। आपराधिक या

टिप्पणी

किशोर न्यायालय के मामलों में जिसमें कारावास की अवधि शामिल नहीं है, समुदाय आधारित दंड को पूरा करने की जिम्मेदारी आमतौर पर अदालत के पास रहती है जो दंड को लागू करती है। एक क्षेत्राधिकार पारंपरिक परिवीक्षा और जुर्माना जैसे सामुदायिक सुधारों के केवल एक प्राथमिक रूप का उपयोग कर सकता है, जबकि दूसरे क्षेत्राधिकार में कार्यक्रमों की एक विस्तृत श्रृंखला हो सकती है जो दंडात्मकता और अपराधी नियंत्रण के विभिन्न स्तरों की पेशकश करती है।

सामुदायिक सुधारों की अवधि को लागू करने का न्यायालय का निर्णय काफी हद तक इस बात पर आधारित होता है कि अपराधी किस हद तक सार्वजनिक सुरक्षा के लिए जोखिम पेश करता है। दूसरे शब्दों में, अदालत को इस संभावना का आकलन करना चाहिए कि अगर समुदाय में रहने की अनुमति दी गई तो अपराधी नए अपराध करेगा। अदालत इस बात पर भी विचार कर सकती है कि क्या उपलब्ध कार्यक्रम अपराधियों के पुनर्वास की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होंगे। अक्सर, निर्णय में आपराधिक कृत्य की गंभीरता और अपराधी के प्रति जनता के रवैये को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। अत्यधिक दृश्यमान या कुख्यात मामलों में, न्यायालय किसी अपराधी को समुदाय–आधारित कार्यक्रम के लिए दंड देने में अनिच्छुक हो सकता है, भले ही पुनः गिरफ्तारी की संभावना कम प्रतीत होती हो।

कार्यक्रम और सेवाएं

सामुदायिक सुधारों में जेल में बंद अपराधियों को हटाने के लिए कार्यक्रमों और सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, अपराधियों को नियंत्रित और पर्यवेक्षण करना, जिन्हें समुदाय–आधारित दंड दिया गया है और अपराधियों को उनकी जेल की अवधि के अंत में पर्यवेक्षण करना शामिल है, क्योंकि अपराधियों को समुदाय में सुधार का दंड सुनाया गया था, तब वे अपने घरों में रह सकते थे और रोजगार के अवसरों तक पहुंच बनाए रख सकते थे। उन्हें एक पर्यवेक्षक के साथ नियमित रूप से मिलना चाहिए, जो उनकी गतिविधियों और संघों की बारीकी से निगरानी करता है। अक्सर, न्यायालय कई शर्तें लगाता है जो अपराधियों को समुदाय–आधारित कार्यक्रमों में जारी रखने के लिए पूरी करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, एक अदालत को एक दोषी ड्रग अपराधी को यादृच्छिक ड्रग परीक्षण प्रस्तुत करने या गिरोह के एक संदिग्ध सदस्य को गिरोह के अन्य सदस्यों और कुछ पड़ोस से दूर रहने का आदेश देने की आवश्यकता हो सकती है। अपराधियों को रोजगार बनाए रखने या नौकरी की तलाश में संलग्न होने या किशोर अपराधी के मामले में नियमित रूप से स्कूल जाने का आदेश दिया जा सकता है। यदि अपराधी इनमें से किसी भी शर्त का उल्लंघन करता है तो अदालत समुदाय आधारित दंड को रद्द कर सकती है और अपराधी को तत्काल कैद के लिए अधिक गंभीर नियंत्रण के अधीन कर सकती है।

यद्यपि उन्हें कारावास के बजाय समुदाय–आधारित सजा दी गई है, एक सामुदायिक सुधार कार्यक्रम में अपराधी "मुक्त" नहीं हैं। प्रत्येक कार्यक्रम मॉडल में अपराधियों की गतिविधियों पर नियंत्रण के विभिन्न अंश शामिल होते हैं। हालाँकि, सामुदायिक सुधारों का सार यह है कि ये प्रतिबंध अपराधियों को अपने घरों और समुदायों में रहने के लाभों को महसूस करने से नहीं रोकते हैं। बंद निरोध सुविधाएं और जेल, यहां तक कि रिहायशी इलाकों में या उसके आस–पास स्थित जेल भी समुदाय आधारित कार्यक्रम नहीं हैं। इसी तरह, बूट शिविरों को सामुदायिक सुधार कार्यक्रम नहीं

टिप्पणी

माना जाता है, हालांकि उन्हें अक्सर कैद के विकल्प के रूप में प्रचारित किया जाता है। यदि एक बंद सुविधा या बूट शिविर को एक दिन के कार्यक्रम के रूप में संचालित किया जाता है, और अपराधी रात में अपने घरों में लौटने में सक्षम होते हैं तो ऐसे कार्यक्रम को सामुदायिक सुधार कार्यक्रम माना जा सकता है। जैसा कि सभी आपराधिक न्याय नीति में होता है, सामुदायिक सुधारों का उपयोग तब सबसे उपयुक्त होता है जब यह जनता की सुरक्षा और अपराधी को नियंत्रित करने या पुनर्वास के बीच प्रभावी संतुलन प्रदान करता है।

सामुदायिक सुधार कार्यक्रमों को गंभीरता की निरंतरता पर रखा जा सकता है। अबाध क्रम के एक छोर पर सबसे कम दंडात्मक, कम से कम खर्चीला, और सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले सुधारात्मक प्रतिबंध हैं, जैसे, वित्त और पारंपरिक परिवीक्षा पर्यवेक्षण। अबाध क्रम के दूसरे छोर पर अधिक दंडात्मक, नियंत्रण उन्मुख और महंगे कार्यक्रम हैं, जैसे गहन पर्यवेक्षण और इलेक्ट्रॉनिक निगरानी। निम्नलिखित सामुदायिक सुधार कार्यक्रमों में से कई को "मध्यवर्ती प्रतिबंध" भी कहा जाता है, क्योंकि गंभीरता की निरंतरता पर वे पारंपरिक परिवीक्षा और जेल के बीच कहीं आएंगे–

अनौपचारिक व्यपवर्तन

कई न्यायालयों ने पाया है कि पहली बार अपराधियों और औपचारिक न्यायालय प्रसंस्करण से छोटे अपराध करने वालों को औपचारिक दोषसिद्धि और दंड के लिए एक लागत प्रभावी विकल्प हो सकता है। वयस्क न्याय प्रणाली में, आस्थगित अभियोजन कार्यक्रमों के लिए पूर्व–परीक्षण व्यपवर्तन 1980 के दशक के दौरान अपेक्षाकृत मामूली मामलों में प्रभावी रूप से हस्तक्षेप करते हुए अभियोजन और परीक्षण के प्रशासनिक और वित्तीय बोझ को कम करने की उसकी क्षमता के लिए लोकप्रिय हो गया।

निलम्बित दंडादेश

सबसे बुनियादी सामुदायिक सुधार कार्यक्रमों में से एक निलंबित दंड है। एक अपराधी जिसे अपेक्षाकृत मामूली अपराध का दोषी ठहराया जाता है और पर्यवेक्षण या कारावास की अवधि का दंड सुनाया जाता है, उसे अन्य परिस्थितियों की संतुष्टि के लंबित रहने के कारण दंड के निलंबन की अनुमति दी जाती है।

पीड़ित–अपराधी मध्यस्थता

पीड़ित–अपराधी मध्यस्थता कार्यक्रम को विवाद समाधान, मध्यस्थता और सुलह कार्यक्रम के रूप में भी जाना जाता है। इस कार्यक्रम प्रतिरूप के पीछे का विचार अपराधियों और पीड़ितों के बीच "विवादों" की अनौपचारिक रूप से मध्यस्थता करके औपचारिक न्यायालय प्रक्रिया से बचना है।

पुनरागमन

वयस्क और किशोर न्याय प्रणाली दोनों में अपराधियों को उनके अपराधों से पीड़ितों को होने वाले नुकसान की भरपाई करने की आवश्यकता होती है। संपूर्ण न्याय प्रणाली को प्रतिशोधात्मक न्याय से दूर और एक पुनर्स्थापनात्मक न्याय प्रतिरूप की ओर ले जाने के तरीके के रूप में पुनरागमन के उपयोग की वकालत की गई है। पुनर्स्थापनात्मक न्याय अवधारणा के अन्तर्गत विधि प्रवर्तन, न्यायालयों और सुधारों का विशेष कार्य

केवल अपराधियों को दंडित करना नहीं है बल्कि पीड़ितों के नुकसान की भरपाई और समुदाय की शांति बहाल करना है।

टिप्पणी

सामुदायिक सेवा

सामुदायिक सेवा कार्यक्रमों में अपराधियों की बारीकी से निगरानी की जाती है क्योंकि वे सामाजिक रूप से उपयोगी और अवैतनिक श्रम करते हैं, जैसे कि सड़क की मरम्मत और सफाई, सार्वजनिक स्थानों की बागबानी और भूनिर्माण, स्थानीय खाद्य भंडार में काम करना, या अन्य विशेष कार्य जो लाभ उठाते हैं अपराधियों के कौशल और रोजगार पृष्ठभूमि का। सामुदायिक सेवा कार्य से प्राप्त आय को अक्सर पीड़ितों को क्षतिपूर्ति भुगतान के रूप में या अपराधियों के पर्यवेक्षण की लागत का भुगतान करने के लिए उपयोग किया जाता है।

पारंपरिक परिवीक्षा

पारंपरिक परिवीक्षा, सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले सामुदायिक सुधार कार्यक्रमों में समुदाय में पर्यवेक्षण की एक परिभाषित अवधि के लिए अधिक प्रतिबंधात्मक वाक्य का निलंबन शामिल है। इस अवधि के दौरान अपराधी समुदाय में रहने, काम करने और स्कूल जाने के लिए स्वतंत्र है। इस स्वतंत्रता के बदले में अपराधी को अदालत के साथ औपचारिक समझौते या अनुबंध के माध्यम से विशिष्ट व्यवहार स्थितियों के लिए सहमत होना चाहिए।

गहन परिवीक्षा

गहन परिवीक्षा पारंपरिक परिवीक्षा के समान है, लेकिन इसमें निकट पर्यवेक्षण और अपराधी के व्यवहार पर अधिक नियंत्रण शामिल है। अपराधियों को अधिक कठोर पर्यवेक्षण अनुबंधों के लिए सहमत होना चाहिए और अपने परिवीक्षा कर्मचारियों के साथ सप्ताह में कई बार या कुछ मामलों में दिन में कई बार मिलना चाहिए।

हाउस अरेस्ट और इलेक्ट्रॉनिक सर्विलांस

इलेक्ट्रॉनिक निगरानी या घर में निगरानी एक तेजी से लोकप्रिय सामुदायिक सुधार कार्यक्रम है क्योंकि यह उच्च स्तर के अपराधी नियंत्रण की पेशकश करता है फिर भी कारावास की अधिकांश लागतों से बचता है। इलेक्ट्रॉनिक निगरानी मुख्य रूप से एक दंड कार्यक्रम है जिसमें निगरानी और नियंत्रण प्राथमिक उद्देश्य हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. दंड के रूप में क्या आधुनिक दंडशास्त्र की शाखा है?
   (क) कारावास (ख) वनवास
   (ग) अज्ञातवास (घ) प्रवास
2. यह किसने कहा है कि अपराधी पैदा नहीं होते बल्कि बनते हैं?
   (क) न्यायविद वोर्टली ने (ख) न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने
   (ग) न्यायमूर्ति के.जी. बालकृष्णन ने (घ) न्यायमूर्ति ए.एन. मुल्ला ने

3.3 जेलों में सुधार कार्यक्रम

टिप्पणी

जेलों के सुधार कार्यक्रमों का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इसके अंतर्गत जेलों पर राष्ट्रीय नीति व कैदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण आदि सम्मिलित हैं।

3.3.1 भारत में जेल सुधारों का इतिहास

स्वतंत्रता पूर्व जेल सुधार : भारत में आधुनिक जेल प्रणाली की शुरुआत 1835 में टीबी मैकाले द्वारा की गई थी। जेल अनुशासन समिति 1836 नामक एक समिति नियुक्त की गई थी जिसने 1838 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस समिति ने कैदियों के लिए सभी मानवीय जरूरतों और सुधारों को खारिज करते हुए उपचार की कठोरता में वृद्धि की सिफारिश की थी। 1836–1838 के बीच मैकाले समिति की सिफारिश के बाद, 1846 से केंद्रीय कारागारों का निर्माण किया गया। भारत में समकालीन जेल प्रशासन इस प्रकार ब्रिटिश शासन की विरासत है।

1864 में, जेल प्रबंधन और अनुशासन की जांच के दूसरे आयोग ने 1836 समिति के समान सिफारिशें कीं, लेकिन इसके अलावा इस आयोग ने कैदियों के लिए आवास, आहार और चिकित्सा देखभाल में सुधार के संबंध में सुझाव दिए।

भारतीय जेल सुधार समिति 1919–20 को जेल सुधारों के लिए उपाय सुझाने के लिए नियुक्त किया गया था, जिसकी अध्यक्षता सर एलेक्जेंडर कार्डियो ने की थी। जेल सुधार के उपाय के रूप में, जेल समिति ने आगे सिफारिश की कि प्रत्येक जेल की अधिकतम सेवन क्षमता उसके आकार और आकार के आधार पर तय की जानी चाहिए।

जेलों के निर्माण के लिए 1946 में जेल सुधार समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने सुझाव दिया कि बाल अपराधियों के साथ अलग व्यवहार किया जाना चाहिए, आधुनिक जेलों का निर्माण किया जाना चाहिए और अपराधियों का वर्गीकरण महिला अपराधी, आदतन अपराधी, विकलांग अपराधी होना चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद जेल सुधार : भारत की स्वतंत्रता के बाद, जेलों के सुधार पर काम तेज हो गया। इसलिए 1956 में परिवहन की सजा को आजीवन कारावास से बदल दिया गया।

1949 में, पकावाशा समिति ने बंदियों से सड़क बनवाने का काम लेने की अनुमति दी और उसके लिए मजदूरी का भुगतान करने का अनुमोदन किया। उसके बाद, 1951 में, डॉ.डब्ल्यू.सी. रेकलेस (तकनीकी विशेषज्ञ) द्वारा जेल सुधारों का अनुमोदन किया। बाद में डॉ. डब्ल्यू.सी. रेकलेस द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर 1957 में अखिल भारतीय जेल नियमावली तैयार करने के लिए समिति नियुक्त की गई।

भारत सरकार ने एक आदर्श जेल नियमावली तैयार करने के लिए 1857 में अखिल भारतीय जेल नियमावली समिति की नियुक्ति की। समिति ने 1960 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति को जेल प्रशासन की समस्याओं की जांच करने और पूरे भारत में समान रूप से अपनाए जाने वाले सुधारों के लिए सुझाव देने के लिए कहा गया था।

जेल सुधार पर अखिल भारतीय समिति 1980–83 का गठन भारत सरकार द्वारा न्यायमूर्ति आनंद नारायण मुल्ला की अध्यक्षता में किया गया था। समिति का मूल उद्देश्य कानूनों, नियमों और विनियमों की समीक्षा करना था।

टिप्पणी

वर्ष 1986 में, एक किशोर न्याय अधिनियम अधिनियमित किया गया था और पर्यवेक्षण गृहों, विशेष गृहों और किशोर गृहों का गठन किया गया था जहां उपेक्षित बच्चों और किशोर अपराधी को भर्ती कराया जा सकता था और किशोर अपराधी को जेल के भीतर नहीं रखा जा सकता था।

1987 में, भारत सरकार ने भारत में महिला कैदियों की स्थिति पर एक अध्ययन करने के लिए न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर समिति की नियुक्ति की।

3.3.2 जेलों पर राष्ट्रीय नीति

भारत सरकार ने 1980 में न्यायमूर्ति ए.एन.मुल्ला के अध्यक्ष के रूप में एक अखिल भारतीय सुधार समिति नियुक्त की। समिति ने भारत में जेलों के आधुनिकीकरण के लिए एक सतत निकाय के रूप में एक राष्ट्रीय जेल आयोग की स्थापना का सुझाव दिया।

समिति ने यह भी सुझाव दिया कि संघ और राज्य स्तर पर जेल प्रशासन के मौजूदा द्वंद्व को दूर किया जाना चाहिए। इसने किशोर अपराधियों को जेलों में कठोर अपराधियों के साथ मिलाने की जघन्य प्रथा पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की सिफारिश की। किशोर कैदियों पर अत्याचार और व्यक्तिगत हमले, जो कुख्यात तिहाड़ जेल कैदी मामले में अधिकारियों के संज्ञान में आए, यानी शीला बरसे बनाम भारत संघ, ए.आई. आर. 1988 एससी 2211 और आगरा प्रोटेक्टिव होम केस ने प्रशासकों के लिए आंखें खोलने का काम किया है। नतीजतन, किशोर न्याय अधिनियम, 1986 के नाम पर अपराधी किशोरों की सुरक्षा और सुरक्षात्मक देखभाल के लिए एक व्यापक कानून बनाया गया, जिसे बाद में किशोर न्याय (बच्चों की सुरक्षा और देखभाल) अधिनियम, 2000 से बदल दिया गया। मुल्ला समिति ने भी मानसिक रूप से विक्षिप्त कैदियों को अलग करने और उन्हें मानसिक शरण में रखने की सिफारिश की।

जेल समिति की एक और सिफारिश वैज्ञानिक और तर्कसंगत आधार पर कैदियों के वर्गीकरण के संबंध में थी। इस उद्देश्य के लिए, कुछ उन्नत देशों ने कैदियों की शिकायतों को तय करने के लिए लोकपाल नियुक्त किया है। भारत में भी इसी तरह की प्रक्रिया अपनाई जा सकती है।

मुल्ला जेल समिति की कुछ अन्य सिफारिशें इस प्रकार थीं–

1. कारागारों की स्थिति में भोजन, वस्त्र, साफ–सफाई, वेंटिलेशन आदि की पर्याप्त व्यवस्था करके सुधार किया जाना चाहिए।
2. कारागार स्टाफ को विभिन्न संवर्गों में उचित रूप से प्रशिक्षित और संगठित किया जाना चाहिए। जेल अधिकारियों की भर्ती के लिए भारतीय जेल और सुधार सेवा नामक एक अखिल भारतीय सेवा का गठन करना उचित होगा।
3. पश्च देखभाल, पुनर्वास और परिवीक्षा को जेल सेवा के एक अभिन्न अंग रूप में जारी रखना चाहिए। दुर्भाग्य से, देश में परिवीक्षा कानून को ठीक से लागू नहीं किया जा रहा है।
4. मीडिया और जनता को समय–समय पर जेलों और संबद्ध सुधारक संस्थानों का दौरा करने की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि जनता को जेलों के अंदर की स्थितियों के बारे में प्रत्यक्ष रूप से जानकारी हो और वे पुनर्वास कार्य में जेल अधिकारियों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार हों।

टिप्पणी

5. विचाराधीन कैदियों को जेल में कम से कम रखा जाना चाहिए और उन्हें दोषी कैदियों से अलग रखा जाना चाहिए। चूंकि, विचाराधीन कैदी जेल की आबादी का एक बड़ा हिस्सा बनाते हैं, इसलिए त्वरित सुनवाई और जमानत प्रावधानों के उदारीकरण से उनकी संख्या को कम किया जा सकता है।

   यह ध्यान दिया जा सकता है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संशोधन और आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा एक नई धारा 436–ए को सम्मिलित करना वास्तव में विचाराधीन कैदियों के बढ़ते ग्राफ को नीचे लाने के लिए एक सकारात्मक कदम है। धारा में प्रावधान है कि जहां एक विचाराधीन व्यक्ति को उस अपराध के लिए निर्दिष्ट कारावास की अधिकतम अवधि के आधे तक की अवधि के लिए हिरासत में रखा गया है, उसे अदालत द्वारा उसके व्यक्तिगत बांड पर जमानत के साथ या बिना रिहा किया जाएगा।

6. सरकार को जेल सुधारों के लिए पर्याप्त संसाधन और धन उपलब्ध कराने का प्रयास करना चाहिए।

न्यायमूर्ति वी.आर.कृष्ण अय्यर की अध्यक्षता में महिला कैदियों पर राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति ने फरवरी 1988 में सरकार को सौंपी अपनी रिपोर्ट में महिलाओं और बाल अपराधियों से निबटने में उनकी विशेष भूमिका को देखते हुए पुलिस बल में अधिक महिलाओं को शामिल करने की सिफारिश की। समाज की बदलती जरूरतों के संदर्भ में महिला पुलिस की कहीं अधिक, महत्वपूर्ण और उपयोगी भूमिका की परिकल्पना करते हुए, समिति ने देखा कि महिला पुलिस में कई स्थितियों को शांत करने, फैलाने और कम करने की अधिक क्षमता है और इसलिए, उनका अधिक से अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। महिलाओं को संयम, धैर्य और धीरज की आवश्यकता वाली गैर–संघर्ष भूमिकाओं में नियोजित किया जा सकता है। महिला पुलिस को विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में किशोर अपराध दस्तों में विशेष भूमिका के साथ, पुलिस व्यवस्था का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। उन्हें मानवीय और संवेदनशील तरीके से आंदोलन और भीड़ के विद्रोह से निबटने और निहत्थे युद्ध की रणनीति पर महारत हासिल करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

3.3.3 कैदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण

भारत में, कैदियों के वर्गीकरण का प्रश्न सबसे पहले 1877 के जेल सम्मेलन द्वारा प्रमुखता से सामने लाया गया था। कैदियों का वर्गीकरण 1894 के कारागार अधिनियम की धारा 27 और 28 के तहत एक वैधानिक आवश्यकता है। उनके कुशल और उद्देश्यपूर्ण प्रशासन के लिए वर्गीकरण समिति ने सिफारिश की कि कैदियों के वर्गीकरण के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए–

1. जहां तक संभव हो, पुरुषों और महिलाओं को अलग–अलग संस्थानों में रखा जाएगा। एक ऐसी संस्था में जो स्त्री और पुरुष दोनों को प्राप्त करती है, महिलाओं को आवंटित पूरा परिसर पूरी तरह से अलग होगा;
2. विचार न किए गए कैदियों को सजायाफ्ता कैदियों से अलग रखा जाएगा;
3. ऋण के लिए कैद व्यक्तियों और अन्य सिविल कैदियों को आपराधिक अपराध के कारण कैद किए गए व्यक्तियों से अलग रखा जाएगा;
4. युवा कैदियों को वयस्कों से अलग रखा जाएगा।

टिप्पणी

वर्गीकरण के सबसे बड़े लाभों में से एक यह है कि यह अलग–अलग आपराधिकता वाले कैदियों के संदूषण के बुरे प्रभावों को रोकता है। वर्गीकरण से जेल प्रशासन को कैदियों की विभिन्न श्रेणियों को उनकी व्यक्तिगत क्षमताओं और सुधार और पुनर्वास की जरूरतों के अनुसार विभिन्न प्रकार के उपचार प्रदान करने में भी मदद मिलेगी। मॉडल कारागार नियमावली में यथा निर्धारित वर्गीकरण के सिद्धांत उद्देश्य हैं:

1. एक व्यक्ति के रूप में अपराधी का अध्ययन करना; उसके आपराधिक व्यवहार के क्रम और उसके द्वारा प्रस्तुत समस्याओं को समझने के लिए;
2. उपचार के उद्देश्य से कैदियों को समरूप समूहों में अलग करना;
3. एक समग्र, संतुलित, एकीकृत और व्यक्तिगत प्रशिक्षण और उपचार कार्यक्रम आयोजित करना;
4. संस्थागत शासन और उपचार के प्रति कैदियों की प्रतिक्रिया की समीक्षा करना और उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप कार्यक्रम को समायोजित करना;
5. सभी संस्थागत गतिविधियों का समन्वय और एकीकरण करना और रचनात्मक संस्थागत अनुशासन की एक प्रणाली विकसित करना; संस्थागत प्रबंधन के विभिन्न चरणों में एक समान निरंतरता बनाए रखना;
6. संस्था के साथ–साथ समुदाय में उपलब्ध संसाधनों और उपचार सुविधाओं का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करना;

कैदियों के साथ सुधारात्मक कार्य में वैज्ञानिक वर्गीकरण एक लाभकारी विकास है। यह प्रत्येक कैदी का अध्ययन करने और बाद में उसकी हिरासत देखभाल, चिकित्सा, मनोरोग, मनोवैज्ञानिक और सुधारात्मक सामाजिक कार्य उपचार और शैक्षिक, व्यावसायिक प्रशिक्षण और कार्य कार्यक्रम आदि से संबंधित एक व्यक्तिगत कार्यक्रम विकसित करने की एक विस्तृत प्रक्रिया है, जो उसकी आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है।

वर्गीकरण समग्र रूप से कैदी की समस्याओं के बारे में सोच–समझकर दृष्टिकोण की अनुमति देता है और यह उपयुक्त अंतराल पर कैदी की वास्तविक प्रगति का अनुसरण करता है। वर्गीकरण कैदियों के कार्यक्रमों को इस तरह से आयोजित करके जेल और बाद की देखभाल के बीच उत्कृष्ट समन्वय को सक्षम बनाता है ताकि उसकी रिहाई को उस बिंदु पर प्रभावित किया जा सके जब उसने जेल में रहने से अधिकतम लाभ प्राप्त किया हो।

बंदियों के वैज्ञानिक वर्गीकरण को आधुनिक कारागार प्रणाली के एक अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है और ऐसा कोई कारण नहीं है कि इसे भारत में जेलों के प्रशासन में नहीं अपनाया जाना चाहिए।

आमतौर पर कैदियों को ऊपर वर्णित कारकों के आधार पर कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। हालांकि, कैदियों की निम्नलिखित श्रेणियों का उल्लेख यहां किया जा सकता है: आदतन और आकस्मिक कैदी, दोषी कैदी, विचाराधीन कैदी, बंदी कैदी, महिला कैदी।

आदतन और आकस्मिक कैदी : आदतन अपराधी वह व्यक्ति होता है जिसने एक ही अपराध को बार–बार किया हो। आदतन अपराधी क़ानून की प्रकृति, दायरा और प्रकार अलग–अलग होते हैं लेकिन आम तौर पर वे तब लागू होते हैं जब किसी व्यक्ति को विभिन्न अपराधों के लिए कम से कम दो बार दोषी ठहराया गया हो। आदतन अपराधी

टिप्पणी

कानून अनिवार्य सजा के लिए प्रदान कर सकते हैं जिसमें न्यूनतम सजा दी जानी चाहिए, या अदालत को उचित सजा निर्धारित करने की अनुमति देने में न्यायिक विवेक की अनुमति दे सकती है। पहली बार एक ही अपराध करने वाले अपराधियों की तुलना में बार–बार अपराधियों पर लंबी जेल की सजा देने की प्रथा कोई नवीनता नहीं है।

एक और प्रकार के अपराधी हैं जो आदतन अपराधियों के बिल्कुल विपरीत हैं जिन्हें आकस्मिक अपराधी कहा जाता है। जबकि आदतन अपराधियों में वे लोग शामिल होते हैं जो बार–बार एक ही अपराध करते हैं, लेकिन आकस्मिक कैदी वह होता है जो पहला अपराधी होता है और जो अपराध में चूक जाता है, इसलिए नहीं कि उसकी आपराधिक मानसिकता है, बल्कि उसके परिवेश, शारीरिक अक्षमता या मानसिक कमी के कारण। हमारी जेल की 90 प्रतिशत से अधिक आबादी में आकस्मिक कैदी शामिल हैं। आदर्श कारागार नियमावली, 2003 के अनुसार आकस्मिक कैदियों को आदतन बंदियों से अलग रखने की आवश्यकता है।

दोषी कैदी : अपराधियों से निबटने के तरीके के रूप में कारावास आदिकाल से प्रचलन में रहा है। हमारे देश का एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण है कि कारावास की सजा तभी उचित होगी जब यह अंततः अपराध के खिलाफ समाज की सुरक्षा की ओर ले जाए। लेकिन जो लोग कैद हैं, वे अपना आधा जीवन जेलों में अपने मुकदमे की प्रतीक्षा में बिताते हैं और वे तब तक आशा खो देते हैं जब तक उन्हें अदालत द्वारा सजा नहीं दी जाती है और अंततः उन्हें सजायाफ्ता कैदी कहा जाता है। मूल रूप से, एक सजायाफ्ता व्यक्ति वह होता है जिसे किसी अपराध का दोषी पाया जाता है और अदालत द्वारा सजा सुनाई जाती है।

विचाराधीन कैदी : आधुनिक जेल प्रणाली की शुरुआत से ही, हमारे देश में विचाराधीन कैदियों को जेलों में रखा जाता है। यदि हमारे देश में विचाराधीन कैदियों के आंकड़ों पर गौर किया जाए तो हम पाएंगे कि 2007 के अंत तक हमारे देश की विभिन्न जेलों में 2,50,727 यूटीपी बंद थे। यूटीपी की यह बड़ी संख्या विभिन्न कारकों का परिणाम है, मुख्य कारक परीक्षणों में देरी है।

जैसा कि वर्किंग ग्रुप कमेटी की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि आपराधिक प्रक्रिया विधेयक, 1970 में कई प्रावधान हैं जो जेलों में विचाराधीन आबादी को कम करने में मदद करेंगे। कारागारों पर राष्ट्रीय नीति के मसौदे में यह भी सुझाव दिया गया है कि विचाराधीन कैदियों को अदालतों के समक्ष समय पर पेश करने का प्रावधान किया जाना चाहिए ताकि उनके मामलों का त्वरित निबटान किया जा सके। परीक्षण प्रक्रियाओं में तेजी लाने के लिए वीडियोकांफ्रेंसिंग सुविधा के माध्यम से यूटीपी के उत्पादन को प्रोत्साहित किया जाएगा।

बंदी कैदी : डिटेन्यू का अर्थ है किसी भी व्यक्ति को हिरासत में लेने का आदेश दिया गया और किसी भी प्राधिकारी द्वारा हिरासत के स्थान के लिए प्रतिबद्ध किया गया। बंदी वे व्यक्ति हैं जो आतंकवादी और अन्य उग्रवाद से संबंधित गतिविधियों में शामिल हैं। एक बंदी कोई साधारण बंदूक चलाने वाला उग्रवादी नहीं है, बल्कि हिंसा के पंथ का प्रचार करने और प्रभावशाली उम्र के युवाओं के दिमाग को प्रदूषित करने की गतिविधियों में लिप्त अवैध आउट–फिट का एक आदर्श लॉग है। एक बंदी की कार्रवाई और गतिविधियाँ कानूनी रूप से स्थापित सरकार को अस्थिर करने और राज्य की सुरक्षा को खतरे में डालने के लिए व्यापक और गहरे प्रभाव वाली हो सकती हैं। इस प्रकार इन कारणों से, इन बंदियों को कट्टर अपराधी माना जाता है।

टिप्पणी

इस प्रकार के कैदियों को मौजूदा जेलों के भीतर उच्च सुरक्षा बाड़ों के रूप में सीमांकित अलग–अलग बाड़ों में रखा जाता है।

महिला कैदी : अपराध अपने आप में एक बीमारी नहीं है, हालांकि यह एक बीमारी के कारण हो सकता है। कानून का उल्लंघन करने वाली महिलाओं के संबंध में यह पूरी तरह सच है। महिला कैदी एक छोटे से अल्पसंख्यक हैं और अक्सर सेवा प्रावधानों के मामले में आबादी का एक उपेक्षित वर्ग हैं। महिला कैदियों को जिन कुछ प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उनमें उनके परिवारों से अलगाव, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य समस्याएं, बच्चे की देखभाल और गर्भावस्था से संबंधित मुद्दे, स्वास्थ्य तक सीमित पहुंच आदि शामिल हैं।

एक प्रशासन का औचित्य मुख्य रूप से अपने मौलिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में उसकी सफलता पर निर्भर करता है अर्थात अपराधी इरोम को गलत काम करने और उन्हें उपयोगी नागरिकों के रूप में सुधारने के लिए, जो कि कैदियों के वैज्ञानिक वर्गीकरण का सार है। कैदियों के वर्गीकरण पर निर्णय अक्सर संस्था के हित पर आधारित होते हैं लेकिन वर्तमान संदर्भ में, यह कैदियों के हित में भी हो गया है, इस तथ्य के आलोक में कि जेलों में कट्टर अपराधी भी हैं जो अन्य कैदियों के जीवन के लिए खतरे के रूप में कार्य कर सकते हैं, जैसे कि कैजुअल, यदि उनके साथ मिलाया जाता है। वर्गीकरण विभिन्न प्रकार के कैदियों को संभालने के लिए एक स्रोत प्रदान करता है जो हमारे देश में विभिन्न जेलों में बंद हैं। यह कई डिग्री की आपराधिकता वाले कैदियों को दूषित करने के दुष्परिणामों को रोकता है। वास्तव में, वर्गीकरण व्यक्तिगत स्तर पर कैदियों को समझने की प्रक्रिया है और इस तरह ऐसे कार्यक्रम शुरू करता है जो उनकी समग्र देखभाल और रखरखाव के लिए आवश्यक हैं जो उनकी आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. भारत में आधुनिक जेल प्रणाली की शुरुआत किसके द्वारा की गई थी?

   (क) कार्डियो (ख) रेकलेस

   (ग) टीबी मैकाले (घ) ए.एन. मुल्ला

4. भारत सरकार ने न्यायमूर्ति ए.एन. मुल्ला की अध्यक्षता में एक अखिल भारतीय सुधार समिति की नियुक्ति कब की?

   (क) 1977 में (ख) 1978 में

   (ग) 1979 में (घ) 1980 में

3.4 जेल उद्योग का आधुनिकीकरण

अपराधियों के पुनर्वास और उन्हें सामान्य जीवन के लिए तैयार करने के लिए एक संस्था के रूप में जेल की उपयोगिता हमेशा एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। जेल की संस्था को बनाए रखने की आवश्यकता पर जोर देते हुए, डॉ परिपूर्णानंद वर्मा ने कहा, कि एक जेल बुराई का प्रतीक है और इसलिए, बुराई करने वाले खुद को 'बुराइयों' के घर के अंदर पूर्ण सामंजस्य में पाते हैं। हालाँकि, यह दावा तथ्य का एक अति सरलीकरण प्रतीत

टिप्पणी

होता है क्योंकि यह अपराधियों की सभी श्रेणियों के लिए अच्छा नहीं है। अपराधियों की काफी बड़ी संख्या है जो अन्यथा अच्छा व्यवहार करते हैं और समाज के सम्मानित वर्ग के व्यक्ति हैं, लेकिन वे क्षणिक आवेग, उत्तेजना या स्थिति और परिस्थितियों के कारण आपराधिकता के शिकार हो जाते हैं। कैदियों का एक और वर्ग है जो अन्यथा निर्दोष हैं, लेकिन न्याय के कुप्रबंध के कारण जेल जीवन की कठोरता को सहन करना पड़ता है। जाहिर है, ऐसे व्यक्तियों को जेल के परिवेश में खुद को समायोजित करना मुश्किल लगता है और जेल के अंदर का जीवन सबसे दर्दनाक और घृणित लगता है।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि कारावास की सजा पाने वाले अधिकांश व्यक्ति कानून का पालन करने वाले नागरिकों के रूप में समाज में लौटना चाहते हैं और केवल कुछ ही असामाजिक व्यक्ति हैं जो अपनी मुक्ति के बाद अपने अराजक तरीके को बदलने का कोई इरादा नहीं रखते है। इसलिए, जेल के जीवन को कम असामान्य बनाने के लिए और उन कैदियों के पुनर्वास के लिए बेहतर अवसर प्रदान करने के लिए जो अच्छा व्यवहार करते हैं और जिन्हें अपने साथी–पुरुषों के लिए खतरनाक नहीं माना जाता है, उन्हें अपने परिवारों से बार–बार मिलने के लिए नियमित अवकाश दिया जाना चाहिए। यह महसूस किया जाना चाहिए कि अपराध का इलाज कैद में नहीं है, बल्कि सजा की कठोरता के बजाय सजा की निश्चितता सुनिश्चित करके त्वरित आपराधिक न्याय में है। इस संदर्भ में, सर रॉबर्ट मार्क द्वारा की गई टिप्पणियों को उद्धृत करना सार्थक होगा, जिन्होंने कहा था कि स्थायी और दृढ़ अपराधी वर्तमान आपराधिक न्याय प्रणाली को पर्याप्त निवारक नहीं मानते हैं और न ही वे कारावास से डरते हैं क्योंकि वे पुलिस, अदालतें, जेल आदि की सीमाओं से अवगत हैं और अपराध को अत्यधिक लाभदायक मानते हैं। भारत में, पेशेवर अपराधी साधन संपन्न संरक्षकों का संरक्षण चाहते हैं और धीमी गति से चलने वाली आपराधिक न्याय प्रणाली का लाभ उठाते हुए, ज्यादातर सजा और जेल से बचने का प्रयास करते हैं।

अपराधियों को जेल भेजने का वास्तविक उद्देश्य उनमें अपराध के प्रति अरुचि पैदा करके उन्हें ईमानदार और कानून का पालन करने वाले नागरिकों में बदलना है। लेकिन वास्तविक व्यवहार में, जेल अधिकारी बल और बाध्यकारी तरीकों के इस्तेमाल से कैदियों में सुधार लाने की कोशिश करते हैं। नतीजतन, कैदियों में परिवर्तन अस्थायी है और केवल उस अवधि तक रहता है जब तक वे जेल में हैं और जैसे ही उन्हें रिहा किया जाता है, वे अक्सर आपराधिक दुनिया में लौट आते हैं। यही कारण है कि आधुनिक प्रवृत्ति कैदियों की मानसिक स्थितियों पर अधिक जोर देने की है ताकि उन्हें समुदाय में सामान्य जीवन के लिए पुनर्वासित किया जा सके। इस उद्देश्य को परिवीक्षा और पैरोल की तकनीकों के माध्यम से सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। जेल अधिकारियों की ईमानदारी, समर्पण और चतुराई भी अपराधी के पुनर्वास की प्रक्रिया में काफी मदद करती है।

भारतीय जेलों में बंद कैदियों की सामान्य स्थिति को देखते हुए एक सुव्यवस्थित कैदी प्रबंधन प्रणाली की सख्त जरूरत है। भारत सरकार ने ई–जेल परियोजना के लिए एक विस्तृत परियोजना–रिपोर्ट तैयार करने के लिए पहले ही एक परियोजना प्रबंधन सलाहकार नियुक्त किया है। चार जेल सॉफ्टवेयर अनुप्रयोग हैं जिन्हें निम्नलिखित द्वारा विकसित किया गया है– (1) राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र; (2) गोवा इलेक्ट्रॉनिक लिमिटेड; (3) टीसी के माध्यम से गुजरात सरकार; और (4) हरियाणा में जेल प्रबंधन प्रणाली के लिए फीनिक्स। इन आवेदनों का मूल्यांकन किया गया और महानिदेशक

(कारागार) और आईजी के एक सम्मेलन में चर्चा की गई, जो 20 अगस्त, 2015 को आयोजित किया गया।

कैदी प्रबंधन प्रणाली यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती है कि सभी केंद्रीय और जिला जेलों के साथ–साथ महिलाओं के लिए जेलें और कैदियों के बेहतर और प्रभावी प्रबंधन के लिए जल्द से जल्द इस प्रणाली को अपनाएं।

टिप्पणी

यदि पश्चिमी जेलों में भीड़भाड़ की समस्या विवाह संबंधों को खोने और उस समाज की हिंसा और यौन वर्जनाओं के आराध्य मूल्यों के कारण है, तो भारतीय जेल इस कारण से बेहतर नहीं हैं कि आर्थिक स्थिति जेल के बेहतर तरीके विकसित करने की अनुमति नहीं देती है। इसलिए, भारत में जेलों के पुनर्गठन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

3.4.1 निजी क्षेत्र की भागीदारी

जेल के कैदी भारत के निजी क्षेत्र के लिए नए श्रमिक कार्यबल के रूप में तेजी से उभर रहे हैं। क्या यह पैनल रिफॉर्म या दोनों में कॉर्पोरेट अवसर है?

21वीं सदी के बाज़ार में, जो किसी उत्पाद की पिछली कहानी बनाता है, यहाँ एक मोड़ हैः फुटबॉल, फ़र्श टाइल, शैम्पू या कार जिस पर आप कार्यबल में एक कैदी को चित्रित कर सकते थे।

भारतीय जेल उद्योग ने राज्य के लिए जेल ब्रांडेड सामान सोफा बनाने के लिए निजी क्षेत्र के लिए काम करना शुरू कर दिया है। हिमालया ड्रग कंपनी और ऑटोमोटिव कंपोनेंट निर्माता स्पार्क मिंडा कॉरपोरेशन से लेकर यूपी के मेरठ और हरियाणा के यमुनानगर में छोटे निर्माताओं तक, निजी क्षेत्र ने आउटसोर्सिंग शुरू कर दी है या जेल की भाषा में नौकरी की सोर्सिंग में जेल की शुरुआत की है।

अल्फाल्फा के लिए हिमालय आपूर्ति श्रृंखला, एक औषधीय पौधा जिसका उपयोग यह कई स्वास्थ्य उत्पादों में करता है, का पता पांच साल पहले कर्नाटक ओपन एयर जेल, बेंगलुरु में स्थापित एक जेल खेती कार्यक्रम से लगाया जा सकता है। बाद में इसे आंध्र प्रदेश की तीन और गोवा की दो जेलों तक बढ़ा दिया गया। हिमालय के सीईओ फिलिप्स हेडन कहते हैं, "हमारी अल्फाल्फा आवश्यकता का पैंतालीस प्रतिशत अनुबंध खेती के माध्यम से प्राप्त किया जाता है, जिसमें से लगभग तीन प्रतिशत जेल खेती कार्यक्रम से आता है।" "हमारा लक्ष्य इस कार्यक्रम से संपूर्ण अल्फाल्फा आवश्यकता को प्राप्त करना है"। तीन महीने पहले, उत्तरी गोवा के कोलवाले सेंट्रल जेल में बंद 20 कैदियों को फार्मा के फील्ड स्टाफ ने खेती और कटाई का प्रशिक्षण दिया था। उन्हें कुशल श्रमिकों के लिए राज्य के वर्तमान दैनिक वेतन 120 रुपये (अर्ध कुशल काम के लिए रुपये आईटीआई) का भुगतान किया जाता है। हिमालय बीज और खाद प्रदान करता है, और फसल को वापस खरीदता है, जो एक अज्ञात कीमत पर सालाना 6.5 से 8 टन प्रति जेल से भिन्न होता है। गोवा के आईजी जेल एल्विस गोम्स कहते हैं, ''अब हम कुछ राजस्व अर्जित कर रहे हैं, हम इस तरह की साझेदारियों का विस्तार करने और वेतन बढ़ाने की योजना बना रहे हैं'' और इसलिए परियोजना के लिए कैल वाले और सदा उप जेल में 10,000 वर्ग मीटर को अलग रखा गया है।

पिछले साल के अंत में पुणे यरवदा सेंट्रल जेल के 30 कैदियों को स्पार्कमाइंडा कोमा द्वारा भर्ती किया गया था, जो एक साल पहले तिहाड़ जेल में इसके सफल

टिप्पणी

संचालन के बाद, ऑटोमोटिव वायरिंग हार्नेस के लिए शुरू हुआ और असेंबली तक था। समूह के मुख्य विपणन अधिकारी एन के तनेजा कहते हैं, "हमने जर्मनी में अपने समकक्षों से विचार उधार लिया था, जिन्होंने कैदियों को नियुक्त किया था।" कंपनी वर्तमान में दोनों सुधारात्मक सुविधाओं में कैदियों को नियुक्त करती है, लेकिन उनका मानना है कि कम से कम 200 के लिए जगह है। "इस साझेदारी में आने से पहले हम इसे अपने ग्राहकों, मारुति सुजुकी और महिंद्रा एंड महिंद्रा द्वारा चलाते हैं, जिन्होंने पहल को मंजूरी दी थी", वे कहते हैं।

अपने दो महीने के प्रशिक्षण से इष्टतम परिणामों के लिए, स्पार्कमाइंडा केवल दोषियों को लंबी अवधि के लिए– पांच साल या उससे अधिक के लिए नियुक्त करता है। जबकि सभी कैदियों को काम का प्रमाण पत्र मिलता है। यरवडा के कैदी 200 रुपये प्रतिदिन कमाते हैं, जिसका एक हिस्सा कैदी कल्याण कोष में जाता है और संस्थान और तिहाड़ के कैदियों को 110 रुपये का मानक वेतन मिलता है। तिहाड़ भी एक अलग मासिक किराए पर स्पार्क मिंडा से उनके परिसर के उपयोग के लिए 12 रुपये प्रति वर्ग फुट की दर से भुगतान करती है।

इस बीच, गुड़गांव से 200 किलोमीटर दूर यमुनानगर जिला जेल में दो दर्जन कैदी एक स्थानीय फर्म के लिए सिरेमिक फर्श टाइल्स का उत्पादन करते हैं। आईजी कहते हैं, ''वे दिन में 8 घंटे में से 6 घंटे 40 रुपये में काम करते हैं।'

तेलंगाना के डीआईजी जेल बताते हैं, "हम पहले ऐसे लोगों का चयन करते हैं जिनके पास कोई काम नहीं है, फिर रुचि रखने वालों लेकिन अकुशल लोगों को लाते हैं।" हैदराबाद स्थित लिंकवेल टेलीसिस्टम के लिए बिजली के मीटर बॉक्स और स्टेनलेस स्टील उद्योगों के लिए स्टील फर्नीचर चेरलापल्ली में केंद्रीय और खुली जेलों के लिए स्रोत हैं।

"हम सुरक्षा जोखिमों, संभावित पर्यावरण प्रदूषण, कैदियों के स्वास्थ्य के लिए जोखिम, उनकी व्यावसायिक योजनाओं और अन्य कारकों के लिए कंपनियों से मिले। हमारे पास मूल्यवान भूमि है और हम ऐसे फॉर्म नहीं चाहते हैं जो केवल हमारी अचल संपत्ति का लाभ उठाना चाहते हैं"। डीआईजी जेल, तेलंगाना पुष्टि करता है।

बंदी श्रम का उल्लेख नहीं है। जेल– दुनिया भर में औद्योगिक परिसर हाल के वर्षों में अधिक जांच के दायरे में रहा है। चीन और अमेरिका में अनुबंधित कंपनियों की उनके शोषणकारी कैदी मजदूरी (प्रति घंटे दो प्रतिशत के रूप में कम) के लिए निंदा की गई है – और करदाता के मुनाफे के लिए, क्योंकि जेल आमतौर पर राज्य द्वारा वित्त पोषित होते हैं। इसके अलावा, कंपनियों को अनुपस्थिति या स्वास्थ्य लाभ और पेंशन के बारे में चिंता करने की ज़रूरत नहीं है।

लंदन स्थित दंडात्मक रिफॉर्म इंटरनेशनल के कार्यक्रम विकास अधिकारी निखिल रॉय का मानना है कि लाभ के मकसद में कुछ भी गलत नहीं है। "यह कैदियों का शोषण है कि हमें हितों की रक्षा करने की आवश्यकता है। इसलिए, मंडेला नियम (कैदियों के इलाज के लिए संयुक्त राष्ट्र के हाल ही में संशोधित मानक न्यूनतम नियम) लाभ से इंकार नहीं करते हैं लेकिन यह स्पष्ट करते हैं कि उन्हें 'अधीनस्थ' नहीं होना चाहिए", रॉय कहते हैं।

टिप्पणी

रूढ़िवादी दृष्टिकोण ने लंबे समय से तर्क दिया है कि कैदी बाजार में न्यूनतम मजदूरी के लायक नहीं हैं क्योंकि राज्य उनके बिस्तर और बोर्ड को प्रायोजित करता है। साथ ही उनका अपराध और कथित अपराध उन्हें समान वेतन अधिकारों से वंचित करता है। इसलिए आय चाहे कितनी भी कम क्यों न हो को एक बोनस के रूप में माना जाना चाहिए। लेकिन सुधारवादी दृष्टिकोण यह है कि कैदियों के पास भी बाहर का समर्थन करने के लिए परिवार होते हैं और कैद में अर्जित एक अच्छी आय न केवल उनके रिश्तेदारों की मदद करेगी बल्कि उन्हें उद्देश्य और सम्मान की भावना भी देगी। तिहाड़ में कुछ मामलों में दोषियों की आय का पच्चीस प्रतिशत पीड़ित के परिवार को दिया जाता है।

लेकिन, भले ही कंपनियां आज जेलों के साथ अपने जुड़ाव को लेकर कम सतर्क हैं, इसे अपना सीएसआर कहते हुए, जेल अधिकारियों को पता है कि उन्हें अभी भी हल्के ढंग से चलना होगा। यदि वे बहुत कठिन हड़ताल करते हैं तो पारिश्रमिक पर मोलभाव करने वाली कंपनियां दूर रहेंगी।

तिहाड़ की पूर्व आईजी जेल किरण बेदी को 90 के दशक में दिल्ली जेल में पीपीपी मॉडल शुरू करने का श्रेय दिया जाता है। आज जेल सुधार एक आंदोलन है और बड़ी कंपनियां चाहती हैं कि इसके साथ उनका जुड़ाव दिखाई दे; पहले वे कम प्रोफ़ाइल रखते थे क्योंकि इसे जबरन काम के रूप में माना जा सकता था।

बदलते समय के संकेत इस भागीदारी में जेलों की बढ़ती संख्या से स्पष्ट हैं। जहां स्पार्क माइंडा नागपुर में भी एक इकाई स्थापित करने की योजना बना रहा है, वहीं हिमालय केरल, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल तक पहुंच रहा है।

3.4.2 सुधारात्मक कार्यक्रम

सन 1946 में जेल सुधार समिति गठित की गई जिस ने सुझाव दिया कि कुछ आदर्श जेल स्थापित की जाए तथा अपराधियों का नए सिरे से वर्गीकरण करके उन्हें बाल अपराधी, वयस्क अपराधी, महिला अपराधी, आकस्मिक अपराधी, मनोरोगी अपराधी आदि श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाए।

सन 1949 में जेल सुधार हेतु गठित पकवासा समिति ने कारावासियों से सड़क निर्माण कार्य में श्रमिकों के रूप में काम लिए जाने की अनुमति दी, श्रमिक कार्य के लिए कारावासियों को मजदूरी दी जाती थी तथा उन पर न्यूनतम नियंत्रण रखा जाता था। कारावधि में कारावासी का आचरण तथा व्यवहार अच्छा रहने पर उसकी सजा में कटौती का प्रावधान भी रखा गया जिसे गुड टाइम अलाउंस कहा गया। समिति की सलाह पर सन् 1949, में भारत में मनोचिकित्सा पद्धति से कैदियों का उपचार करने की पद्धति प्रथम बार प्रारंभ की गई। लखनऊ में एक आदर्श जेल की स्थापना की गई जहां कैदियों को विभिन्न कुटीर उद्योगों में व्यस्त रखा गया। महाराष्ट्र के येरवडा में महिला कारागार की स्थापना की गई। कारागार में केस वर्क पद्धति लागू करके इन्हें अधिक उपचार मूलक बनाए जाने का प्रयास किया गया।

भारत के आधुनिक कारागार में कारावासियों के भोजन, चिकित्सा, व्यायाम, प्रशिक्षण, शिक्षा, मनोरंजन, परिवार जनों से मुलाकात आदि सभी सुविधाओं को उपलब्ध कराया गया है। कारागार में सफाई पर भी उचित ध्यान दिया जाता है।

टिप्पणी

सुधारात्मक पद्धति के दो मूल उद्देश्य है– अभिरक्षात्मक लक्ष्य उद्देश्य एवं पुनर्वास लक्ष्य उद्देश्य।

उपचारात्मक पद्धति का अभिरक्षात्मक लक्ष्य यह होना चाहिए कि बन्दियों को सुरक्षित एवं मानवीय वातावरण में रखा जाए ताकि वह आत्म–चिंतन द्वारा स्वयं ही आपराधिकता से दूर रहने का दृढ़ निश्चय करें। सुधारात्मक पद्धति का पुनर्वास लक्ष्य यह होना चाहिए कि कारावासियों के कारागार से छूटने पर उन्हें समाज में पुनर्स्थापित करके समाज की मूल धारा से जोड़ा जाए ताकि वह सामान्य नागरिक का जीवन व्यतीत कर सकें।

जेल प्रशासन में कई सुधार किए जा सकते हैं, जो मुख्य रूप से हैं: ए–श्रेणी के कैदी एक सप्ताह में चाय, समाचार पत्र, तकिया और 3 गुना मांसाहारी भोजन जैसी विशेष सेवाओं का आनंद लेने के लिए सरकार द्वारा निर्धारित निश्चित राशि जमा करके अपने स्वयं के खर्च को पूरा कर सकते हैं। और अगर वे शाकाहारी हैं तो उन्हें घी, दाल और छाछ परोसा जाएगा। कई कैदी आमतौर पर अपर्याप्त गुणवत्ता और भोजन की मात्रा के बारे में शिकायत करते हैं, जिसे सुधारने की आवश्यकता है। भोजन को बेहतर स्वास्थ्यकर परिस्थितियों में तैयार करने की आवश्यकता होती है।

बंदियों का पुनर्वास तभी सार्थक होगा जब वे रिहा होने के बाद नियोजित हों और उस उद्देश्य के लिए शैक्षिक सुविधाओं को शुरू या उन्नत किया जाना चाहिए। कई जेलों में, कट्टर अपराधियों और महिलाओं सहित कैदियों ने इग्नू और उनके संबंधित राज्य विश्वविद्यालयों द्वारा पेश किए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश लिया था। तब तक मुख्य रूप से पेश किए जाने वाले पाठ्यक्रम बीए, एमए, एमबीए और अन्य स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम हैं। बुनियादी मार्गदर्शन के लिए कैदी 10वीं और +2 की कक्षाओं में भी शामिल हो सकते हैं। कई जेलों में व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने की दृष्टि से एक पूर्ण कंप्यूटर प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किया गया है।

मौजूदा शैक्षिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम और उनका प्रभाव (Existing Educational And Vocational Training Programmes And Their Impact)

2003 में, मॉडल जेल मैनुअल ने कैदियों को शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा, "कैदियों के समग्र विकास के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है ... यह उनके पुनर्वास और आत्मनिर्भरता की ओर ले जाती है ... यह एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा कैदी के ज्ञान, चरित्र और व्यवहार को ढाला जा सकता है। यह एक कैदी को सामाजिक परिवेश और समाज में उसके अंतिम पुनर्वास के साथ तालमेल बैठाने में मदद करता है।" इसी तरह, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने 2004–05 की अपनी वार्षिक रिपोर्ट में व्यापक दिशा–निर्देश जारी किए, जिसमें कहा गया था कि कैदियों को अपने कौशल और समग्र व्यक्तित्व विकास के लिए पठन सामग्री और अन्य शैक्षिक सुविधाओं तक पहुंच होनी चाहिए। इसमें कहा गया है कि प्रत्येक जेल को एक पुस्तकालय का रखरखाव करना चाहिए जो कि बंदियों की संख्या के अनुरूप हो, जिसमें महिला कैदियों के लिए उपयुक्त मनोरंजन और शैक्षिक सामग्री के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा हो या जो युवा या निरक्षर हो सकते हैं। रिपोर्ट

टिप्पणी

में कैदियों की शैक्षिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर शैक्षिक कार्यक्रमों पर अंकुश लगाने की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया। अंत में, इसने कहा कि "पठन सामग्री की सामग्री का आकलन करने में, जेल अधीक्षक को कानून द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए; उसे मनमाने ढंग से अपने विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।"

इन और संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय निकायों द्वारा अन्य सिफारिशों के बावजूद, कैदियों और उनकी प्रकृति के लिए शैक्षिक कार्यक्रम उपलब्ध हैं या नहीं, इस बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। हालांकि राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो अपनी वार्षिक रिपोर्ट में उस वर्ष शैक्षिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों से लाभान्वित होने वाले कैदियों की संख्या के बारे में डेटा जारी करता है, लेकिन इन लाभों को निर्धारित करने के लिए उपयोग किए जाने वाले मीट्रिक के बारे में कोई जानकारी नहीं है। इसके अलावा, संख्या भी काफी कम है, 2018 प्रिज़न स्टैटिस्टिक्स इंडिया ने बताया कि भारत में कुल 466,084 कैदियों में से, 25% से कम ने शिक्षा प्राप्त की और केवल 11% ने व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया, जबकि ऐसे सीएसओ और गैर सरकारी संगठन हैं जो आज शिक्षा के माध्यम से जेल सुधार के मुद्दे पर काम कर रहे हैं, ये कार्यक्रम बड़े पैमाने पर छिटपुट प्रकृति के हैं।

इसलिए, यह अनिवार्य है कि नीति में जेल शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए, दक्षता के लिए मौजूदा कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया जाए, साथ ही देश में प्रत्येक कैदी द्वारा उनका लाभ उठाने के लिए उन्हें बढ़ाया जाए। सर्व शिक्षा अभियान या राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, या यूजीसी जैसी वैधानिक संस्था के समान एक कार्यक्रम जेलों में शिक्षा को अपनी छत्रछाया में ला सकता है ताकि इसका पालन किए जाने वाले पाठ्यक्रम में कैदियों के लिए वास्तविक विश्व लाभ हो। इसी तरह, व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रभावी होना चाहिए और ऐसे कौशल प्रदान करने चाहिए जो जेलों के बाहर की दुनिया में फायदेमंद हों। शैक्षिक और व्यावसायिक दोनों प्रशिक्षण कार्यक्रमों को विभिन्न स्तरों और प्रकार की शिक्षा, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, रुचियों, उम्र, लिंग और कैदियों की क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाना चाहिए। कैदियों को यह चुनने में सक्षम होना चाहिए कि कौन से कार्यक्रम का हिस्सा बनना है, और उनके श्रम के लिए पर्याप्त मजदूरी का भुगतान किया जाना चाहिए। यह केवल तभी होता है जब कैदियों को उनकी कैद समाप्त होने के बाद समाज में पुनः एकीकृत करने के लिए आवश्यक उपकरण दिए जाते हैं, क्या जेल प्रणाली वास्तव में व्यवहार में सुधारात्मक हो सकती है।

सुधारात्मक पद्धति का नई दिल्ली मॉडल

तिहार जेल जिसे तिहाड़ आश्रम भी कहा जाता है। यह भारतीय जेल परिसर दिल्ली में स्थित है और दक्षिण एशिया में सबसे बड़ा जेल परिसर है।

दिल्ली कारागार विभाग दिल्ली सरकार द्वारा संचालित यह जेल 9 केंद्रीय जेलों में से एक है। यह जेल एक सुधारक संस्था के रूप में काम करती है जिसका मुख्य उद्देश्य कैदियों को उपयोगी कौशल शिक्षा और कानून के प्रति सम्मान प्रदान करके समाज में सामान्य सदस्यों के रूप में समावेशित करना है। यहां संगीत चिकित्सा का भी उपयोग होता है जिसमें संगीत प्रशिक्षण सत्र और संगीत कार्यक्रम शामिल रहते हैं।

टिप्पणी

यहां कैदियों द्वारा चलाया गया अपना रेडियो स्टेशन भी है और यहां जेल उद्योग भी होता है।

आईपीएस अधिकारी किरण बेदी के प्रभार के तहत तिहाड़ में कई जेल सुधारों की स्थापना की गई और इसका नाम तिहाड़ आश्रम में बदला गया। उन्होंने कर्मचारियों और कैदियों दोनों के लिए एक विपश्यन ध्यान कार्यक्रम भी शुरू किया। प्रारंभिक कक्षाओं को एसएन गोयंका द्वारा पढ़ाया जाता था और जेल के एक कैदी ने यूपीएससी सिविल सेवा परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

अनेक कैदियों ने दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उच्च शिक्षा जारी रखी। कैदियों के पुनर्वास के लिए उनकी सजा पूरी करने के लिए 2011 में कैंपस प्लेसमेंट कार्यक्रम भी शुरू किया गया।

1961 में तिहाड़ में जेल फैक्ट्री की स्थापना की गई। वर्षों से इसकी गतिविधियों में बढ़ईगिरी, बुनाई ,हथकरघा, पावर लूम, सिलाई, हस्तनिर्मित कागज, वाणिज्य, कला और बेकरी शामिल हैं। 2009 में सार्वजनिक निजी भागीदारी मॉडल का उपयोग करके एक जूता निर्माण इकाई की स्थापना की गई और इस प्रकार ब्रांड 'टीजे' लांच किया गया।

करीब 700 कैदी इन इकाइयों में काम करते हैं और उनकी कमाई का 25 प्रतिशत पीड़ित कल्याण कोष में जमा किया जाता है जो पीड़ितों और उनके परिवारों को मुआवजा प्रदान करता है।

मॉडल जेल मैनुअल 2016 इस बात पर जोर देता है कि कोई भी व्यक्ति कारावासित होने पर अमानव नहीं हो जाता।

कारागार में उसके मानव अधिकारों को वंचित नहीं रखा जाना चाहिए उसकी स्वतंत्रता एवं गतिविधियों पर कुछ सीमा तक रोक लगाई जा सकती है किंतु उसके साथ अमानवीय व्यवहार नहीं किया जा सकता।

जेल नियम पुस्तिका के 32 अध्यायों में जेल से जुड़ी विभिन्न समस्याओं तथा मुद्दों जैसे कैदियों की अभिरक्षा प्रबंधन, चिकित्सीय देखरेख, शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, कौशल विकास आदि का समावेश है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. 'जेल बुराई का प्रतीक है और इसलिए बुराई करने वाले खुद को 'बुराइयों' के घर के अंदर पूर्ण सामंजस्य में पाते हैं।'– यह किसका कथन है?

   (क) डॉ. परिपूर्णानंद वर्मा का (ख) रेकलेस का

   (ग) कार्डियो का (घ) वोर्टली का

6. दिल्ली जेल में 90 के दशक में पीपीपी मॉडल शुरू करने का श्रेय किसे दिया जाता है?

   (क) किरण बेदी को (ख) ए.एन. मुल्ला को

   (ग) कृष्णा अय्यर को (घ) के.जी. बालाकृष्ण को

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (घ)
5. (क)
6. (क)

3.6 सारांश

दंड के रूप में कारावास आधुनिक दंडशास्त्र की शाखा है, क्योंकि यह आदिम समाज में अज्ञात था। 16वीं शताब्दी में कारावास की शुरुआत धीमी रही और 20वीं शताब्दी में यह दंड का प्रमुख हिस्सा बन गया। जेल की आबादी में वृद्धि हुई और चार दीवारों के भीतर अत्यधिक भीड़ ने कई दोषों को जन्म दिया और इस तरह अपराधियों और दंडशास्त्री का ध्यान आकर्षित किया। अपराध–शास्त्र और दंडशास्त्र में शोध अध्ययनों से पता चला है कि प्रतिशोध और प्रतिरोध के आधार पर दंड वांछित परिणाम नहीं देता है और इसलिए, मुख्य ध्यान अपराधियों के सुधार की ओर स्थानांतरित हो गया और सुधार और पुनर्वास प्रक्रिया ने गति प्राप्त की। अपराधी को समाज में वापस लाने के लिए कई सुधारात्मक उपाय शुरू किए गए। एक दृढ़ विश्वास है कि उचित दंड के मूल उद्देश्य का अनुभव कर सकता है, जहां कठोर दंड नकारात्मक परिणामों के साथ पलटाव के लिए बाध्य है।

अपराधियों के सुधार को 'एक बेहतर और अच्छे नागरिक के रूप में समाज में एक आदमी को बहाल करने के प्रयास' के रूप में परिभाषित किया गया है। सुधार का उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक सुधार, उसकी बुद्धि को तेज करना और ईमानदारी की भावना विकसित करना है। सुधारक दर्शनशास्त्र का उद्देश्य अपराधियों का सुधार करना है, और इस दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत, एक गलत कर्ता न केवल दंडित होने वाला अपराधी है, बल्कि एक रोगी को देखभाल के साथ इलाज किया जाना है। यह इस अवधारणा के साथ है कि सुधारात्मक सिद्धांत को दार्शनिकों ने प्लेटो से लेकर वर्तमान युग तक अपनाया है। एक प्रसिद्ध दार्शनिक विक्टर हेग ने एक बार टिप्पणी की थी कि 'एक स्कूल खोलना एक जेल को बंद करना है'। मेरा मतलब यह नहीं है कि यदि संदिग्ध चरित्र के व्यक्ति को शिक्षा दी जाती है और उसे उचित प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वह ईमानदारी से अपनी आजीविका कमाने के लिए सक्षम हो, तो वह अपराध करने से हिचकिचाएगा। दूसरे शब्दों में, यदि एक अपराधी को सामान्य रूप से पुनर्जीवित किया जाता है, तो उसकी आपराधिक प्रवृत्ति विलुप्त हो सकती है या काफी निष्क्रिय हो सकती है।

भारत में आधुनिक जेल प्रणाली की शुरुआत 1835 में टीबी मैकाले द्वारा की गई थी। जेल अनुशासन समिति 1836 नामक एक समिति नियुक्त की गई थी जिसने 1838 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस समिति ने कैदियों के लिए सभी मानवीय जरूरतों और सुधारों को खारिज करते हुए उपचार की कठोरता में वृद्धि की सिफारिश की थी।

1836–1838 के बीच मैकाले समिति की सिफारिश के बाद, 1846 से केंद्रीय कारागारों का निर्माण किया गया। भारत में समकालीन जेल प्रशासन इस प्रकार ब्रिटिश शासन की विरासत है।

टिप्पणी

1864 में, जेल प्रबंधन और अनुशासन की जांच के दूसरे आयोग ने 1836 समिति के समान सिफारिशें कीं, लेकिन इसके अलावा इस आयोग ने कैदियों के लिए आवास, आहार और चिकित्सा देखभाल में सुधार के संबंध में सुझाव दिए।

भारतीय जेल सुधार समिति 1919–20 को जेल सुधारों के लिए उपाय सुझाने के लिए नियुक्त किया गया था, जिसकी अध्यक्षता सर एलेक्जेंडर कार्डियो ने की थी। जेल सुधार के उपाय के रूप में, जेल समिति ने आगे सिफारिश की कि प्रत्येक जेल की अधिकतम क्षमता उसके आकार के आधार पर तय की जानी चाहिए।

जेलों के निर्माण के लिए 1946 में जेल सुधार समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने सुझाव दिया कि बाल अपराधियों के साथ अलग व्यवहार किया जाना चाहिए, आधुनिक जेलों का निर्माण किया जाना चाहिए और अपराधियों का वर्गीकरण महिला अपराधी, आदतन अपराधी, विकलांग अपराधी होना चाहिए।

अपराधियों के पुनर्वास और उन्हें सामान्य जीवन के लिए तैयार करने के लिए एक संस्था के रूप में जेल की उपयोगिता हमेशा एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। जेल की संस्था को बनाए रखने की आवश्यकता पर जोर देते हुए, डॉ परिपूर्णानंद वर्मा ने कहा, कि एक जेल बुराई का प्रतीक है और इसलिए, बुराई करने वाले खुद को 'बुराइयों' के घर के अंदर पूर्ण सामंजस्य में पाते हैं। हालाँकि, यह दावा तथ्य का एक अति सरलीकरण प्रतीत होता है क्योंकि यह अपराधियों की सभी श्रेणियों के लिए अच्छा नहीं है। अपराधियों की काफी बड़ी संख्या है जो अन्यथा अच्छा व्यवहार करते हैं और समाज के सम्मानित वर्ग के व्यक्ति हैं, लेकिन वे क्षणिक आवेग, उत्तेजना या स्थिति और परिस्थितियों के कारण आपराधिकता के शिकार हो जाते हैं। कैदियों का एक और वर्ग है जो अन्यथा निर्दोष हैं, लेकिन न्याय के कुप्रबंध के कारण जेल जीवन की कठोरता को सहन करना पड़ता है। जाहिर है, ऐसे व्यक्तियों को जेल के परिवेश में खुद को समायोजित करना मुश्किल लगता है और उन्हें जेल के अंदर का जीवन सबसे दर्दनाक और घृणित लगता है।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि कारावास की सजा पाने वाले अधिकांश व्यक्ति कानून का पालन करने वाले नागरिकों के रूप में समाज में लौटना चाहते हैं और केवल कुछ ही असामाजिक व्यक्ति हैं जो अपनी मुक्ति के बाद अपने अराजक तरीके को बदलने का कोई इरादा नहीं रखते है। इसलिए, जेल के जीवन को कम असामान्य बनाने के लिए और उन कैदियों के पुनर्वास के लिए बेहतर अवसर प्रदान करने के लिए जो अच्छा व्यवहार करते हैं और जिन्हें अपने साथी–पुरुषों के लिए खतरनाक नहीं माना जाता है, उन्हें अपने परिवारों से बार–बार मिलने के लिए नियमित अवकाश दिया जाना चाहिए। यह महसूस किया जाना चाहिए कि अपराध का इलाज कैदियों की कैद में नहीं है, बल्कि सजा की कठोरता के बजाय सजा की निश्चितता सुनिश्चित करके त्वरित आपराधिक न्याय में है। इस संदर्भ में, सर रॉबर्ट मार्क द्वारा की गई टिप्पणियों को उद्धृत करना सार्थक होगा, जिन्होंने कहा था कि स्थायी और दृढ़ अपराधी वर्तमान आपराधिक न्याय प्रणाली को पर्याप्त निवारक नहीं मानते हैं और न ही वे कारावास से डरते हैं क्योंकि वे पुलिस, अदालतें, जेल आदि की सीमाओं से अवगत हैं और अपराध को

अत्यधिक लाभदायक मानते हैं। भारत में, पेशेवर अपराधी साधन संपन्न संरक्षकों की संरक्षण चाहते हैं और धीमी गति से चलने वाली आपराधिक न्याय प्रणाली का लाभ उठाते हुए, ज्यादातर सजा और जेल से बचने का प्रयास करते हैं

टिप्पणी

3.7 मुख्य शब्दावली

- **कारावास** : कैद।
- **वांछित** : इच्छित।
- **विलुप्त** : गायब।
- **निष्कर्ष** : परिणाम।
- **मृत्युदंड** : मौत की सजा।
- **गुंजाइश** : संभावना।
- **जेल** : कैदखाना, बंदीगृह।

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कारावास से आप क्या समझते हैं?
2. न्यायिक दृष्टिकोण क्या है?
3. कैदियों का आध्यात्मिक प्रशिक्षण क्या होता है?
4. मुल्ला जेल समिति की प्रमुख सिफारिशें क्या हैं?
5. तिहाड़ जेल की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अपराधियों के सुधार का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. समुदाय आधारित सुधार की समीक्षा कीजिए।
3. भारत में जेल सुधारों के इतिहास का वर्णन कीजिए।
4. कैदियों के वर्गीकरण की विवेचना कीजिए।
5. जेलों के आधुनिकीकरण के प्रमुख बिंदुओं पर प्रकाश डालिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Taft, D. R. and R.W England. (1964).
2. *Criminology*. New York: Macmillan, 1958.
3. Fox, V. *Introduction to Criminology,* 2nd ed. New Jersey: Prentice Hall, 1985.

टिप्पणी

4. Sutherland, E.H. and D.R. Cressey. *Principles of Criminology,* 7th ed. Chicago: Lippincott, 1966.
5. Barnes, H. E. and N. K. Teeters. *New Horizons in Criminology.* New Jersey: Prentice Hall, 1959.
6. Ashworth Andrew and Mike Redmayne. *The Criminal Process.* USA: Oxford University Press.
7. Cross and Wilkins. *Outlines of the law of Evidence.* USA: Oxford University Press.
8. Hampton, Celia. *Criminal Procedure*. London: Sweet & Maxwell.
9. Lucia Zedner. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
10. Sanders Andrew, Richard Young and Mandy Burton. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
11. Sarkar M.C., S.C. Sarkar and Prabas C Sarkar. *Law of Evidence.* New Delhi: LexisNexis Publisher.
12. Moberly, Hamilton, Sir Walter. 1968. *The Ethics of Punishment*. Faber and Faber.
13. Shah, H. Jyotsna. 1973. *Probation Services in India.* N. M. Tripathi.
14. Bhattacharya, B. K. 1958. *Prisons*. S.C. Sarkar.
15. Cross, Rupert. 1981. *The English Sentencing System.* Butterworth (Publishers) Limited.
16. Stewart, S. W. 1969. *A Modern View of Criminal Law*. Pergamon Press.
17. Fitzgerald, John, Patrick. 1962. *Criminal Law and Punishment.* Clarendon Press.

इकाई 4 सुधारात्मक प्रशासन की समस्याएं

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 प्राचीन जेल मैनुअल और जेल अधिनियम
  4.2.1 भारतीय समितियां और अधिनियम
  4.2.2 बाद के घटनाक्रम
4.3 कारागार में कैदियों की भीड़ की समस्या
  4.3.1 हिरासत की मानसिकता
  4.3.2 जेल अभिरक्षा में बंदियों को यातनाएं
4.4 पुलिस, अभियोजन, न्यायपालिका और जेल के बीच अंतर–एजेंसी समन्वय की कमी
4.5 मानवाधिकार और जेल प्रबंधन
  4.5.1 मानवाधिकार के मुद्दे एवं दायित्व
  4.5.2 जेल अधिकारियों की भूमिका
  4.5.3 सुधार की बाधाएं और संभावनाएं
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

1919–20 में, जेल सुधारों का सुझाव देने के लिए नियुक्त भारतीय जेल सुधार समिति की अध्यक्षता सर अलेक्जेंडर कार्ड्यू ने की थी। समिति ने दुनिया भर में जेल की स्थिति को देखने के बाद एक अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य पर एक स्टैंड लिया और एक निष्कर्ष निकाला कि जेलों का न केवल एक निवारक प्रभाव होना चाहिए, बल्कि एक सुधारात्मक दृष्टिकोण भी होना चाहिए। समिति ने जेल में बंदियों के लिए एक सुधारात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल दिया और जेलों में शारीरिक दंड के उपयोग को खारिज कर दिया। इसने उत्पादक गतिविधियों में एक कैदी के उपयोग का सुझाव दिया। समिति ने पुनर्वास के उद्देश्य से रिहा किए गए कैदियों के लिए पश्च–देखभाल कार्यक्रमों की आवश्यकता को रेखांकित किया।

प्रस्तुत इकाई में प्राचीन जेल मैनुअल तथा जेल अधिनियम की विवेचना की गई है तथा कारागार में कैदियों की भीड़, हिरासत की मानसिकता, मानवाधिकार एवं जेल प्रबंधन तथा सुधार की बाधाओं और संभावनाओं जैसे मुद्दों का अध्ययन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्राचीन जेल मैनुअल और जेल अधिनियम को समझ पाएंगे;
- जेल सुधारों से संबंधित विभिन्न समितियों के बारे में जान पाएंगे;

टिप्पणी

- कारागार में कैदियों की भीड़ की समस्या का अवलोकन कर पाएंगे;
- पुलिस, अभियोजन, न्यायपालिका और जेल के बीच अंतर–एजेंसी समन्वय की कमी को जान पाएंगे;
- मानवाधिकार और जेल प्रबंधन का विश्लेषण कर पाएंगे;
- भारतीय कारागार व्यवस्था में सुधार की बाधाओं और संभावनाओं की समीक्षा कर पाएंगे।

4.2 प्राचीन जेल मैनुअल और जेल अधिनियम

भारत में अत्याधुनिक जेल की शुरुआत 1835 में टीबी मैकाले द्वारा की गई। विशिष्ट जेल अनुशासन समिति के लिए एक समिति को प्रत्यायोजित किया गया, जिसने 1838 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति ने हर एक परोपकारी आवश्यकता और परिवर्तनों को खारिज करते हुए उपचार की विस्तृत पूर्णता निर्धारित की। बंदियों के लिए 1836–1838 के बीच मैकाले समिति के प्रस्तावों के बाद, 1846 से केंद्रीय कारागार विकसित किए गए।

भारत में समकालीन कारागार संगठन अंग्रेजों की विरासत है। यह इस विचार को ध्यान में रखते हुए है कि जब तक अनुशासन के अभिशाप के लिए महान हार्डवेयर न हो, तब तक सबसे अच्छे आपराधिक कोड का किसी समूह के लिए बहुत कम उपयोग हो सकता है। 1864 में, जेल प्रबंधन और अनुशासन की जांच के दूसरे आयोग ने 1836 समिति के बारे में तुलनात्मक सुझाव दिए। इसके अलावा, इस आयोग ने कैदियों की सुविधा, आहार, कपड़े, बिस्तर और चिकित्सीय देखभाल में सुधार के संबंध में कुछ सिफारिशें कीं।

1888 में, चौथा जेल आयोग नामित किया गया था। इसके सुझाव के आधार पर एक समेकित जेल बिल तैयार किया गया। जेल प्रशासन पर विशेषज्ञों की एक बैठक द्वारा जेल अपराधों और अनुशासन के संबंध में व्यवस्थाओं का असाधारण विश्लेषण किया गया। 1894 में, भारत के गवर्नर जनरल की सहमति से मसौदा प्रभार कानून बनने की ओर बढ़ गया।

कारागार अधिनियम, 1894

जेल प्रबंधन और प्रशासन के संबंध में कारागार अधिनियम, 1894 एकमात्र समेकित ढांचा है जो भारत के सभी हिस्सों में संचालित होता है। यह एक एंटीडिलुवियन अधिनियम है जो बिना किसी संशोधन के संचालित होता है। हालाँकि, यह अधिनियम कुछ मुद्दों को हल करने में विफल रहा। अधिनियम में खामियों को बाद में अपराधियों के पुनर्वास और सुधार से संबंधित भारतीय जेल समिति 1919–1920 की रिपोर्ट में संबोधित किया गया था, जिसे जेल प्रशासक के प्रमुख उद्देश्य के रूप में मान्यता दी गई थी।

भारतीय जेल सुधार समिति

जेल सुधार के उपाय के रूप में, जेल समिति ने आगे सुझाव दिया कि प्रत्येक जेल की अधिकतम सेवन क्षमता उसके आकार और आकार के आधार पर निर्धारित की जानी

चाहिए। इस बीच, सजा की एक विधि के रूप में एकान्त कारावास को बनाए रखने के लिए एक चिल्लाहट थी।

टिप्पणी

भारत सरकार अधिनियम, 1935

भारत सरकार अधिनियम, 1935 एक महत्वपूर्ण विधायी ढांचा है जिसके परिणामस्वरूप प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण और प्रशासन के तहत जेलों के विषय को केंद्र सूची से स्थानांतरित कर दिया गया। इसने राष्ट्रीय स्तर पर एक समान जेल नीति की संभावना को और भी कम कर दिया। इसके बाद राज्यों ने अपनी खुद की जेल नीतियां, नियम और प्रक्रिया शुरू की।

द रेकलेस रिपोर्ट, 1951

भारत सरकार ने जेल प्रशासन पर एक अध्ययन शुरू करने और नीतिगत सुधारों की सिफारिश करने के लिए वर्ष 1951 में सुधार कार्य पर संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञ डॉ. रेकलेस को आमंत्रित किया। उन्होंने "भारत में जेल प्रशासन" शीर्षक वाली इस रिपोर्ट के माध्यम से जेलों को सुधार केंद्रों में बदलने की दलील दी। इसके अलावा, उन्होंने पुराने मैनुअल में संशोधन करने पर भी जोर दिया।

4.2.1 भारतीय समितियां और अधिनियम

स्वतंत्रता के बाद के युग के दौरान भारत में जेल प्रशासन से संबंधित समस्याओं से निबटने के लिए विभिन्न समितियों और अधिनियमों का गठन किया गया है, जो निम्नलिखित सभी महत्वपूर्ण कृत्यों में संक्षिप्त अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

अखिल भारतीय जेल नियमावली समिति

भारत सरकार ने वर्ष 1957 में एक आदर्श जेल नियमावली तैयार करने के लिए अखिल भारतीय जेल नियमावली समिति नियुक्त करने की स्वीकृति प्रदान की। समिति ने वर्ष 1960 में अपना सबमिशन निर्धारित किया। रिपोर्ट ने एक समान नीति बनाने और जेल प्रशासन, परिवीक्षा, बाद की देखभाल, किशोर और रिमांड होम, प्रमाणित और सुधारात्मक स्कूल, बोर्स्टल स्कूल और सुरक्षात्मक घरों, दमन से संबंधित नवीनतम तरीकों के लिए जबरदस्त अनुरोध किया। इसके अलावा, रिपोर्ट में सुधार कार्य के लिए कानूनी आधार प्रदान करने के लिए 1894 के शताब्दी पुराने कारागार अधिनियम में संशोधन का सुझाव दिया गया था।

मॉडल जेल मैनुअल

समिति ने आदर्श जेल नियमावली तैयार की और इसे लागू करने के लिए 1960 में भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। मैनुअल वह आधार है जिस पर वर्तमान भारतीय जेल प्रबंधन को विनियमित किया जाता है। मॉडल जेल मैनुअल ने वर्ष 1972 में गृह मंत्रालय, भारत सरकार के लिए जेलों पर एक कार्यदल नियुक्त करने का मार्ग प्रशस्त किया।

जेलों पर कार्यदल

1972 में, भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने कारागारों पर एक कार्यदल नियुक्त किया जिसने 1973 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस कार्यदल ने अपनी रिपोर्ट में कारागारों पर एक राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

(1) सजा नीति के उपाय के रूप में कारावास के विकल्पों का प्रभावी उपयोग करना।

(2) जेल कर्मियों के उचित प्रशिक्षण और उनकी सेवा शर्तों में सुधार की वांछनीयता पर जोर दिया।

(3) अपराधियों को वैज्ञानिक रूप से वर्गीकृत करना और उनका पालन करना और अनुवर्ती और देखभाल के बाद की प्रक्रियाओं के सिद्धांत निर्धारित करना।

(4) जेलों का विकास और सुधारात्मक प्रशासन अब राष्ट्रीय विकास प्रक्रिया से अलग नहीं रहना चाहिए और जेल प्रशासन को राष्ट्रीय नियोजन प्रक्रिया के सामाजिक रक्षा घटकों का एक अभिन्न अंग माना जाना चाहिए।

(5) जेल प्रशासन के विकास के लिए प्राथमिकता के क्रम की पहचान की।

(6) जेल प्रशासन के कुछ पहलुओं को पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल किया गया है।

(7) कारागारों और संबद्ध संस्थाओं के विषय को समवर्ती सूची में शामिल करने के लिए संविधान में एक संशोधन लाया गया, केंद्र और राज्यों द्वारा उपयुक्त जेल कानून का अधिनियमन, और राज्य जेल नियमावली का संशोधन किया गया।

मुल्ला समिति

1980 में, भारत सरकार ने जस्टिस मुल्ला की अध्यक्षता में जेल सुधार पर एक समिति का गठन किया। मुल्ला समिति का मूल उद्देश्य समाज की रक्षा और अपराधियों के पुनर्वास के समग्र उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कानूनों, नियमों और विनियमों की समीक्षा करना था। मुल्ला समिति ने 1983 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। अखिल भारतीय जेल समिति जेल प्रशासन से संबंधित कानूनी ढांचे पर राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के बीच संतुलन लाने पर ध्यान केंद्रित करती है।

समिति ने भारत में जेलों का आधुनिकीकरण करने के लिए एक स्थायी निकाय के रूप में एक राष्ट्रीय कारागार आयोग की स्थापना का सुझाव दिया। समिति ने यह भी प्रस्ताव दिया कि संघ और राज्य स्तर पर जेल प्रशासन के मौजूदा द्वंद्व को हटा दिया जाना चाहिए। इसने किशोर अपराधियों को जेलों में कठोर अपराधियों के साथ जोड़ने की नृशंस प्रथा पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की सिफारिश की। समिति ने मानसिक रूप से विक्षिप्त कैदियों को अलग करने और उन्हें मानसिक शरण में रखने की भी सिफारिश की। जेल समिति की एक अन्य सिफारिश वैज्ञानिक और तर्कसंगत आधार पर कैदियों के वर्गीकरण की तुलना करने की थी।

मुल्ला समिति की कुछ प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार हैं–

- भोजन, वस्त्र, साफ–सफाई, वायु संचार आदि की पर्याप्त व्यवस्था करके कारागारों की स्थिति में सुधार किया जाना चाहिए।
- जेल कर्मचारियों को उचित रूप से प्रशिक्षित और विभिन्न संवर्गों में संगठित किया जाना चाहिए। जेल अधिकारियों की भर्ती के लिए भारतीय जेल और सुधार सेवा नामक अखिल भारतीय सेवा का गठन करना उचित होगा।
- देखभाल के बाद, पुनर्वास और परिवीक्षा जेल सेवा का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। दुर्भाग्य से, देश में परिवीक्षा कानून को ठीक से लागू नहीं किया जा रहा है।

टिप्पणी

- मीडिया और जनता को समय–समय पर जेलों और संबद्ध सुधारक संस्थानों का दौरा करने की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि जनता को जेलों के अंदर की स्थितियों के बारे में प्रत्यक्ष रूप से जानकारी हो और वे पुनर्वास कार्य में जेल अधिकारियों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार हों।
- जेल में विचाराधीन कैदियों के ठहरने को कम से कम किया जाना चाहिए और उन्हें दोषी कैदियों से अलग रखा जाना चाहिए। चूंकि विचाराधीन कैदी जेल की आबादी का एक बड़ा हिस्सा बनाते हैं, इसलिए त्वरित सुनवाई और जमानत प्रावधानों के उदारीकरण से उनकी संख्या को कम किया जा सकता है।

कृष्णा अय्यर समिति

भारत सरकार ने 1987 में भारत में महिला कैदियों की दुर्दशा पर एक अध्ययन करने के लिए कृष्णा अय्यर समिति की नियुक्ति की। इसने महिलाओं और बाल अपराधियों को नियंत्रित करने में उनकी विशेष भूमिका को ध्यान में रखते हुए पुलिस बल में अधिक महिलाओं को शामिल करने की सिफारिश की है। समिति ने अपनी रिपोर्ट वर्ष 1988 में भारत सरकार को सौंपी।

4.2.2 बाद के घटनाक्रम

राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य, में सर्वोच्च न्यायालय ने जेल कानूनों पर एक एकीकृत राष्ट्रीय समेकित ढांचा लाने और एक मसौदा मॉडल जेल मैनुअल तैयार करने के निर्देश दिए, बाद में पुलिस अनुसंधान और विकास ब्यूरो में एक समिति का गठन किया गया (बीपीआर एंड डी)।

1999 में, भारत सरकार द्वारा जेल अधिनियम, 1894 को बदलने के लिए एक मसौदा मॉडल जेल प्रबंधन विधेयक परिचालित किया गया था, लेकिन यह बिल अभी भी अपनी जगह खोजने के लिए लंगड़ा है।

जेल सुधार पर अखिल भारतीय समिति (1980–1983), भारत का सर्वोच्च न्यायालय और महिला सशक्तिकरण समिति (2001–2002) सभी ने जेल कानूनों के व्यापक संशोधन की आवश्यकता पर जोर दिया है, लेकिन संशोधन की प्रक्रिया और कार्यान्वयन का भविष्य खेदजनक है।

समसामयिक जेलों में समस्याएं और अधूरी जरूरतें

भारत का संविधान सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में पुलिस के साथ जेलों को रखता है। जेलों के आधुनिकीकरण या उनके प्रशासन को अद्यतन करने की वस्तुतः कोई जिम्मेदारी केंद्र सरकार की नहीं है। यहां तक कि पंचवर्षीय योजनाएं भी, सामान्य रूप से आपराधिक न्याय क्षेत्र और विशेष रूप से जेल प्रशासन को बहुत कम प्राथमिकता प्रदान करती हैं। प्रशासकों द्वारा एक निम्न–मुद्दे के रूप में माने जाने के अलावा, भारत में जेल प्रशासन निम्नलिखित समस्याओं और अधूरी जरूरतों से ग्रस्त है–

धन की कमी जेलों को यथास्थिति में रखती है और प्रौद्योगिकी के मामले में अद्यतन करने में असमर्थ है। जेल का बजट बंदियों की जनसंख्या के अनुपात में आंकड़ों में आनुपातिक वृद्धि का संकेत नहीं देता है।

टिप्पणी

- सरकार कई समितियों और आयोगों की नियुक्ति करती है, लेकिन उनकी रिपोर्ट पर केवल चर्चा की जाती है और उसे ठंडे बस्ते में रखा जाता है, (शिक्षाविदों द्वारा पढ़े जाने के लिए)।
- सरकारी उपेक्षा के साथ बंदियों के प्रति सामाजिक अवमानना के कारण कारागार प्रशासन में अनियमितताओं और कदाचारों पर कम ध्यान दिया जा रहा है।
- राज्य का विषय होने के कारण भारत में जेल व्यवस्था को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जाता है। राज्य सरकारें केवल तदर्थ तरीके से कार्य करती हैं न कि संरचित और एकीकृत तरीके से।
- जेलों की संरचना और कानूनी व्यवस्था अप्रचलित हो गई है, जो आज उद्देश्य की पूर्ति नहीं करती है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अपराधियों के लिए जेल की अनुपस्थिति, (जिस स्थिति में, राज्यों को अक्सर एक–दूसरे से लड़ते हुए देखा जाता है) और जेलों में भीड़भाड़।
- व्यावसायीकरण और विशेषज्ञता का स्तर बहुत कम है और अधिकारियों में भ्रष्टाचार की व्यापकता बहुत अधिक है।
- अपर्याप्त पुनर्वास कार्यक्रम और व्यावसायिक प्रशिक्षण सुविधाएं।
- कैदियों द्वारा जेल सुविधाओं का मनमाना उपयोग, और पैरोल, परिवीक्षा, देखभाल के बाद के लाभ, पारिवारिक संपर्क आदि से संबंधित जेल नियमों का दुरुपयोग।

कुल मिलाकर, बहुत से प्रशासकों द्वारा खुद को दी गई निम्न प्राथमिकता जेल उप–संस्कृति के बिगड़ते हुए, मानवाधिकारों के अनुकूल देश होने के लंबे दावों के साथ समझौता कर रही है और कैदियों की दुर्दशा को और बढ़ा रही है। जेल के पहले, अंदर और बाद में अपराधियों का अनुभव बहुत अलग नहीं होता है और वे फिर से अपराध का पुनरावर्तन करने लगते हैं। जेल में रहने से व्यक्ति की आपराधिकता सुधरने की बजाय बढ़ जाती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, सभी ऐतिहासिक, दार्शनिक और विकासात्मक घटनाओं के बावजूद, भारत में जेल प्रणाली जेल की आबादी, जो लगातार बढ़ रही है, की देखभाल करने वाली एक पुरानी संस्था बनी हुई है।

जेल सुधार में अगला कदम

भारत में जेल प्रशासन को आपराधिक न्याय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होने के उपरान्त भी उपेक्षा और मान्यता की कमी का सामना करना पड़ा है। पुलिस के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, अदालतों के बारे में थोड़ा कम और जेलों और कैदियों के बारे में लगभग कुछ भी नहीं। सामाजिक सरोकार के इस अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र पर जनता का ध्यान केंद्रित करने के लिए जेल प्रशासन की समस्या को उजागर करने की आवश्यकता है। जेल प्रशासन पर तनाव को कम करने और "अंधेरे और हल्के कोनों" संस्थानों के बजाय वास्तविक जेलों को सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित कुछ उपाय किए जा सकते हैं–

- देश भर में जेल नियमों में बुनियादी एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए मॉडल जेल प्रणाली विकसित की जानी चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, जेल प्रशासन को सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में स्थानांतरित किया जाना चाहिए ताकि केंद्र सरकार मॉडल कानून के साथ आ सके, जिसे राज्य आवश्यक संशोधनों के बाद अपना सकते हैं।

टिप्पणी

- केंद्र सरकार अपनी राष्ट्रीय जेल एजेंसियों की स्थापना कर सकती है, जैसे कि पुलिस प्रशासन, सीबीआई, सीआरपीएफ आदि में है, जो कट्टर और हिंसक कैदियों और अन्य विशेष श्रेणियों के कैदियों को संभालने के लिए आधुनिक सुविधाओं से लैस होगी।
- जेल प्रशासकों के प्रशिक्षण और विशेषज्ञता पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाना चाहिए और उनमें कैदी के अधिकारों के अनुकूल दृष्टिकोण को शामिल किया जाना चाहिए। इससे जेलों के कार्मिक प्रशासन में सुधार होगा।
- विभिन्न समितियों की रिपोर्ट को क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त धनराशि सुनिश्चित की जानी चाहिए। यह केंद्र सरकार द्वारा जेल प्रशासन की जिम्मेदारी साझा करने के परिणामों में से एक हो सकता है। सरकार को जेल सुधारों के लिए पर्याप्त संसाधन और धन उपलब्ध कराने का प्रयास करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

1. भारत में अत्याधुनिक जेल की शुरुआत कब हुई?

   (क) 1835 में (ख) 1836 में

   (ग) 1837 में (घ) 1838 में

2. भारत का संविधान कौन–सी अनुसूची की राज्य सूची में पुलिस के साथ जेलों को रखता है?

   (क) चौथी (ख) पांचवीं

   (ग) छठी (घ) सातवीं

4.3 कारागार में कैदियों की भीड़ की समस्या

भारत के अधिकांश कारागारों में कैदियों की संख्या निर्धारित संख्या से बहुत अधिक है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) द्वारा 2020 के लिए जारी अपनी जेल सांख्यिकी भारत रिपोर्ट (पीएसआईआर) में नवीनतम आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, देश में 1,306 जेल हैं, जिनमें से 565 उप जेल, 413 जिला जेल, 145 केंद्रीय जेल, 88 खुली जेल, 44 विशेष जेल, 29 महिला जेल, 19 बोरस्टल स्कूल और 3 उपरोक्त जेलों के अतिरिक्त अन्य जेल शामिल हैं।

जेलों की वास्तविक क्षमता 2019 में 4,00,934 से बढ़कर 2020 में 4,14,033 (प्रत्येक वर्ष के 31 दिसंबर को) हो गई है, जिसमें 3.3% की वृद्धि हुई है। विभिन्न जेलों में बंद कैदियों की संख्या 2019 में 4,81,387 थी, जो 2020 में बढ़कर 4,88,511 हो गई है (प्रत्येक वर्ष के 31 दिसंबर को), इस अवधि के दौरान 1.5% की वृद्धि हुई है।

इस रिपोर्ट (पीएसआईआर) के नवीनतम आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, हर चार व्यक्तियों में से तीन, यानी भारत की जेलों में बंद सभी व्यक्तियों में से 76.1 प्रतिशत विचाराधीन हैं।

31 दिसंबर 2020 तक भारत के कुल 4,88,511 कैदियों में से, कथित तौर पर 3,71,848 व्यक्ति, या 76.1 प्रतिशत कैदी विचाराधीन थे। शेष 23 प्रतिशत (1,12,589 कैदी) अपराधी थे और 0.7 प्रतिशत (3,590 कैदी) बंदी थे।

टिप्पणी

2015 से 2020 तक के आंकड़ों पर करीब से नज़र डालने से पता चलता है कि पिछले पांच वर्षों में जेल की आबादी में 16.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, दोषियों की संख्या में वास्तव में 16.1 प्रतिशत की कमी आई है। इसके विपरीत, विचाराधीन कैदियों की संख्या में वास्तव में 31.8 प्रतिशत की तेजी से वृद्धि हुई है।

कारागार में कैदियों की भीड़ का दुष्परिणाम यह होता है कि छोटे अपराध करने वाले कैदियों को गंभीर और घोर अपराधियों के साथ रखना पड़ता है जिससे ये छोटे अपराध करने वाले अपराधी भी घोर अपराधी बन जाते हैं।

भारतीय जेलों में कैदियों की भीड़ को कम करने के लिए विधि आयोग ने 78वें प्रतिवेदन में कतिपय उपयोगी सुझाव दिए थे जिस में कैदियों को जमानत पर रिहा करने से संबंधित नियमों के बारे में अनुशंसा प्रमुख थी। विचाराधीन कैदियों को यथासंभव जमानत पर रिहा करने से कारागार में कैदियों की संख्या में कमी आएगी। इसी प्रकार दंड के रूप में अर्थदण्ड के दण्डादेश से भी कारावासियों की संख्या में पर्याप्त कमी हो सकती है।

इसके अतिरिक्त पैरोल आदि प्रक्रियाओं से जेलों में कैदियों की भीड़ की समस्या को हल किया जा सकता है। न्यायमूर्ति ए. एन. मुल्ला की अध्यक्षता में सन् 1980 अखिल भारतीय जेल सुधार समिति गठित की गई। इस समिति की सिफारिशों को लागू किया जाना भी कारागारों में भीड़ को कम करने में सहायक होगा। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एवं मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष के.जी. बालाकृष्णन ने कारागार सुधार पर दिल्ली में आयोजित एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में कहा था कि कारागार में बंदियों की अत्यधिक भीड़ के कारण उनके अनेक मूलभूत अधिकारों का हनन होता है इसलिए कारागार व्यवस्था राज्य सरकारों का विषय है और राज्यों के उच्च न्यायालयों की भूमिका इस दिशा में अधिक महत्वपूर्ण है।

वे राज्यों को कारावास में कैदियों की भीड़ को कम करने के लिए दिशा निर्देश दे सकते हैं और जिला न्यायाधीश तथा अन्य न्यायिक अधिकारी कारागार के नियमित निरीक्षण द्वारा इस भीड़ को नियंत्रित करने में सहायक हो सकते हैं।

माननीय न्यायधीश के सुझाव में अन्वेषण एजेंसी द्वारा अपराधी के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल कर दिए जाने के उपरांत विचाराधीन बंदी को जमानत पर छोड़ देना चाहिए क्योंकि कारागार में बंदियों की भीड़ का मुख्य कारण विचाराधीन अपराधियों को वर्षों तक कारागार में रखना ही है। उन्होंने यह भी कहा कि कारागार मूलतः दंडित कारावासियों के लिए ही होता है अतः इसमें विचाराधीन बंदियों को नहीं रखना चाहिए।

कारागार में बंदियों की संख्या को कम करने के उद्देश्य से ही दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में संशोधन द्वारा एक नई धारा 436 क जोड़ी गई है। इस धारा के अनुसार यदि अभियुक्त अन्वेषण जांच या विचारण के दौरान उसके द्वारा कार्य अपराध के लिए अधिकतम कारावास के दंड के आधे समय तक कारावास में बिता चुका है तो उसे प्रतिभूति सहित या रहित, व्यक्तिगत बंधपत्र पर रिहा कर दिया जाएगा।

दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में सन 2006 के संशोधन द्वारा प्रावधान संहिता के नए अध्याय 21क में 265 क से 265 ठ तक 12 नई धाराएं जोड़ी गई हैं जो मुकदमों को अति शीघ्र निबटाने में सहायक होंगी जिससे कारागार में कैदियों की संख्या कम हो सकेगी।

कारागार में लोक अदालत आयोजित करके कारावासियों के मामले तेज गति से निबटाए जाने से भी विचाराधीन कारिवासियों की कारावधि को न्यूनतम किया जा सकता है।

टिप्पणी

4.3.1 हिरासत की मानसिकता

हमारी व्ध्यवस्ध्था में कारागारों की उपस्थिति वैदिक काल से ही एक प्राचीन प्रशस्ति है, जहां प्रति–सामाजिक घटकों को शासकों द्वारा मान्यता प्राप्त स्थान पर रखा जाता था ताकि आम जनता को गलत कामों से बचाया जा सके। जेलों को 'बंदियों का स्थान' माना जाता था, जहां कैदियों को प्रतिशोध और अनुशासन के लिए रखा जाता था। पहले तो यह धारणा थी कि अलगाव और हिरासत के उपाय दोषी पक्षों को बदल देंगे लेकिन धीरे–धीरे इसे सामाजिक रक्षा के उन्नत विचार से प्रतिस्थापित किया जा रहा है। जेलों से संबंधित विभिन्न मुद्दों को सरकार और विशेषज्ञ समय–समय पर पहचानते हैं।

न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर ने ठीक ही कहा है– "हमारी दुनिया में जेल अभी भी यातना की प्रयोगशालाएं हैं, गोदाम हैं जिनमें मानव वस्तुओं को दुखद रूप से रखा जाता है और जहां कैदियों के स्पेक्ट्रम बहाव–लकड़ी के किशोरों से लेकर वीर असंतुष्टों तक होते हैं।"

आज जेल मुख्य रूप से तीन उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं, जिन्हें हिरासत, जबरदस्ती और सुधारक के रूप में वर्णित किया जा सकता है। ऐतिहासिक रूप से जेल सुधार के स्थान के रूप में में विकसित हो रहा है।

4.3.2 जेल अभिरक्षा में बंदियों को यातनाएं

कारावास के ऐसे बंदियों को जो गरीब और असहाय होने के कारण कार्यवाही अन्याय के शिकार होते हैं, उनको संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन समुचित संरक्षण दिया गया है। फिर भी जेल अभिरक्षा में कैदियों के साथ अमानवीय व्यवहार तथा उन्हें यातनाएं देने की घटनाएं होती रहती हैं। उच्चतम न्यायालय ने बी बी एम पटनायक बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए आई आर 1971 सुप्रीम कोर्ट 2092 के वाद में निर्धारित किया कि किसी व्यक्ति को कारागार में निरुद्ध किए जाने के आधार पर उसे उसके मूलभूत अधिकारों से वंचित नहीं रखा जा सकता है। इसी प्रकार उच्चतम न्यायालय ने सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1978 सुप्रीम कोर्ट 1675 के वाद में निर्धारित किया कि कारागार के बंदी उन सभी मूलभूत अधिकारों के हकदार हैं जो उनके विरोध से विसंगत नहीं हैं। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि किसी व्यक्ति को बंदी बनाते ही उसके मूलभूत अधिकार विलुप्त नहीं हो जाते हैं।

शीला वारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1983 सुप्रीम कोर्ट 378 के मामले में एक जनहित याचिका द्वारा जेल की महिला बंदियों के प्रति शोषण और अन्याय की शिकायत पर उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र शासन को आदेशित किया कि कारावास का दंड भोग रही ऐसी सभी पीड़ित महिला कारावासियों को राज्य के खर्चे पर विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाए तथा उन्हें यातना और दुर्व्यवहार के विरुद्ध समुचित संरक्षण प्रदान किया जाए। इसी प्रकार संजय सूरी बनाम दिल्ली प्रशासन के प्रकरण

में भी उच्चतम न्यायालय ने कारागार पदाधिकारियों को निर्देशित किया कि वे बंदियों के मूलभूत अधिकारों के संरक्षण की समुचित व्यवस्था करें तथा उनके प्रति अन्याय न होने दें।

टिप्पणी

जेल सुधार हेतु गठित जस्टिस मुल्ला समिति ने मार्च 1983 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में जेलों की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा कि अधिकतर जेलों और हवालातों में पर्याप्त जगह नहीं होती तथा मूत्रालय, शौचालय, रोशनदान, पानी व बिजली आदि की भी समुचित व्यवस्था नहीं होती है। इसी प्रकार इन में साफ–सफाई की भी कमी देखी गई है। बंदियों को दिया जाने वाला भोजन निम्न स्तर का होता है तथा उनके बिस्तर, कपड़े आदि के बारे में भी कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं है। व्यवस्था को देखने के लिए कोई निरीक्षण समिति न होने के कारण जेल अधिकारियों एवं कर्मियों पर उचित नियंत्रण नहीं रह पाता है। समिति ने अपनी अनुशंसा में कहा है कि कारागारों व हवालातों में व्याप्त अव्यवस्था को तत्काल ठीक किया जाना चाहिए जिससे कि मानव अधिकारों की गरिमा को बनाए रखा जा सके।

उच्चतम न्यायालय ने बंदियों के सबूत तथा प्रक्रियात्मक अधिकारों को रेखांकित करते हुए कहा कि वह इन अधिकारों के वैधानिक रूप से हकदार हैं, अतः उन्हें इन से वंचित नहीं रखा जा सकता है। न्यायालय ने अभिकथन किया की अभिरक्षा में यातनाएं केवल शारीरिक पीड़ा तक ही सीमित नहीं हैं। इसके अनेक प्रकार हैं, जैसे एकांत कोठियां, कैदियों से मानवीय श्रम कार्य करवाना, उन्हें जीवन की आवश्यकताओं से वंचित रखना, परिवारी जनों से मिलने देने में कठिनाइयां उत्पन्न करना, किसी दूरस्थ कारागार में स्थानांतरित कर देना आदि। इस प्रकार का प्रत्येक दुर्व्यवहार बंदियों के अधिकारों को सीमित करता है जो विधि द्वारा मान्य नहीं है। न्यायालय ने निर्णय लिया कि यातनाओं के विरुद्ध घोषणा पत्र के अनुच्छेद 8 एवं 9 को जेल की व्यवस्था में अपनाया जाना चाहिए।

सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव तथा अन्य, ए आई आर 2005 सुप्रीम कोर्ट 972, के वाद में उच्चतम न्यायालय ने पराधीन कैदियों के मौलिक अधिकारों के विषय में टिप्पणी करते हुए कथन किया कि उन्हें संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राप्त अधिकार आत्यंतिक नहीं हैं और बाहरी व्यक्तियों से मिलने के उनके अधिकार पर जेल पुस्तिका तथा अन्य समितियों द्वारा युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। इस बात में जेल प्राधिकारी बाहुबली विचाराधीन कैदी पप्पू यादव जिसके विरुद्ध हत्या का प्रकरण दर्ज था, की अवैध गतिविधियों को नियंत्रण में रखने में अधिकारी पूरी तरह विफल रहे थे। इसलिए उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत प्राप्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसे बिहार राज्य के बाहर किसी अन्य जेल में हस्तांतरित किए जाने के निर्देश दिए। यद्यपि ऐसे अंतर–राज्य जेल स्थानांतरण का बिहार जेल मैनुअल में कोई प्रावधान नहीं था। न्यायालय ने निर्णीत किया कि जहां विचाराधीन कैदी जेल–प्रशासकों के नियंत्रण के बाहर हो तथा खुलेआम विधि सम्मत शासन का उल्लंघन कर रहा हो तथा विधि को चुनौती दे रहा हो, वहां न्यायालय मूकदर्शक बन कर उसकी गतिविधियों को जारी

रहने नहीं दे सकता है। ऐसी स्थिति में न्यायालय का हस्तक्षेप पूर्ण रूप से उचित है। उच्चतम न्यायालय के इस निर्देश अनुसार पप्पू यादव को बिहार जेल से हटाकर महाराष्ट्र की जेल में स्थानांतरित कर दिया गया था।

टिप्पणी

पहले जेलों में केवल हिरासत का कार्य होता था, जहां एक कथित अपराधी को कानूनी हिरासत में तब तक रखा जा सकता था जब तक कि उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था और दोषी पाए जाने पर दंडित किया जाता था।

रोमन कानून में डाइजेस्ट ऑफ जस्टिनियन ने हिरासत के सिद्धांत को इस कथन के साथ स्थापित किया कि "जेल कारावास के लिए है, सजा के लिए नहीं"। जबरदस्ती कार्य का अर्थ है कि कारावास का उपयोग किसी व्यक्ति को न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश का पालन करने के लिए किया जा सकता है, चाहे वह दीवानी हो या आपराधिक। अगर वह अनुपालन करता है, तो उसे छोड़ दिया जाता है। जेल का उद्देश्य स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सजा का प्रावधान, कैदियों का पुनर्वास और कैदियों की सुरक्षा है।

इसमें संदेह नहीं है कि वर्तमान कारागार और कारावासियों की दशा सदियों की तुलना में कहीं अधिक शुद्ध एवं बेहतर है, फिर भी इस दशा में अभी और सुधार किया जाना अपेक्षित है।

यातनाओं के विरुद्ध बंदियों के अधिकार की मान्यता (Recognition of Prisoners Right against Torture)

यह विभिन्न लेखों और न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से स्थापित किया गया है कि अपराध करने से कोई मानव गैर–मानव नहीं हो जाता। यह कहना गलत नहीं है कि जब कोई व्यक्ति दोषी ठहराया जाता है और उन सभी अधिकारों का हकदार नहीं रह जाता है, जिनका वह पहले हकदार था, तो भी उसे कुछ बुनियादी अधिकार प्राप्त रहते हैं। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में माना है कि अपराध करने और बंदी होने से व्यक्ति का मनुष्य होना बंद नहीं हो जाता है।

बंदियों से व्यवहारिता के प्रावधानों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दी गई है और विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय लेख–पत्रों जैसे "मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा" (यूडीएचआर), "नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध" (आईसीसीपीआर), "संयुक्त राष्ट्र" के तहत इसकी चर्चा की जाती है।

अंतर्राष्ट्रीय समुदायों द्वारा बंदियों के अधिकारों को इतना महत्व देने के बाद भी और अधिकांश राज्यों के इन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के हस्ताक्षरकर्ता होने के बावजूद, किसी न किसी रूप में बंदियों के अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है।

यहां तक कि भारत के संविधान में भी उन अधिकारों के बारे में विशिष्ट प्रावधानों का अभाव है, जिनके बंदी हकदार हैं, हालांकि, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार–बार अलग–अलग मामलों का निर्णय करते हुए, उन अधिकारों पर ध्यान केंद्रित किया है, जिनके बंदी सदैव हकदार हैं।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान पहली बार 1983 में टी.वी. वथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य, (1983) एआईआर 1983, एससी 361 के मामले का निर्णय करते हुए

टिप्पणी

बंदियों के अधिकारों की ओर आकर्षित किया गया था। अदालत ने माना कि भारतीय संविधान के भाग III के तहत 'अनुच्छेद 14,19 और 21' के तहत प्रदान किए गए मूल मौलिक अधिकार बंदियों को हर समय उपलब्ध हैं जैसे कि स्वतन्त्र मनुष्य को दिए जाते हैं। अदालत ने आगे कहा कि जेलों की दीवारें मौलिक अधिकारों को बाहर नहीं रख सकती हैं।

भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने विभिन्न मामलों का निर्णय करते हुए, संविधान के 'अनुच्छेद 21 – जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार' के तहत बंदियों की सुरक्षा के लिए कई अन्य अधिकारों को उनके दायरे का विस्तार करके शामिल किया। अनुच्छेद 21 के दायरे में बंदियों को दिए गए अधिकार हैं– हिरासत में यातना और पुलिस लॉकअप में मौत के विरुद्ध अधिकार (डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) 1 एससीसी 416), क्रूर और असामान्य सजा के विरुद्ध अधिकार (जगमोहन सिंह बनाम यूपी राज्य (1973) एआईआर 1973 एससी 947), मुफ्त कानूनी सहायता का अधिकार (एमएच होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य (1987) 3 एससीसी 544; भारत का संविधान, अनुच्छेद 39–ए), निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार (रत्तीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2012) 4 एससीसी 516), स्पीडी ट्रायल का अधिकार (हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य (1980) 1 एससीसी 81) और सुरक्षात्मक घरों के बंदियों के अधिकार (उपेंद्र बक्सी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1983) 2 एससीसी 308)।

इसलिए, यह स्थापित किया गया था कि बंदियों को भारत में अंतर्राष्ट्रीय स्तर और राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार प्रदान किए जाते हैं।

हालाँकि, कैदियों के पहले और अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकार, जो 'हिरासत में यातना के खिलाफ अधिकार' है, पर ध्यान केंद्रित करने से पहले, उस अधिकार की मान्यता को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित करना बेहतर होगा–

- अंतर्राष्ट्रीय लेख–पत्रों के तहत यातना के विरुद्ध अधिकार
- भारत के संविधान और राष्ट्रीय विधान के तहत अत्याचार के विरुद्ध अधिकार

अंतर्राष्ट्रीय लेख–पत्रों के तहत यातनाओं के विरुद्ध अधिकार (Right against torture under International Instruments)

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, यातनाओं की हमेशा निंदा की गई है और यहां तक कि सार्वजनिक रूप से यातनाओं के उन्मूलन का समर्थन भी किया है। प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत 'जस कॉजेन्स' के रूप में यातना के उपयोग को प्रतिबंधित किया गया है, जो प्रथागत कानून में सर्वोच्च स्थान रखता है और जो यातनाओं का उपयोग करने वाली सभी संधियों और प्रथागत कानूनों को प्रतिस्थापित करता है। (ह्यूमन राइट्स वॉच, 'द लीगल प्रोहिबिशन अगेंस्ट टॉर्चर' (ह्यूमन राइट्स वॉच, 1 जून 2004)) इन लेख–पत्रों के तहत यातनाओं के निषेध पर और चर्चा की गई है।

1. **मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूडीएचआर):** द्वितीय विश्व युद्ध के अत्याचारों के बाद, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने इस मुख्य अंतर्राष्ट्रीय साधन का मसौदा तैयार करते हुए अपने 'अनुच्छेद 5' के तहत "यातना के उपयोग पर रोक लगाने" के प्रावधान को शामिल किया। लेख में कहा गया है कि "किसी को भी

यातना या क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के अधीन नहीं किया जाएगा"। इस मुख्य मानवाधिकार साधन में यातनाओं पर प्रतिबंध को शामिल करने से अन्य अंतर्राष्ट्रीय और मानवाधिकार संधियों के व्यापक नेटवर्क में इस अधिकार के प्रवेश के रास्ते खुल गए।

टिप्पणी

2. **नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (आईसीसीपीआर):** यूडीएचआर में यातनाओं को प्रतिबंधित करने वाले प्रावधान को शामिल किये जाने ने इस सम्मेलन में अपना स्थान बनाया जिसे संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1966 में अपनाया गया था। इस प्रसंविदा के 'अनुच्छेद 7' में कहा गया है कि " किसी को भी यातना या क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के अधीन नहीं किया जाएगा।" (नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966, ए 7)। यह प्रावधान यूडीएचआर के अनुच्छेद 5 के समान था। मानवाधिकार समिति ने सामान्य टिप्पणी संख्या 20 में आईसीसीपीआर के अनुच्छेद 7 पर टिप्पणी की और कहा कि इस प्रावधान का उद्देश्य न केवल व्यक्ति को शारीरिक शोषण से बचाना है बल्कि व्यक्ति की गरिमा और मानसिक अखंडता की भी रक्षा करना है। 153 देशों द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में यातना के उपयोग को रोकने के लिए सम्मेलन पर हस्ताक्षर किए गए और इसकी पुष्टि की गई।

3. **यातनाओं और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध सम्मेलन (यूएनसीएटी):** संयुक्त राष्ट्र महासभा ने सभी देशों में यातना के उपयोग के विरुद्ध संघर्ष को और अधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से 1984 में इस सम्मेलन को अपनाया। कुल मिलाकर, 136 देशों ने सम्मेलन की पुष्टि की। भारत ने 1977 में कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए और वह उन कुछ देशों में से है जिन्होंने कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं लेकिन कभी इसकी पुष्टि नहीं की है।

भारत के संविधान और राष्ट्रीय विधान के तहत यातनाओं के विरुद्ध अधिकार (Right against torture under Constitution of India and National Legislations)

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारत में, यातनाओं के विरुद्ध व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा के लिए कोई विशेष प्रावधान व्यक्त नहीं किया गया है। यह भारत की विधायिका के लिए अपमान की बात है कि भारत द्वारा ' यातनाओं के विरुद्ध कन्वेंशन' पर हस्ताक्षर करने के 2 दशक बाद भी, कन्वेंशन की पुष्टि के लिए कोई विशिष्ट कानून या अधिनियम नहीं बनाया गया है। अब तक विधायिका द्वारा यातना निषेध कानून को अधिनियमित करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया है।

भारतीय संविधान में यातनाओं से संबंधित कोई प्रावधान नहीं है, हालांकि, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के भाग III के तहत प्रत्येक व्यक्ति को दिए गए मौलिक अधिकारों के दायरे का निर्णय करते हुए कहा कि "प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का अधिकार है। और उसे इसे मानवीय गरिमा के साथ जीना चाहिए" जिसमें यह भी शामिल है कि उस व्यक्ति पर यातना का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए जो

उसके सम्मान के साथ जीने के अधिकार को प्रभावित करता हो। इसलिए, भारतीय न्यायपालिका ने विभिन्न मामलों का निर्णय करते हुए बंदियों को उनके अधिकार देने में एक प्रमुख भूमिका निभाई है।

टिप्पणी

राष्ट्रीय कानूनों के तहत, "भारतीय दंड संहिता 1890", "धारा 330 और 348" के तहत, कृत्य को यातना के रूप में मानते हुए 7 और 3 साल की कैद का प्रावधान करती है, लेकिन जब यह अपराध ड्यूटी पर एक पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाता है, इस प्रावधान को लागू नहीं किया जाता है।

इसलिए, इन प्रावधानों में यातना के विरुद्ध कन्वेंशन में परिभाषित यातना की सभी संभावनाओं को शामिल करने की कमी है।

भारत में हिरासत में प्रताड़ना के विरुद्ध बंदियों और विचाराधीन बंदियों के अधिकार (Rights Of Prisoners And Under&Trials Against Custodial Torture In India)

यातना को "गंभीर पीड़ा, शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक" के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य किसी को कुछ जानकारी देने के लिए मजबूर करना है। इसका अर्थ गंभीर शारीरिक दर्द और अत्यधिक मनोवैज्ञानिक दबाव के कारण टूटना भी है। (आरएस सैनी, 'भारत के संदर्भ में कानून और अभ्यास में हिरासत में यातना' (1994) 36 भारतीय विधि संस्थान के जर्नल)

अत्याचार का उपयोग अनादि काल से किया जाता रहा है और अधिकांश देशों द्वारा इसका उपयोग किया जाता है जिसका अतीत से पता लगाया जा सकता है (निगेल एस रोडली और मैट पोलार्ड, द ट्रीटमेंट ऑफ प्रिज़नर्स अंडर इंटरनेशनल लॉ (तीसरा संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 2015))। यह अवधारणा दो पहलुओं पर आधारित है– (1) कि हम सभी की कल्पनाएँ होती हैं, (2) मनुष्य का शरीर दर्द के लिए अतिसंवेदनशील होता है। दूसरे शब्दों में, हम यह कहकर दो पहलुओं की व्याख्या कर सकते हैं कि हम हमेशा कल्पना कर सकते हैं कि जब कोई हम पर अत्याचार करेगा और हमें चोट लगना पसंद नहीं है तो क्या होने की संभावना है।

यूडीएचआर को अपनाने और इसके 'अनुच्छेद 5' के तहत यातना पर प्रतिबंध अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यातना के संबंध में वकालत की ओर ले जाता है। हालाँकि, सार्वभौमिक घोषणा के लागू होने के बाद 3 दशक से अधिक समय लगा कि संयुक्त राष्ट्र महासभा ने "यातना के विरुद्ध कन्वेंशन" को अपनाने के बारे में सोचा। "अत्याचार, और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन" को अपनाया गया था और 10 दिसंबर 1984 को अनुसमर्थन और उत्तराधिकार के लिए खोला गया था। भारत ने 1997 में बिना किसी घोषणा या अनुसमर्थन के सम्मेलन पर हस्ताक्षर किए।

कन्वेंशन ने यातना को इस प्रकार परिभाषित किया– "कोई भी कार्य जिसके द्वारा गंभीर दर्द या पीड़ा, चाहे वह शारीरिक या मानसिक हो, किसी व्यक्ति को जानबूझकर ऐसे उद्देश्यों के लिए दिया जाता है जैसे कि उससे या किसी तीसरे व्यक्ति की जानकारी या एक स्वीकारोक्ति प्राप्त करना, उसे उस कार्य के लिए दंडित करना जो उसने किया है या किसी तीसरे व्यक्ति ने किया है या उस पर या किसी तीसरे व्यक्ति को डराने–धमकाने या जबरदस्ती करने का संदेह है, या किसी भी कारण से किसी भी

प्रकार के भेदभाव के आधार पर, जब ऐसा दर्द या पीड़ा उसके द्वारा या उसके उकसाने पर दी गई हो किसी सरकारी अधिकारी या आधिकारिक क्षमता में काम करने वाले अन्य व्यक्ति की सहमति या स्वीकृति से। इसमें केवल कानूनी प्रतिबंधों में निहित या आकस्मिक होने से उत्पन्न होने वाली पीड़ा शामिल नहीं है" (अत्याचार और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक उपचार या सजा के खिलाफ कन्वेंशन 1984, एस 1)।

यहां तक कि जब कन्वेंशन के तहत यातना की परिभाषा व्यापक थी और इसमें मानसिक और शारीरिक दोनों तरह की पीड़ा शामिल थीं, तब भी कानूनी प्रतिबंधों से उत्पन्न होने वाले दर्द या पीड़ा के बहिष्कार ने यातना की परिभाषा में एक गंभीर खामी पैदा कर दी थी। यह अभी भी हस्ताक्षरकर्ता राज्यों में तब तक यातना के उपयोग की अनुमति देता है जब तक कि वे 'वैध' न हों और राज्यों ने यातना का उपयोग करने वाले लोगों को इसका प्रयोग करने का अधिकार दिया हो। इसे यातना की परिभाषा में एक गंभीर दोष माना जा सकता है और इस खामी को जल्द से जल्द दूर किया जाना चाहिए।

हिरासत में यातना का अभ्यास एक वैश्विक घटना बन गई है जिसका उपयोग व्यक्तियों पर उनके लिंग, उम्र और स्वास्थ्य की स्थिति की परवाह किए बिना किया जाता है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के देश ज्यादातर मानवाधिकार उल्लंघन के इस सबसे खराब रूप का सामना करते हैं। हिरासत में यातना को न्यायेतर हत्याओं के रूप में भी जाना जाता है। हिरासत में यातना के विरुद्ध इस मानव अधिकार का मुख्य हनन करने वाले को पुलिस और जेल अधिकारियों के रूप में माना जाता था, जिन्हें वास्तव में दिन–ब–दिन खतरनाक तरीके से रक्षा करने का कर्तव्य दिया जाता था। मीडिया और प्रेस में पुलिस द्वारा प्रताड़ित किए जाने के कारण हर महीने हिरासत में मौत का एक नया मामला सामने आता है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की निम्नलिखित रिपोर्टें इसे साबित करती हैं–

एशियन सेंटर ऑफ ह्यूमन राइट्स के अनुसार, भारत में, 2002–2007 तक हिरासत में प्रतिदिन कम से कम 4 मौतें होती हैं। 2002–2007 के बीच कुल 7468 व्यक्ति जेल में या पुलिस हिरासत में मारे गए या मारे गए। हालांकि, यह सुझाव दिया जा सकता है कि भारत में संगठन द्वारा प्रदान किए गए आंकड़ों की तुलना में यातना की गंभीरता कहीं अधिक खराब है। भारत में हिरासत में यातना के अपराधों की रिपोर्ट न करने का मुख्य कारण यह है कि इस अपराध की मुख्य अपराधी स्वयं पुलिस है। पुलिस शायद ही कभी अपने सह–कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायत दर्ज करती है और पीड़ित भी प्रतिशोध के डर से शिकायत दर्ज नहीं करते हैं। इसके कारण, भारत में हिरासत में यातना के 50% से अधिक मामले दर्ज नहीं होते हैं।

एमनेस्टी इंटरनेशनल ने 2017–18 (एमनेस्टी इंटरनेशनल रिपोर्ट 2017/18 'द स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स ह्यूमन राइट्स') की अपनी रिपोर्ट में कहा कि उक्त वर्ष के लिए न्यायिक हिरासत में मृत्यु की संख्या 894 और पुलिस हिरासत में हुई मौतों की संख्या 74 थी।

एमनेस्टी इंटरनेशनल ने आगे भारतीय जेलों में हिरासत में यातना के कुछ नवीनतम मामलों का उल्लेख किया है जो अंततः बंदियों की मौत का कारण बनते हैं। अगस्त 2017 में, मुंबई के भायखला जेल में एक महिला बंदी की जेलों में उपलब्ध कराए जाने वाले भोजन के बारे में शिकायत करने के बाद मौत हो गई थी। भायखला जेल

टिप्पणी

का दौरा करने के लिए सांसदों सहित एक टीम का गठन किया गया था, जिन्होंने बताया कि बंदियों ने कबूल किया कि उन्हें नियमित रूप से पीटा जाता था। नवंबर 2017 में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक समिति का गठन किया जिसने तिहाड़ जेल, दिल्ली का दौरा किया और पाया कि 18 बंदियों को जेलों में पीटा गया क्योंकि उन्होंने उनके तकिए के कवर को ले जाने पर आपत्ति जताई थी।

सितंबर 2017 में, भारत सरकार ने "यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन" की पुष्टि करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया, जिस पर भारत ने 1997 में हस्ताक्षर किए थे। एक महीने के बाद, भारत के विधि आयोग ने एक रिपोर्ट जारी की जिसमें सिफारिश की गई कि सरकार कन्वेंशन की पुष्टि करे और अत्याचार का अपराधीकरण करने के लिए एक कानून बनाए। यह अत्याचार निवारण विधेयक, 2017 की शुरुआत की ओर ले जाता है। भारत के लिए कन्वेंशन की पुष्टि करने के लिए यह बिल महत्वपूर्ण है, हालांकि, अब तक, भारत ने संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की पुष्टि करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC), भारत का गठन विशेष रूप से सकल मानव अधिकारों के उल्लंघन पर रोक लगाने के लिए किया गया था। भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और अदालतें अनादि काल से हिरासत में यातना और मौतों के मामलों से निबटती रही हैं।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत ने 2016–17 की अपनी वार्षिक रिपोर्ट में, कहा है कि, "अभिरक्षा में हिंसा और यातना इस देश में इतनी व्यापक है कि यह लगभग नियमित हो गई है।" आयोग ने बलात्कार, छेड़छाड़, यातना, पुलिस अभिरक्षा में फर्जी मुठभेड़ जैसे अपराधों को भी माना है क्योंकि सभी मामलों में मानवीय गरिमा का सम्मान किया जाता है।

आयोग ने रिपोर्ट में यह भी कहा कि उसने वर्ष 2016–17 में अभिरक्षा में मौत के 4851 मामलों को निबटाया, जिसमें अधिकांश मौतें 4356 जेल अभिरक्षा में थीं, जहां केवल 495 मौतों के मामले पुलिस अभिरक्षा में थे। इससे पता चलता है कि जेल अभिरक्षा में उक्त समय के दौरान मरने वाले अधिकांश लोग विचाराधीन बंदी थे और पुलिस ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया और अभिरक्षा में व्यक्ति को इस हद तक प्रताड़ित किया कि इससे उनकी मृत्यु हो गई।

यहां तक कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय, मुंशी सिंह गौतम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, अपील (Crl.) 1999 का 919, के मामले में पुलिस द्वारा भारतीय जेलों में यातना की इस समस्या के बारे में उनके दुख की चिंता का सार प्रस्तुत करता है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि–

"अमानवीय यातना, हमला और हिरासत में मौत, जो खतरनाक रूप ले चुकी है, कानून के शासन और आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रशासन की विश्वसनीयता पर गंभीर सवाल उठाती है।" भगवान सिंह बनाम पंजाब राज्य, प्रतुल कुमार सिन्हा बनाम बिहार राज्य, केवल पति बनाम यूपी राज्य, इंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, मध्य प्रदेश राज्य बनाम श्यामसुंदर त्रिवेदी और अब तक सुनाए गए फैसलों के मामलों में व्यक्त की गई पीड़ा डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य का ऐतिहासिक मामला 'हिरासत में व्यक्तियों

के साथ व्यवहार में अमानवीय दृष्टिकोण में किसी भी तरह की नरमी का कारण नहीं बनता है' लगता है।

टिप्पणी

एनएचआरसी और भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त बयान स्पष्ट रूप से भारत में यातना के उपयोग की उपस्थिति को इंगित करते हैं। हालांकि, यह सुझाव देना स्पष्ट है कि विभिन्न मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिशा–निर्देश तैयार करने और विभिन्न निर्णयों के निष्कर्ष के बाद भी कि यातना का उपयोग करना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। राज्य और पुलिस अभी भी उनकी हिरासत में बंदियों पर अत्याचार के उपयोग के साथ जारी है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. भारत के अधिकांश कारागारों में किनकी संख्या निर्धारित संख्या से बहुत अधिक है?

   (क) कैदियों की (ख) कर्मचारियों की

   (ग) जेलरों की (घ) डॉक्टरों की

4. किस कानून में डाइजेस्ट ऑफ जस्टिनियन ने हिरासत के सिद्धांत को इस कथन के साथ स्थापित किया कि– "जेल कारावास के लिए है, सजा के लिए नहीं।"

   (क) रोमन (ख) तालिबानी

   (ग) पाकिस्तानी (घ) अफगानिस्तानी

4.4 पुलिस, अभियोजन, न्यायपालिका और जेल के बीच अंतर–एजेंसी समन्वय की कमी

कैदी आपराधिक न्याय प्रणाली के केंद्र में हैं। गिरफ्तारी से लेकर मुकदमे तक सजा से लेकर रिहाई तक, कैदी आपराधिक न्याय प्रणाली की हर एजेंसी को गले लगाते हैं। आपराधिक न्याय प्रणाली के कामकाज में निम्नलिखित बाधाओं की पहचान की गई थी–

पुलिस

आपराधिक न्याय प्रणाली पर भारत सरकार द्वारा किए गए एक हालिया शोध के अनुसार, लगभग एक तिहाई मामले काफी देरी के बाद सामने आए, जिसके परिणामस्वरूप पुलिस जांच में देरी हुई। उसी शोध के अनुसार यह पाया गया कि तीन–चौथाई मामलों में सीआरपीसी की धारा 173 के तहत चार्जशीट दाखिल करने में औसतन 1 से 3 साल लगते हैं, जबकि नियम पुस्तिका 90 दिनों के भीतर इसके प्रतिपादन की आवश्यकता पर बल देती है। यह एक प्रमुख बाधा है। कुछ मामलों में आरोप पत्र 3 से 5 वर्षों के बाद दायर किए जा रहे थे, जिसका श्रेय अकुशल जांच अधिकारियों, आवश्यकता पड़ने पर मेडिकल रिपोर्ट की अनुपलब्धता और जमानत पर व्यक्तियों के फरार होने को दिया जा सकता है। जस्टिस सेनगुप्ता ने फिर से रिपोर्ट का हवाला देते हुए कहा कि 72 फीसदी मामलों में जेल में या जमानत पर आरोपी को चार्जशीट देने में 1 से 5 साल

की देरी होती है. अपने आरोप के बचाव में कार्रवाई का तरीका तय करने में आरोपी को चार्जशीट के महत्व को देखते हुए यह एक बड़ी बाधा है।

टिप्पणी

सारंगी, विशेष प्रतिवेदक, NHRC, ने गिरफ्तारी से पहले मानवाधिकारों के घोर उल्लंघन का आरोप लगाया, जहां पुलिस व्यक्तियों को गिरफ्तार करने से पहले उन्हें पूछताछ के रूप में पेश करती है। गिरफ्तारी के बाद कोई भी पेश नहीं हो रहा था जहां आरोपी जेल वैन में रहे, जबकि मजिस्ट्रेट द्वारा उन पर आदेश (उदाहरणः रिमांड) पारित किए जा रहे थे। उन्होंने आरोप लगाया कि यह बड़े पैमाने पर किया गया था। रिमांड के बाद आरोपियों को जानबूझकर अन्य मामलों में भी फंसाया जा रहा था। संहिता कुछ परिस्थितियों में आरोपी को पुलिस द्वारा जमानत देने का अधिकार भी प्रदान करती है। हालाँकि, इस शक्ति की अत्यधिक उपेक्षा की जाती है।

सारंगी ने आगे बताया कि जहां तक कैदियों की रिहाई का संबंध है, विशेष रूप से जमानत या पैरोल के संबंध में, पश्चिम बंगाल का रिकॉर्ड अच्छा नहीं था, जिसके लिए जेल अधिकारियों के बजाय, न्यायपालिका और पुलिस को उत्तरदायी योजित किया जा रहा था।

पश्चिम बंगाल के सूचना आयुक्त डॉ जीडी गौतम ने भी पुष्टि की कि कई तरह की समस्याएं हैं और कम समय में बहुत कुछ करने की जरूरत है। सरकार में अपने काम का जिक्र करते हुए उन्होंने सुझाव दिया कि पुलिस बल के कामकाज में एक बड़ी कमी है। पहले चुनौतियों का सामना करना और फिर सभी का साथ आना जरूरी है ताकि उनका समाधान किया जा सके।

न्यायालय

अदालतों की ओर से आरोप तय करने में काफी देरी होती है। यह एक बाधा है। परीक्षण के चरण में वैकल्पिक उपाय के रूप में दलील सौदेबाजी की गति की कमी को भी एक समस्या कहा जा सकता है। परीक्षणों को गति देने के लिए पालन नहीं किया जा रहा था। सारंगी ने आगे बताया कि पश्चिम बंगाल की अदालतें जमानत देने के खिलाफ थीं और कुछ मामलों में रोगग्रस्त, वृद्ध और बीमार भी इस तरह की अनिच्छा के शिकार थे। जेल अधीक्षकों की इस तरह के योग्य कैदियों पर अदालत का ध्यान आकर्षित करने की अनिच्छा से यह और भी बढ़ जाता है। एक बार परीक्षण शुरू होने के बाद यह नियमित रूप से जारी नहीं रहता है। बड़ी संख्या में अपीलें अभी भी लंबित हैं और इस बीच कैदियों को अधिकतम वैधानिक अवधि से भी अधिक समय तक हिरासत में रखा जाता है। वकीलों की सहायता करने का अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन इसकी अनदेखी की जाती है। इसके अलावा, वकीलों द्वारा अपने कैदी मुवक्किलों को संक्षिप्त विवरण वापस नहीं किया जा रहा है।

जेल

सारंगी ने कहा कि हालांकि भारत की जेलों की आबादी बहुत कम है, लेकिन इसमें विचाराधीन कैदियों का प्रतिशत सबसे अधिक है जो लगभग 70% है। बुनियादी ढांचे की कमी कोई बहाना नहीं हो सकता। समस्या जवाबदेही और सांप्रदायिकता की कमी की थी। एक और समस्या दोषियों के अधिकारों की गैर–प्राप्ति थी। हिरासत में मौतें हुईं और जेल नियमावली का पालन नहीं किया जा रहा था। पश्चिम बंगाल जेल

अधिनियम के दायरे में सबसे उदार होने के बावजूद रिहाई का रिकॉर्ड पश्चिम बंगाल में सबसे खराब था। दोषियों को साल में दो बार छुट्टी दी जा सकती है, फिर भी उनके पास उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, 700 दोषियों में से केवल 1 व्यक्ति को पैरोल/पूर्व परिपक्व रिहाई दी गई है। 30 साल से अधिक समय से जेल में बंद कैदी थे, फिर भी इस बारे में कुछ नहीं किया गया। आगे यह भी बताया गया कि कैदी के काम करने और कार्यशालाओं में भाग लेने के अधिकार को पश्चिम बंगाल की जेलों में शायद ही महसूस किया जा रहा था। सारंगी ने बताया कि अन्य राज्यों की तुलना में पश्चिम बंगाल में प्री–मैच्योर रिलीज़ की स्थिति बहुत खराब थी। डॉ गौतम ने बांग्लादेश के नागरिकों की दुर्दशा पर चर्चा की, जो नौकरशाही मुद्दों के कारण उनकी सजा की अवधि पूरी होने के बाद भी हिरासत में हैं। जहां तक कारागारों का संबंध है, बांग्लादेशी नागरिकों का प्रत्यावर्तन, जिन्हें जनखालाश कैदी कहा जाता है, एक प्रमुख मुद्दा है।

कानूनी सहायता

न्यायमूर्ति रूमा पाल ने बताया कि यद्यपि सुधार गृहों में कानूनी सहायता केंद्र स्थापित हैं, लेकिन पर्याप्त प्रोत्साहन और उचित निगरानी निकाय की कमी के कारण ऐसे वकीलों का प्रदर्शन बहुत खराब है। न्यायमूर्ति सेनगुप्ता ने कहा कि उपरोक्त समस्याओं के कारण सर्वश्रेष्ठ वकील कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए आगे नहीं आ रहे हैं। उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि कानूनी सहायता वकील अक्सर उन कैदियों से पैसे वसूलते हैं जो मुफ्त कानूनी सहायता के अपने अधिकारों से अनभिज्ञ होते हैं। सीएचआरआई की श्रीमती मधुरिमा धानुका ने यह भी कहा कि उपरोक्त समस्याओं के अलावा, कानूनी सहायता वकीलों को इस उद्देश्य के लिए आवश्यक उचित प्रशिक्षण नहीं मिलता है। कानूनी सहायता वकीलों के न आने से भी परेशानी होती है। इस रोग के समाधान के रूप में, रणवीर कुमार, आईजी, सुधार सेवाएं, ने तत्काल सुझाव दिया कि वकीलों की ओर से उनके व्यवसाय के प्रारंभिक वर्षों के दौरान कानूनी सहायता सेवा देना अनिवार्य होना चाहिए। एसएलएसए के सदस्य–सचिव ने ध्यान दिया कि सुधार गृहों में पैरालीगल कैदियों के साथ ठीक से काम कर सकते हैं यह सुनिश्चित करने के लिए कई पैरालीगल प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए गए थे। किशोर न्याय बोर्ड (जेजेबी) से डॉ. बिपाशा रॉय ने आगे कहा कि सुधार गृहों में एक प्रभावी कानूनी सहायता क्लिनिक के अलावा किशोरों के लिए एक कानूनी सहायता क्लिनिक (जेजेबी के अंदर भी) की तत्काल आवश्यकता है।

सरकार/अन्य

न्यायमूर्ति रूमा पाल ने आपराधिक न्याय प्रणाली में एक गंभीर कमी की पहचान की, यानी सरकारी अधिकारियों की जवाबदेही की कमी और कानूनी सहायता वकीलों के बीच भी। उन्होंने कहा कि एक निगरानी निकाय का होना सबसे आवश्यक है जो यह सुनिश्चित करे कि कानूनी सहायता वकीलों और आपराधिक न्याय प्रणाली की विभिन्न एजेंसियों के प्रभारी अधिकारियों को इस तरह के निकाय के समक्ष हर स्तर पर उनके कार्यों के लिए जवाबदेह बनाया जाए। समस्याओं की चर्चा के बाद, बाधाओं को दूर करने के लिए संभावित समाधान प्रस्तावित किए गए।

टिप्पणी

समाधान

न्यायमूर्ति के जे सेनगुप्ता ने सुझाव दिया कि न्यायपालिका हस्तक्षेप करे और अपवादों को छोड़कर एक महीने के भीतर आरोप तय करना अनिवार्य करे। अदालतों को मामलों के निपटारे के लिए स्पीड ट्रायल का सहारा लेने का फैसला लेना है। हालांकि, यह जल्दबाजी में निर्णय लेने और महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी को रोकने के लिए सावधानी के साथ आयोजित किया जाएगा। उन्होंने सुझाव दिया कि बलात्कार और दहेज हत्या के मामलों में गवाहों की परीक्षा अदालत में ही हो सकती है। सीआरपीसी के एसएस 284, 294, 295, 296 गवाह की उपस्थिति से संबंधित, लोक सेवकों के आचरण के प्रमाण में हलफनामा आदि को लागू किया जा सकता है। शपथ पत्र के माध्यम से डॉक्टरों की जांच की जा सकती है जिससे समय की काफी बचत होगी। वास्तव में इनमें से कुछ पद्धतियों को निष्पक्ष सफलता के लिए पहले ही अपनाया जा चुका है। कंपाउंडेबल अपराधों का फैसला लोक अदालतों द्वारा किया जाना चाहिए।

सारंगी ने पूर्व–परीक्षण स्तर पर अन्याय की जांच के लिए पूर्व–परीक्षण न्यायिक समीक्षा की अवधारणा की वकालत की। बांग्लादेशी नागरिकों के प्रत्यावर्तन के संबंध में, न्यायमूर्ति सेनगुप्ता ने सुझाव दिया कि गृह विभाग को राजनयिक चैनलों के माध्यम से उन्हें आसानी से और प्रभावी ढंग से वापस धकेलने और दोनों पक्षों को न्याय दिलाने के लिए इसे लेना चाहिए। कैदी प्रत्यावर्तन अधिनियम, ने तर्क दिया कि सारंगी, जिस पर बांग्लादेश के साथ सहमति हुई है, को लागू किया जाना चाहिए और घुसपैठ करने वाले नागरिकों को दोषी ठहराए जाने के बाद उन्हें वापस बांग्लादेश भेज दिया जाना चाहिए।

सारंगी ने इंटरनेट पर जेलों पर रिपोर्ट की उपलब्धता की वर्तमान प्रणाली में और सुधार की आशा व्यक्त की। डॉ गौतम ने सुझाव दिया कि जमीनी स्तर पर नागरिक समाज की भागीदारी और ऐसे लोगों के बीच जागरूकता और प्रतिबद्धता फैलाना सभी संभावित समस्याओं को मिटाने के लिए किया जाने वाला पहला आवश्यक काम है।

ऐसे मामलों में जहां कानूनी सहायता वकील पैसा लेते हैं, न्यायमूर्ति सेनगुप्ता ने जोर देकर कहा कि इस तरह की प्रथाओं को राज्य कानूनी सेवा प्राधिकरण के सदस्य सचिव के ध्यान में लाया जाना चाहिए और उन्होंने उचित कार्रवाई का वादा किया।

अपनी प्रगति जांचिए

5. आपराधिक न्याय प्रणाली के केंद्र में कौन हैं?

(क) कैदी (ख) सिपाही

(ग) जेलर (घ) जज

6. भारत के जेलों में विचाराधीन कैदियों का प्रतिशत लगभग कितना है?

(क) 40 प्रतिशत (ख) 50 प्रतिशत

(ग) 60 प्रतिशत (घ) 70 प्रतिशत

4.5 मानवाधिकार और जेल प्रबंधन

टिप्पणी

वर्षों से कारावास के उद्देश्यों के बारे में एक जीवंत बहस चल रही है, जो अभी भी चल रही है। कुछ टिप्पणीकारों का तर्क है कि इसका उपयोग केवल अपराधियों को दंडित करने के लिए किया जाना चाहिए। दूसरों का कहना है कि इसका मुख्य उद्देश्य जेल में बंद व्यक्तियों को रिहा होने के बाद और अपराध करने से रोकना है, साथ ही उन लोगों को रोकना है जो अपराध करने के लिए इच्छुक हो सकते हैं। एक और दृष्टिकोण यह है कि लोगों को सुधार या पुनर्वास के लिए जेल भेजा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जेल में रहने के दौरान उन्हें पता चलेगा कि अपराध करना गलत है और वे ऐसे कौशल सीखेंगे जो उन्हें रिहा होने पर कानून का पालन करने वाला जीवन जीने में मदद करेंगे। कभी–कभी यह तर्क दिया जाता है कि व्यक्तिगत पुनर्वास कार्य के माध्यम से होता है। कुछ उदाहरणों में, लोगों को जेल भेजा जा सकता है क्योंकि उनके द्वारा किए गए अपराध से पता चलता है कि वे सार्वजनिक सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा पेश करते हैं।

व्यावहारिक रूप से, कारावास के उद्देश्यों की व्याख्या इनमें से कुछ या सभी कारणों के संयोजन के रूप में की जाएगी। प्रत्येक का सापेक्ष महत्व अलग–अलग कैदियों की परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग होगा। हालांकि, अधिक से अधिक व्यापक रूप से राय यह है कि जेल एक महंगा अंतिम उपाय है, जिसका उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब अदालत को यह स्पष्ट हो कि गैर–हिरासत में सजा उचित नहीं होगी।

मुकदमे का इंतजार कर रहे व्यक्तियों की नजरबंदी विशेष चिंता का विषय है। उनकी स्थिति उन लोगों से काफी अलग है जिन्हें किसी अपराध का दोषी ठहराया गया है। उन्हें अभी तक किसी भी अपराध का दोषी नहीं पाया गया है और इसलिए वे कानून की नजर में निर्दोष हैं। वास्तविकता यह है कि उन्हें अक्सर सबसे प्रतिबंधित परिस्थितियों में रखा जाता है, ऐसी स्थितियाँ जो कुछ मामलों में मानवीय गरिमा का अपमान होती हैं। कई देशों में, जेल में बंद अधिकांश लोग मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह अनुपात कभी–कभी 60 प्रतिशत तक हो जाता है। पूर्व–परीक्षण कैदियों के साथ व्यवहार करने के तरीके के साथ विशेष समस्याएं हैं और जब उनके पास वकीलों और उनके परिवारों तक पहुंच है, तो जेल अधिकारियों द्वारा नहीं, बल्कि अभियोजक जैसे किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किया जाता है।

4.5.1 मानवाधिकार के मुद्दे एवं दायित्व

"मानवाधिकार" एक आधुनिक शब्द है लेकिन यह जिस सिद्धांत का आह्वान करता है वह उतना ही पुराना है जितना कि मानवता। इसके अनुसार कुछ अधिकार और स्वतंत्रता मानव अस्तित्व के लिए मौलिक हैं। वे अंतर्निहित अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के परिणामस्वरूप प्राप्त होते हैं, और प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और मूल्य के सम्मान पर आधारित होते हैं। वे विशेषाधिकार नहीं हैं, न ही किसी शासक या सरकार की मर्जी से दिए गए उपहार हैं। न ही उन्हें किसी मनमानी शक्ति से छीना जा सकता है। उन्हें नकारा नहीं जा सकता और न ही उन्हें ज़ब्त किया जा सकता है क्योंकि किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है या कोई कानून तोड़ा है।

टिप्पणी

प्रारंभ में इन अधिकारों का कोई कानूनी आधार नहीं था। इसके बजाय उन्हें नैतिक दावे माना जाता था। समय के साथ इन अधिकारों को औपचारिक रूप से कानून द्वारा मान्यता दी गई और संरक्षित किया गया। अक्सर वे एक देश के संविधान में संरक्षित होने के लिए आते थे, अक्सर एक बिल ऑफ राइट्स के रूप में, जिसे कोई भी सरकार अस्वीकार नहीं कर सकती थी। इसके अलावा, स्वतंत्र अदालतें स्थापित की गईं, जिनमें जिन व्यक्तियों के अधिकार छीन लिए गए थे, वे निवारण की मांग कर सकते थे।

1930 के दशक में मानवाधिकारों और स्वतंत्रता के व्यापक हनन, जिसकी परिणति 1939 और 1945 के बीच विश्व युद्ध के अत्याचारों में हुई, ने इस धारणा को समाप्त कर दिया कि अपने नागरिकों के उपचार में व्यक्तिगत राज्यों का एकमात्र अधिकार होना चाहिए। जून 1945 में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर पर हस्ताक्षर ने मानवाधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय कानून के दायरे में ला दिया। संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देश मानवाधिकारों की रक्षा के लिए उपाय करने पर सहमत हुए। तीन साल बाद, मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अपनाने से दुनिया को "सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए उपलब्धि का सामान्य मानक" प्रदान किया गया, जो "अंतर्निहित गरिमा और मानव परिवार के सभी सदस्यों के समान और अयोग्य अधिकारों की मान्यता" पर आधारित था।

मानवाधिकार के मुद्दे और दायित्व अब सरकार के दिन–प्रतिदिन के आचरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इन वर्षों में, 1948 में सार्वभौम की घोषणा के बाद से, राज्यों ने राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर काफी संख्या में मानवाधिकार उपकरणों का विकास किया है, और अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू कानून के तहत दायित्वों का निर्वहन किया है।

4.5.2 जेल अधिकारियों की भूमिका

जेल कर्मचारी ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त करते हैं जो कानूनी रूप से उनकी स्वतंत्रता से वंचित हैं। उनकी जिम्मेदारी है कि उन्हें सुरक्षित रूप से पकड़ें और फिर, ज्यादातर मामलों में, उन्हें वापस समुदाय में छोड़ दें। इस समारोह में समाज की ओर से अत्यधिक मांग और तनावपूर्ण कार्यों को अंजाम देना शामिल है; फिर भी, कई देशों में, जेल अधिकारियों को बुरी तरह प्रशिक्षित किया जाता है, उन्हें कम वेतन दिया जाता है और वे हमेशा सार्वजनिक सम्मान का आनंद नहीं लेते हैं।

स्वतंत्रता और अधिकारों की वैध सीमाओं की स्थितियों का सामना करते हुए, जेल अधिकारी दैनिक आधार पर मानवाधिकार संरक्षण में सबसे आगे हैं, उनका अनुभव कर रहे हैं और उन्हें व्यवहार में ला रहे हैं तथा उनका सम्मान कर रहे हैं।

इस ढांचे में, मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा से लेकर विशिष्ट ग्रंथों जैसे कि कैदियों के उपचार के लिए मानक न्यूनतम नियम, किसी भी प्रकार की हिरासत या कारावास के तहत सभी व्यक्तियों की सुरक्षा के लिए सिद्धांतों का निकाय, या यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या सजा के खिलाफ कन्वेंशन नियमों का एक सेट प्रदान करता है जो जेल कर्मचारियों को कानूनी, मानवीय और अनुशासित नीतियों और प्रथाओं के माध्यम से अपने कर्तव्यों का पालन

करने में मदद करता है। ऐसे सिद्धांतों को दैनिक आचरण में शामिल करने से इस पेशे की गरिमा मजबूत होती है।

टिप्पणी

मानवाधिकार मानकों, जो इस मैनुअल की सामग्री का गठन करते हैं, को अक्सर राष्ट्रीय कानूनों और विनियमों में शामिल किया गया है; वे एक ऐसे कार्य के प्रदर्शन के लिए अमूल्य मार्गदर्शन प्रदान करते हैं जो एक लोकतांत्रिक समाज के अच्छे कामकाज और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

मानवाधिकार राज्य या उसके एजेंटों के अनन्य अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत कोई मामला नहीं है। बल्कि, वे अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की एक वैध चिंता है, जो मानकों की स्थापना, कार्यान्वयन तंत्र की स्थापना और मानकों के अनुपालन की निगरानी में आधी सदी से लगा हुआ है। जेल अधिकारी अपने कार्यों को इस तरह से करते हैं कि मानवाधिकारों को सम्मान और सुरक्षा मिलती है। इससे न केवल खुद को, बल्कि उस सरकार को भी सम्मान मिलता है जो उन्हें और उस राष्ट्र को भी सम्मानित करती है जिसकी वे सेवा करते हैं। जो लोग मानवाधिकारों का उल्लंघन करते हैं, वे अंततः अंतर्राष्ट्रीय जांच और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की निंदा का ध्यान आकर्षित करेंगे।

4.5.3 सुधार की बाधाएं और संभावनाएं

इसी सदी में भारतीय कारागार व्यवस्था में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं किंतु इसे सुधारात्मक पद्धति में डालने के प्रयत्न को पूर्णतया कार्यान्वित करने में सफलता नहीं मिली है क्योंकि अनेक समस्याएं इन सुधारों को कार्यान्वित करने में बाधक सिद्ध होती हैं। इन समस्याओं का उल्लेख उच्चतम न्यायालय के राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य के वाद में कहा गया है।

कुछ प्रमुख समस्याएं जैसे कारागार में बंदियों की भीड़, विचाराधीन बंदियों के विचारण में देरी, बंदियों के साथ कारागार में होने वाला दुर्व्यवहार और प्रताड़ना, कारावासियों का स्वास्थ्य और स्वच्छता तथा अपर्याप्त भोजन, आहार तथा कपड़े, कारागार में व्याप्त बुराइयां जैसे हिंसा, व्यसन, लैंगिक दुराचार आदि हैं। कारावासियों के लिए पत्र व्यवहार या संसूचना आदि की सुविधा की कमी इत्यादि भी ऐसी ही समस्याएं हैं।

न्यायालय के विचार में यद्यपि कारागार प्रशासन उपरोक्त समस्याओं से अवगत है तथा उनके निवारण हेतु प्रयासरत भी है किंतु फिर भी इसमें उसे आशातीत सफलता नहीं मिल पाई है जिसका कारण संभवतः जेल अधिकारियों तथा कर्मचारियों में संवेदनशीलता और इच्छाशक्ति की कमी होना है। यदि वे सब अपने कार्यों में खुलापन, पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चित करें तो कारागार व्यवस्था में सुधार अवश्य होगा।

इसमें संदेह नहीं कि तमाम समस्याओं के बाद भी वर्तमान कारागारों की दशा अधिक सुदृढ़ एवं बेहतर हुई है और इस दिशा में अभी और सुधार किया जाना अपेक्षित है।

कुछ सुधार जो प्रस्तावित किए जा सकते हैं उनमें कारागारों के रखरखाव पर खर्च होने वाली बड़ी राशि को कम करने की दृष्टि से देखना आवश्यक है। साथ ही

टिप्पणी

महिला कैदियों के साथ विशेष उदारता का व्यवहार किया जाना तथा उन्हें अपने बच्चों से मिलने की अधिकाधिक सुविधा दी जाना इन सुझावों में आता है। इस सुझाव से महिला कैदियों की मानसिक दशा संतुलित रहेगी और यह महिला कैदियों के लिए उपचारात्मक भी है। इसी प्रकार कृषि व्यवसाय से जुड़े अपराधियों को कटाई–बुआई के दिनों में खेतों में कार्य करने हेतु अस्थाई अवकाश स्वीकृत करना चाहिए, इससे वे अपना व्यवसाय निरंतर जारी रख सकते हैं और परिवारजनों के उदर पोषण की व्यवस्था भी कर सकते है। कारागार में शिक्षण व्यवस्था सामान्य पढ़ाई–लिखाई के साथ औद्योगिक तथा व्यवसाय प्रशिक्षण पर आधारित होनी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

7. संयुक्त राष्ट्र के चार्टर पर हस्ताक्षर ने मानवाधिकारों को कब अंतर्राष्ट्रीय कानून के दायरे में ला दिया?

   (क) जून 1945 में (ख) जुलाई 1946 में

   (ग) अगस्त 1943 में (घ) सितंबर 1944 में

8. मानवाधिकार के मुद्दे और दायित्व अब किसके दिन–प्रतिदिन के आचरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है?

   (क) जनता के (ख) पुलिस के

   (ग) कानून के (घ) सरकार के

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (क)
4. (क)
5. (क)
6. (घ)
7. (क)
8. (घ)

4.7 सारांश

भारत में अत्याधुनिक जेल की शुरुआत 1835 में टीबी मैकाले द्वारा की गई। विशिष्ट जेल अनुशासन समिति के लिए एक समिति को प्रत्यायोजित किया गया, जिसने 1838 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति ने हर एक परोपकारी आवश्यकता और परिवर्तनों को खारिज करते हुए उपचार की विस्तृत पूर्णता निर्धारित की। 1836–1838 के बीच मैकाले समिति के प्रस्तावों के बाद, 1846 से केंद्रीय कारागार विकसित किए गए।

टिप्पणी

भारत में समकालीन कारागार संगठन अंग्रेजों की विरासत है। यह इस विचार को ध्यान में रखते हुए है कि जब तक अनुशासन के अभिशाप के लिए महान हार्डवेयर न हो, तब तक सबसे अच्छा आपराधिक कोड किसी समूह के लिए बहुत कम उपयोग हो सकता है। 1864 में, जेल प्रबंधन और अनुशासन की जांच के दूसरे आयोग ने 1836 समिति के बारे में तुलनात्मक सुझाव दिए। इसके अलावा, इस आयोग ने कैदियों की सुविधा, आहार, कपड़े, बिस्तर और चिकित्सीय देखभाल में सुधार के संबंध में कुछ सिफारिशें कीं।

1888 में, चौथा जेल आयोग नामित किया गया था। इसके सुझाव के आधार पर एक समेकित जेल बिल तैयार किया गया। जेल प्रशासन पर विशेषज्ञों की एक बैठक द्वारा जेल अपराधों और अनुशासन के संबंध में व्यवस्थाओं का असाधारण विश्लेषण किया गया। 1894 में, भारत के गवर्नर जनरल की सहमति से मसौदा प्रभार कानून बनने की ओर बढ़ गया।

भारत के अधिकांश कारागारों में कैदियों की संख्या निर्धारित संख्या से बहुत अधिक है। कारागार में कैदियों की भीड़ का दुष्परिणाम यह होता है कि छोटे अपराध करने वाले कैदियों को गंभीर और घोर अपराधियों के साथ रखना पड़ता है जिससे छोटे अपराध करने वाले अपराधी भी घोर अपराधी बन जाते हैं।

भारतीय जेलों में कैदियों की भीड़ को कम करने के लिए विधि आयोग ने 78वें प्रतिवेदन में कतिपय उपयोगी सुझाव दिए थे जिस में कैदियों को जमानत पर रिहा करने से संबंधित नियमों के बारे में अनुशंसा प्रमुख थी। विचाराधीन कैदियों को यथासंभव जमानत पर रिहा करने से कारागार में कैदियों की संख्या में कमी आएगी। इसी प्रकार दंड के रूप में अर्थदण्ड के दण्डादेश से भी कारावासियों की संख्या में पर्याप्त कमी हो सकती है।

इसके अतिरिक्त पैरोल आदि प्रक्रियाओं से जेलों में कैदियों की भीड़ की समस्या को हल किया जा सकता है। न्यायमूर्ति ए. एन. मुल्ला की अध्यक्षता में सन् 1980 में अखिल भारतीय जेल सुधार समिति गठित की गई। इस समिति की सिफारिशों को लागू किया जाना भी कारागारों में भीड़ को कम करने में सहायक होगा। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एवं मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष के.जी. बालाकृष्णन ने कारागार सुधार पर दिल्ली में आयोजित एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में कहा था कि कारागार में बंदियों की अत्यधिक भीड़ के कारण उनके अनेक मूलभूत अधिकारों का हनन होता है इसलिए कारागार व्यवस्था राज्य सरकारों का विषय है और राज्यों के उच्च न्यायालयों की भूमिका इस दिशा में अधिक महत्वपूर्ण है।

वर्षों से कारावास के उद्देश्यों के बारे में एक जीवंत बहस चल रही है, जो अभी भी चल रही है। कुछ टिप्पणीकारों का तर्क है कि इसका उपयोग केवल अपराधियों को दंडित करने के लिए किया जाना चाहिए। दूसरों का कहना है कि इसका मुख्य उद्देश्य जेल में बंद व्यक्तियों को रिहा होने के बाद और अपराध करने से रोकना है, साथ ही उन लोगों को रोकना है जो अपराध करने के लिए इच्छुक हो सकते हैं। एक और दृष्टिकोण यह है कि लोगों को सुधार या पुनर्वास के लिए जेल भेजा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जेल में रहने के दौरान उन्हें पता चलेगा कि अपराध करना गलत

टिप्पणी

है और वे ऐसे कौशल सीखेंगे जो उन्हें रिहा होने पर कानून का पालन करने वाला जीवन जीने में मदद करेंगे। कभी–कभी यह तर्क दिया जाता है कि व्यक्तिगत पुनर्वास कार्य के माध्यम से होता है। कुछ उदाहरणों में, लोगों को जेल भेजा जा सकता है क्योंकि उनके द्वारा किए गए अपराध से पता चलता है कि वे सार्वजनिक सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा पेश करते हैं।

"मानवाधिकार" एक आधुनिक शब्द है लेकिन यह जिस सिद्धांत का आह्वान करता है वह उतना ही पुराना है जितना कि मानवता। कुछ अधिकार और स्वतंत्रता मानव अस्तित्व के लिए मौलिक हैं। वे अंतर्निहित अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के परिणामस्वरूप प्राप्त होते हैं, और प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और मूल्य के सम्मान पर आधारित होते हैं। वे विशेषाधिकार नहीं हैं, न ही किसी शासक या सरकार की मर्जी से दिए गए उपहार हैं। न ही उन्हें किसी मनमानी शक्ति से छीना जा सकता है। उन्हें नकारा नहीं जा सकता और न ही उन्हें ज़ब्त किया जा सकता है क्योंकि किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है या कोई कानून तोड़ा है।

प्रारंभ में इन अधिकारों का कोई कानूनी आधार नहीं था। इसके बजाय उन्हें नैतिक दावे माना जाता था। समय के साथ इन अधिकारों को औपचारिक रूप से कानून द्वारा मान्यता दी गई और संरक्षित किया गया। अक्सर वे एक देश के संविधान में संरक्षित होने के लिए आते थे, अक्सर एक बिल ऑफ राइट्स के रूप में, जिसे कोई भी सरकार अस्वीकार नहीं कर सकती थी। इसके अलावा, स्वतंत्र अदालतें स्थापित की गईं, जिनमें जिन व्यक्तियों के अधिकार छीन लिए गए थे, वे निवारण की मांग कर सकते थे।

जेल कर्मचारी ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त करते हैं जो कानूनी रूप से उनकी स्वतंत्रता से वंचित हैं। उनकी जिम्मेदारी है कि उन्हें सुरक्षित रूप से पकड़ें और फिर, ज्यादातर मामलों में, उन्हें वापस समुदाय में छोड़ दें। इस समारोह में समाज की ओर से अत्यधिक मांग और तनावपूर्ण कार्यों को अंजाम देना शामिल है; फिर भी, कई देशों में, जेल अधिकारियों को बुरी तरह प्रशिक्षित किया जाता है, उन्हें कम वेतन दिया जाता है और वे हमेशा सार्वजनिक सम्मान का आनंद नहीं लेते हैं। स्वतंत्रता और अधिकारों की वैध सीमाओं की स्थितियों का सामना करते हुए, जेल अधिकारी दैनिक आधार पर मानवाधिकार संरक्षण में सबसे आगे हैं, उनका अनुभव कर रहे हैं और उन्हें व्यवहार में ला रहे हैं।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **विशिष्ट** : विशेष, महत्वपूर्ण।
- **सहमति** : रजामंदी।
- **विफल** : असफल।
- **खामी** : कमी।
- **खारिज** : रद्द
- **रिहा** : मुक्त।
- **कारागार** : जेल।

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में अत्याधुनिक जेल की शुरुआत कब और किसके द्वारा हुई?
2. भारत में चौथा जेल आयोग कब नामित किया गया और इसके सुझाव के आधार पर क्या तैयार किया गया?
3. हिरासत की मानसिकता से आप क्या समझते हैं?
4. जेल अधिकारियों की भूमिका क्या है?
5. भारतीय कारागार व्यवस्था में सुधार की क्या बाधाएं हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में जेल प्रशासन से संबंधित समस्याओं से निबटने के लिए गठित की गई विभिन्न समितियों और अधिनियमों की व्याख्या कीजिए।
2. भारत के जेल प्रशासन में व्याप्त समस्याओं तथा अधूरी जरूरतों की विवेचना कीजिए।
3. भारत के कारागारों में मौजूद कैदियों की भीड़ की समस्या की समीक्षा कीजिए।
4. जेल अभिरक्षा में कैदियों को दी जाने वाली यातनाओं का विश्लेषण कीजिए।
5. आपराधिक न्याय प्रणाली के कामकाज में व्याप्त प्रमुख बाधाओं पर प्रकाश डालिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Taft, D. R. and R.W England. (1964).
2. *Criminology*. New York: Macmillan, 1958.
3. Fox, V. *Introduction to Criminology,* 2nd ed. New Jersey: Prentice Hall, 1985.
4. Sutherland, E.H. and D.R. Cressey. *Principles of Criminology,* 7th ed. Chicago: Lippincott, 1966.
5. Barnes, H. E. and N. K. Teeters. *New Horizons in Criminology.* New Jersey: Prentice Hall, 1959.
6. Ashworth Andrew and Mike Redmayne. *The Criminal Process.* USA: Oxford University Press.
7. Cross and Wilkins. *Outlines of the law of Evidence.* USA: Oxford University Press.
8. Hampton, Celia. *Criminal Procedure*. London: Sweet & Maxwell.
9. Lucia Zedner. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
10. Sanders Andrew, Richard Young and Mandy Burton. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.

टिप्पणी

11. Sarkar M.C., S.C. Sarkar and Prabas C Sarkar. *Law of Evidence.* New Delhi: LexisNexis Publisher.
12. Moberly, Hamilton, Sir Walter. 1968. *The Ethics of Punishment*. Faber and Faber.
13. Shah, H. Jyotsna. 1973. *Probation Services in India.* N. M. Tripathi.
14. Bhattacharya, B. K. 1958. *Prisons*. S.C. Sarkar.
15. Cross, Rupert. 1981. *The English Sentencing System.* Butterworth (Publishers) Limited.
16. Stewart, S. W. 1969. *A Modern View of Criminal Law*. Pergamon Press.
17. Fitzgerald, John, Patrick. 1962. *Criminal Law and Punishment.* Clarendon Press.

इकाई 5 कारावास के विकल्प एवं पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 परिवीक्षा
  5.2.1 परिवीक्षा क्रियान्वयन
  5.2.2 परिवीक्षा का उद्देश्य
  5.2.3 अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958
  5.2.4 परिवीक्षा प्रक्रिया
5.3 पैरोल (कारावकाश)
5.4 खुली जेल
5.5 पश्च देखभाल और पुनर्स्थापन
5.6 पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण
  5.6.1 धारा 357 A अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकर योजना
  5.6.2 अपराध पीड़ितों को प्रतिकरात्मक अनुतोष
5.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.8 सारांश
5.9 मुख्य शब्दावली
5.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

वर्तमान सुधारवादी दंड व्यवस्था में अपराधियों के उपचारात्मक सुधार की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से अपराधी नहीं होता परंतु परिस्थितियां उसे अपराधी बना देती हैं। अतः सभी देश इस बात पर स्वीकृत हैं कि अपराधी को दंडित करके जेल भेजने के स्थान पर उसे परिवीक्षा का लाभ देकर समाज में ही परिवीक्षा अधिकारी की निगरानी में रखना चाहिए और यह उसके सुधार की दिशा में एक प्रगतिवादी कदम है। इस प्रकार परिवीक्षा को अपराधियों को कारावासित करने के स्थान पर एक प्रभावी विकल्प के रूप में देखा जा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में कारावास के विभिन्न विकल्पों की विवेचना की गई है तथा अपराध क्षतिपूर्ति में पीड़ित के उत्तरदायित्व की व्याख्या की गई है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कारागार के विभिन्न विकल्पों के बारे में जान पाएंगे;
- परिवीक्षा की परिभाषा तथा अर्थ को समझ पाएंगे;
- पैरोल प्रणाली का विश्लेषण कर पाएंगे;

टिप्पणी

- खुली जेल की विशेषताओं का उल्लेख कर पाएंगे;
- सुधारात्मक संस्थाओं से रिहा किए कैदियों की पश्च देखभाल की अवधारणा को समझ पाएंगे;
- पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण की व्याख्या कर पाएंगे।

5.2 परिवीक्षा

अपराधियों को सुधारने के लिए एक उपचारात्मक पद्धति के रूप में परिवीक्षा को वर्तमान भारत में और सभी देशों में दंड प्रणालियों में स्वीकार कर लिया गया है।

परिवीक्षा की परिभाषा

प्रोबेशन अथवा परिवीक्षा शब्द की उत्पत्ति एक लैटिन शब्द 'प्रोबेर' (probare) से हुई है इस शब्द का अर्थ है परीक्षा लेना या अपनी विश्वसनीयता को साबित करना।

परिवीक्षा के अंतर्गत अपराधी को जेल भेजने के स्थान पर सुधार के लिए समाज में ही उचित मार्गदर्शनशास्त्र और देखरेख में रखा जाता है जिससे कि वह सदाचारी बन सके। यदि परिविक्षाधीन अपराधी परिवीक्षा की अवधि में पर्यवेक्षक की किसी भी शर्त का उल्लंघन करता है या कोई अन्य अपराध करता है तो उसे बंदी बनाकर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है जहां उसे दंड सुना कर जेल भेजने की प्रक्रिया शुरू की जाती है।

अलग–अलग दंडशास्त्रियों ने परिवीक्षा को अपने–अपने तरीके से परिभाषित किया है–

डोनाल्ड टैफ्ट के मत में परिवीक्षा की परिभाषा इस प्रकार है कि किसी आपराधिक विचारण में दोषी अपराधी के विरुद्ध न्यायालय के अंतिम निर्णय के निलंबन को परिवीक्षा कहते हैं जिससे अपराधी को आचरण सुधारने का अवसर मिलता है और वह स्वयं को समाज में समायोजित कर सकता है। परिवीक्षा अवधि में अपराधी न्यायालय द्वारा निर्देशित शर्तों का पालन करता है और परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण या निर्देशन में रहता है।

सदरलैंड ने भी परिवीक्षा को परिभाषित किया है उनके अनुसार परिवीक्षा दोषी पाए गए अपराधी के दंड के निलंबन की वह प्रास्थिति है जिसमें उसे सद्व्यवहार बनाए रखने की शर्तों पर स्वतंत्रता दी जाती है तथा जिसमें राज्य अपने वैयक्तिक पर्यवेक्षण द्वारा उसे सद्व्यवहार बनाए रखने में सहायता करता है।

परिवीक्षा समाधान से पूर्ण रूप से भिन्न है तथा इसके 3 मुख्य तत्व हैं–

1. परिविक्षाधीन अपराधी पर आवश्यक पर्यवेक्षण या निगरानी रखी जाती है।
2. उसका उचित मार्गदर्शन किया जाता है।
3. समाज में एक विधि का अनुसरण करने वाले नागरिक की भांति समायोजित होने में उसकी सहायता की जाती है।

डॉक्टर वाल्टर सी रेक्लेस ने परिवीक्षा को न्यायालय द्वारा दोषी पाए गए अपराधी के दंड के निलंबन के रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार परिवीक्षा से वह अपराधी समाज में रहकर अपने व्यवहार में सुधार कर सकता है।

रिचर्ड चैपेल ने परिवीक्षा को अपराधी के लिए दंड के बदले एक अच्छे विकल्प के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें अपराधी के प्रति उदारता बरतते हुए उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है और इसका उद्देश्य यह है कि वह कारागार के दूषित वातावरण से बच सके और समाज में रहकर ही अपना आचरण सुधार सके। उनके अनुसार परिवीक्षा को उपचारात्मक दंड पद्धति का एक अत्यंत प्रभावी अंग माना गया है।

उपयुक्त सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि परिवीक्षा एक प्रगतिवादी दंड नीति का प्रतीक है जो अपराधी के वैयक्तिक उपचार पर केन्द्रित है।

5.2.1 परिवीक्षा क्रियान्वयन

परिवीक्षा व्यवस्था दो तरीके से क्रियान्वित की जाती है, न्यायालय द्वारा अपराधी का दंड निर्धारित करने के बाद उसे परिवीक्षा पर छोड़ा जा सकता है या फिर उसका दंड निर्धारित किए बिना ही उसे परिवीक्षा के अधीन रखे जाने का आदेश दिया जाता है।

इस प्रकार परिवीक्षा में या तो दंड निर्धारित करने पर रोक लगा दी जाती है और यदि दंड निर्धारण किया जा चुका है तो उसका क्रियान्वयन निलंबित किया जाता है और अपराधी को सशर्त या बिना शर्त समाज में अच्छा व्यवहार करने की शर्त के साथ छोड़ दिया जाता है।

यदि परिवीक्षा काल में परिवीक्षाधीन अपराधी नियमों का उल्लंघन करता है तो उसके निलंबित दंड को तुरंत कार्यान्वित कर के उसे कारागार भेज दिया जाता है किंतु उसका दंड निर्धारित किए बिना ही उसे परिवीक्षा आदेश दिया गया है तो परिवीक्षा के नियमों का उल्लंघन किए जाने पर पहले उसका दंड निर्धारित किया जाता है और फिर उस दंड को क्रियान्वित किया जाता है।

दंड शास्त्रियों के अनुसार दंड के क्रियान्वयन को निलंबित रखने के स्थान पर दंड के अधिरोपण को निलंबित रखना अधिक उचित और उपयोगी होता है क्योंकि ऐसा करने से अपराधी को 'सिद्ध दोष अपराधी' कहलाने से बचाया जा सकता है।

सांविधानिक दृष्टि से परिवीक्षा सिद्ध दोष अपराधी की वह प्रास्थिति है जिसके द्वारा उसके दंड के निलंबन काल में उसे सदाचरण रखने की शर्त पर उन्मुक्ति दी जाती है। ऐसे व्यक्ति को राज्य भी सदाचारी बनने में सहायता करता है और यही परिवीक्षा व्यवस्था में मूलभूत सिद्धांत है। अपराधी सिद्ध दोष होने पर उसके दंड को निलंबित रखते हुए उसे परिवीक्षा का लाभ देकर छोड़े जाने के मुख्यतः दो कारण होते हैं–

1. किसी भी अपराधी के पूर्व वृतांत और परिस्थितियों को देखते हुए उसमें सुधार की संभावना होने पर उसे परिवीक्षा में रखा जाता है और उसके प्रति न्याय उदारता दर्शाई जाती है।
2. अपराधी पर उचित नियंत्रण और पर्यवेक्षण रखते हुए उसकी सहायता की जाती है जिससे कि वह परिवीक्षा अवधि में अच्छा आचरण रखेगा और उसे नियंत्रित रखने के लिए पर्याप्त प्रतिरोध भी कार्य करते हैं।

परिवीक्षा व्यवस्था दंड और सामाजिक सुरक्षा के सिद्धांतों की भिन्नता को मिटाने के लिए एक सेतु का कार्य करता है क्योंकि दंड के भय के साथ–साथ अपराधी के उपचार और सुधार का भी ध्यान रखा जाता है।

टिप्पणी

5.2.2 परिवीक्षा का उद्देश्य

रामजी मिस्सर बनाम बिहार राज्य के वाद में उच्चतम न्यायालय ने परिवीक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए अभिकथन किया कि परिवीक्षा अधिनियम 1958 का उद्देश्य युवा अपराधियों को अभ्यस्त एवं कट्टर अपराधी बनने से रोकना है क्योंकि यदि ऐसे नव अपराधी कारावास में भेजे जाते हैं तो वे अभ्यस्त एवं वयस्क अपराधियों के संपर्क में आते हैं और उनकी संगति में पड़ कर कट्टर अपराधी बन सकते हैं। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से अपराधी नहीं होता वरन् अधिकांश अपराधी परिस्थितियों से विवश होकर ही अपराध करते हैं। कट्टर अपराधियों को सुधारना कठिन है किंतु युवा एवं नए अपराधियों को सुधारने के लिए परिवीक्षा प्रयोग निश्चित रूप से लाभकारी सिद्ध होगा और इसके परिणाम स्वरूप वे अभ्यस्त अपराधियों के संपर्क से आने से बचेंगे। परिवीक्षा अधिनियम इस उद्देश्य को ही प्राथमिकता देता है। यह अधिनियम घोर एवं कट्टर अपराधियों के लिए प्रयोज्य नहीं है जो कि सुधार योग्य नहीं होते हैं लेकिन नए अपराधी या युवा अपराधियों के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त है।

परिवीक्षा तथा निलंबित दंड में अंतर

परिवीक्षा और निलंबित दंड दोनों ही न्यायिक प्रक्रिया में एक–दूसरे से जुड़े हैं किंतु दोनों में मौलिक भिन्नता है। सभी निलंबित दंड परिवीक्षा नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि परिवीक्षा में अपराधी पर पर्यवेक्षण रखा जाता है और निलंबित दंड की दशा में यह आवश्यक नहीं है। परिवीक्षा में दंड के निलंबन का निर्णय पूर्ण रूप से न्यायालय के स्वविवेक पर निर्भर करता है किंतु सामान्य दंड के निलंबन में न्यायालय को सांविधिक प्रावधानों की सीमाओं का पालन करना आवश्यक होता है। परिवीक्षा में दंड का निलंबन या तो दंड निर्धारित किए बिना ही किया जाता है या दंड निर्धारित किया गया हो तो उसे क्रियान्वित करने से पूर्व किया जा सकता है परंतु सामान्य दंड के निलंबन में यह स्थिति उत्पन्न नहीं होती और वह विधि के प्रावधानों के अनुसार ही किया जा सकता है।

5.2.3 अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958

सन 1958 के अपराधी परिवीक्षा अधिनियम में 19 धाराएं हैं जिनमें अपराधियों के परिवीक्षा लाभ के संबंध में उपबंध हैं। अधिनियम में युवा अपराधियों तथा अन्य अपराधियों को दंडित किए जाने के स्थान पर अन्य उपायों से सुधारात्मक प्रावधानों का उल्लेख है। इस अधिनियम की मुख्य रूपरेखा निम्नलिखित है–

1. इस अधिनियम के अधीन सिद्ध दोष अपराधी को परिवीक्षा का लाभ देकर छोड़े जाने के लिए आयु, लिंग या पूर्व दोष सिद्धि के प्रतिबंध लागू नहीं होते।
2. न्यायालय को इस अधिनियम के अधीन यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी भी सिद्ध दोष अपराधी को परिवीक्षा का लाभ देकर छोड़ सकता है। अपराधी द्वारा किया गया अपराध मृत्युदंड या आजीवन कारावास के दंड से दंडित नहीं होना चाहिए।
3. परिवीक्षा से आशय है दंड का स्थगन अतः परिवीक्षा की शर्तों का उल्लंघन किए जाने पर अपराधी का दंड बिना किसी पुनः विचारण के पुनर्जीवित हो जाता है।

टिप्पणी

4. परिवीक्षा पर छोड़े जाने से इनकार किए जाने का विरोध अपीलीय न्यायालय स्वप्रेरणा से सुनवाई हेतु स्वीकार कर सकता है।
5. अपराधी को चेतावनी मात्र देकर छोड़ा जा सकता है।
6. अपराधी को अच्छे आचरण के बंद पत्र पर, पर्यवेक्षण सहित या पर्यवेक्षण रहित उन्मुक्त किया जा सकता है। न्यायालय द्वारा बंधपत्र में शर्तें भी रखी जा सकती हैं और जिनका पालन न करने पर अपराधी को अर्थदंड या कारावास का दंड दिया जा सकता है।
7. 21 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को कारावास का दंड नहीं दिया जा सकता जब तक कि न्यायालय परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट प्राप्त नहीं कर लेता। ऐसे व्यक्तियों को कारावास का दंड देते समय न्यायालय को कारणों का लिखित उल्लेख करना होता है।
8. परिवीक्षा अधिनियम की धारा 7 में दंड पूर्व रिपोर्ट संबंधी प्रावधान है जिसके आधार पर दंडाधिकारी यह विनिश्चित करता है कि सिद्ध दोष अभियुक्त को परिवीक्षा का लाभ देकर छोड़ा जाए या नहीं।
9. अधिनियम की धारा 11 में न्यायालय की अपील एवं पुनरीक्षण तथा अपीलीय न्यायालयों की पुनरीक्षण शक्ति संबंधी समर्थकारी प्रावधान द्वारा परिवीक्षा संबंधी विधि के क्षेत्र अधिकार को अधिक व्यापक बनाया गया है।
10. परिवीक्षा अधिनियम की धारा 12 के अनुसार जो अपराधी परिवीक्षा पर छोड़े जाते हैं उनके प्रति दोष सिद्धि के साथ जुड़ी हुई निरयोग्यताएं लागू नहीं होतीं।

परिवीक्षा विधि केवल किशोर अपराधियों तक ही सीमित नहीं है वरन वह वयस्क अपराधियों के प्रति भी लागू होती है। इसी प्रकार के प्रावधान भारतीय दंड विधि के अंतर्गत किए गए अपराधों के अलावा विशेष अधिनियमों में जैसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1954, आवश्यक वस्तु आपूर्ति अधिनियम 1940, सीमा शुल्क अधिनियम 1962, विदेशी मुद्रा विनिमय तथा तस्करी निवारण अधिनियम 1978 आदि के अंतर्गत कार्यरत होने वाले अपराधों के प्रति भी लागू होते हैं।

राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य के वाद में उच्चतम न्यायालय ने विनिश्चित किया कि परिवीक्षा को अभियुक्त के दंड का निलंबन माना जाना चाहिए क्योंकि परिवीक्षा पर छोड़े गए व्यक्ति को परिवीक्षा काल में अच्छे आचरण का बंधन पत्र देना आवश्यक होता है। इसका उल्लंघन किए जाने पर उसे कारावास भेजा जाता है। अधिनियम में परिवीक्षा संबंधी अनेक शर्तें रखी गई हैं और अपराधी द्वारा इनका पालन करना आवश्यक है ऐसा न करने पर दंडात्मक कार्यवाही का उल्लेख है।

5.2.4 परिवीक्षा प्रक्रिया

न्यायालय के समक्ष परिवीक्षा आदेश जारी किए जाने का प्रश्न उस समय प्रस्तुत होता है जब उसे सिद्ध दोष अपराधी के मामले में निर्णय सुनाना होता है। न्यायालय परिवीक्षा आदेश पारित करने से पहले अपराधी के बारे में परिवीक्षा अधिकारी की दंड पूर्व रिपोर्ट लेता है किंतु ऐसी रिपोर्ट लेना अनिवार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त दंड पूर्व रिपोर्ट न्यायालय के लिए बंधनकारी नहीं है। अपराधी को परिवीक्षा पर छोड़ा जाना पूर्णतः

टिप्पणी

न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है। व्यावहारिक रूप से न्यायालय परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट मांग कर ही निर्णय देते हैं जिससे न्याय के विषय में कोई संदिग्धता न रहे। न्यायालय द्वारा परीक्षा आदेश में अपराधी की आयु का उल्लेख किया जाना आवश्यक होता है। वारंट प्रकरणों में आरोप पत्र जारी करते समय ही न्यायालय अभियुक्त के बारे में परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट मांग लेता है।

परिवीक्षा सुधार योग्य अपराधियों के उपचार की ऐसी पद्धति है जिसका उद्‌भव यूरोप मानव अधिकार आंदोलन से हुआ। यह सुधारात्मक न्याय का ऐसा अंग है जो अपराधियों को स्वयं में सुधार लाकर समाज में पुनः समेकित होने का अवसर देता है। निश्चित ही परिवीक्षा पद्धति अपराधियों के कारावासीकरण का एक अत्यंत प्रभावी विकल्प है।

इस विकल्प को अपनाने से सरकार का खर्चा भी कम होता है और कारागार में बंदियों की भीड़ भी कम रहती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. परिवीक्षा के कितने मुख्य तत्व हैं?

   (क) चार (ख) तीन

   (ग) दो (घ) पांच

2. सन 1958 के अपराधी परिवीक्षा अधिनियम में कितनी धाराएं हैं?

   (क) 19 (ख) 20

   (ग) 18 (घ) 21

5.3 पैरोल (कारावकाश)

आधुनिक दंडशास्त्र में कैदियों की सुधारात्मक संस्था के रूप में पैरोल सर्वाधिक स्वीकार्य पद्धति मानी जाती है।

पैरोल प्रणाली के द्वारा कैदियों का पुनर्वास तथा समाज में पुनर्स्थापन प्रभावी रूप से किया जा सकता है। इसका एक परिणाम और भी है कि पैरोल के कारण कारागार में कैदियों की भीड़ कम रखने में भी सहायता मिलती है।

पैरोल की परिभाषा

वर्तमान समय में पैरोल अपराधियों के प्रति समाज के बदले हुए रुझान का प्रतीक है।

जे. एल.गिलिन ने पैरोल की परिभाषा इस प्रकार दी है कि पैरोल किसी अपराधी की दांडिक या सुधार संस्था से ऐसी मुक्ति है जिसके अंतर्गत उस अपराधी को किसी उपचारात्मक प्राधिकारी के नियंत्रण में रखा जाता है जिससे यह पता लगाया जा सके कि वह बिना निगरानी के समाज में विचरने योग्य है या नहीं।

डॉनल्ड टेफ्ट के अनुसार पैरोल को कैदी की मुक्ति का ऐसा साधन माना गया है जिसमें उस पर कुछ नियंत्रण बना रहने पर भी उसे समाज में सामान्य सामाजिक संबंध स्थापित करने की छूट दी जाती है और उसके पुनर्वास में रचनात्मक सहायता भी की जाती है।

सदरलैंड के मत में पैरोल एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत कारावासी द्वारा किसी दाण्डिक संस्था या सुधार गृह में दंड की अधिकतम अवधि का कुछ हिस्सा व्यतीत कर लेने के पश्चात उसे पूर्ण मुक्ति प्रदान किए जाने तक अच्छा आचरण बनाए रखने की शर्त पर राज्य द्वारा अधिकृत किसी संस्था के पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण में रखा जाता है।

उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती पूनम लता बनाम वाधवान तथा अन्य के वाद में पैरोल के विषय में अभिकथन किया कि यह कारा वासियों के सुधार की प्रक्रिया का एक प्रमुख अंग है जो किसी भी बंदी को यह सुअवसर प्रदान करता है कि वह अपने आचरण को सुधार कर एक सामान्य नागरिक के रूप में पुनर्स्थापित होने का प्रयास करे।

अवतार सिंह बनाम हरियाणा राज्य के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि सामान्यतः किसी कैदी को पैरोल पर छोड़ना एक प्रशासनिक कार्य है क्योंकि इसके अंतर्गत उसे अस्थाई रूप से कारागार की अभिरक्षा से मुक्त किया जाता है जो उसके निरोध की अवधि को निलंबित नहीं करता अपितु उसे कारागार से सशर्त मुक्ति दिला देता है और इस प्रकार वह दंड भोगने का एक परिवर्तित साधन मात्र है।

पैरोल और अनियत दंडादेश में अंतर

पैरोल और अनियत दंडादेश आपस में संबंध रखते हैं किंतु ये एक–दूसरे से भिन्न हैं। अनियत दंडादेश में न्यायालय द्वारा दोषी पाए गए अपराधी के लिए अधिकतम और न्यूनतम दंड की सीमा निर्धारित की जाती है और इस अवधि में किसी भी समय बंदी को रिहा करने का अधिकार पैरोल बोर्ड या कारागार के पदाधिकारियों के पास होता है। पैरोल बोर्ड कारागार में बंदी के आचरण तथा व्यवहार के आधार पर निश्चित करता है कि उसे अधिकतम दंड की अवधि से पूर्व किस समय कारागार से मुक्त कर दिया जाए। इस प्रकार अनियत दंडादेश बंदी को पूर्ण रूप से बिना किसी शर्त के कारागार से रिहा कर दिया जाता है जबकि पैरोल के अंतर्गत बंदी की मुक्ति इस शर्त के साथ होती है कि यदि वह शर्तों का उल्लंघन करता है तो उसे पुनः कारागार वापस भेज दिया जाएगा।

अनियत दंडादेश एक न्यायिक प्रक्रिया है क्योंकि इसका निर्धारण न्यायालय द्वारा किया जाता है जबकि पैरोल एक अर्ध न्यायिक प्रक्रिया है क्योंकि निर्णय पैरोल बोर्ड की अनुशंसा पर निर्भर करता है।

पैरोल तथा परिवीक्षा में अंतर

पैरोल और परिवीक्षा दोनों ही अपराधियों की वैयक्तिक उपचार पद्धति पर आधारित हैं और दोनों ही अपराधी का मार्गदर्शन तथा सहायता की व्यवस्था करती हैं किंतु दोनों अनेक रूप से भिन्न भी हैं।

परिवीक्षा पद्धति का प्रारंभ लगभग सन 1841 में अमेरिका में हुआ जबकि पैरोल पद्धति अनेक वर्षों बाद सन् 1900 के लगभग अस्तित्व में आई।

परिवीक्षा को दंड का निलंबन कहा जा सकता है और पैरोल उस कारावासी को दिया जाता है जिसने अपने दंड का कुछ भाग या लगभग एक तिहाई भाग कारागार में काट लिया हो और स्वयं को सुधार योग्य साबित कर लिया हो।

टिप्पणी

किसी अपराधी को दंड के विकल्प में परिवीक्षा का लाभ देना पूर्ण रूप से न्यायालय के स्वविवेक पर आधारित है अतः यह एक न्यायिक प्रक्रिया है जबकि किसी दंड काट रहे का कारावासी को पैरोल पर छोड़ने का निश्चय पैरोल बोर्ड द्वारा किया जाता है अतः यह एक अर्ध न्यायिक प्रक्रिया है।

किसी भी बंदी के संदर्भ में परिवीक्षा को उपचारात्मक योजना का प्रथम चरण माना जाता है और पैरोल को उसी उपचार पद्धति का अंतिम चरण कहा जा सकता है।

भारत में पैरोल व्यवस्था

भारत में कारागारों का सुधार स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राजनीतिक कैदियों की समस्या को सुलझाने के लिए हुआ था। स्वतंत्रता आंदोलन के कारण देश के प्रमुख नेता जेल में बंद रहे और उनका ध्यान कारागार प्रशासकों द्वारा कैदियों के प्रति किए जा रहे अत्याचारों तथा अमानवीय व्यवहार की ओर आकर्षित हुआ जिन की प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने जेलों की स्थिति तथा बंदियों के साथ हो रहे कठोर व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाई तब जेल प्रशासन को कारागार की दशा सुधारने हेतु सुधार कार्यक्रम प्रारंभ करना आवश्यक हो गया।

भारत में कारागारवासियों को पैरोल पर रिहा करने का कार्य पैरोल बोर्ड द्वारा किया जाता है जिसके सदस्य समाज के गणमान्य व्यक्ति होते हैं।

पैरोल बोर्ड एक महत्वपूर्ण कार्य करता है जिसमें पैरोल से पहले एक पूर्ववृत तैयार किया जाता है जिसमें पैरोल पर छोड़े जाने वाले बंदी के कारागार में व्यवहार तथा उसके पुनर्वास हेतु प्रस्तावित उपायों का उल्लेख होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. किस प्रणाली के द्वारा कैदियों का पुनर्वास तथा समाज में पुनर्स्थापन प्रभावी रूप से किया जा सकता है?

   (क) सुधार (ख) सुरक्षा

   (ग) पैरोल (घ) परिवर्तन

4. भारत में कारागारवासियों को पैरोल पर रिहा करने का कार्य किसके द्वारा किया जाता है?

   (क) जेलर (ख) राष्ट्रपति

   (ग) जज (घ) पैरोल बोर्ड

5.4 खुली जेल

एंग्लो अमेरिकन दंड शास्त्रियों ने यह कहा कि सामान्य अपराधियों को दंड दिए जाने के स्थान पर रचनात्मक पुनर्वास द्वारा समाज में पुनर्स्थापित करना चाहिए। परिवीक्षा, पैरोल, अनियत दंड, किशोर न्याय बोर्ड आदि उपचारात्मक प्रक्रियाएं हैं जिनके अच्छे परिणाम मिले हैं। इनके अतिरिक्त कैदियों के लिए खुली जेल की स्थापना भी की गई

है। इन खुले शिविरों में कारावासी को निर्माण स्थल, औद्योगिक प्रतिष्ठान, कृषि फार्म आदि में कार्यरत किया जाता है।

टिप्पणी

खुली जेल की परिभाषा

सन 1959 में उत्तर प्रदेश के जेल महानिरीक्षक डॉ. सीपी टंडन ने खुले कारागार की परिभाषा इस प्रकार दी थी– "इसमें दीवारें, सशस्त्र गार्ड, बंदूकें आदि सुरक्षात्मक उपायों का न्यूनतम प्रयोग किया जाता है जिससे बंदी को यथासंभव स्वतंत्रता उपलब्ध हो। यह व्यवस्था बंदियों के आत्म अनुशासन और साथी बंदियों के प्रति उनके उत्तरदायित्व पर आधारित होती हैं। खुले कारागार के बंदी स्वयं को समाज से जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं और कारावासी जीवन के तनाव से मुक्त रहते हैं।"

यह पद्धति परस्पर सहयोग एवं विश्वास पर आधारित है और इसी कारण इसमें बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहती।

भारत में खुले कारागार शिविर

भारतीय कारागारों के आधुनिकीकरण की दिशा में प्रथम प्रयास सन 1952 में प्रारंभ हुआ। सर वॉल्टर रेकलेस जो कि राष्ट्र संघ के तकनीकी विशेषज्ञ थे उन्होंने भारतीय कारागारों के विषय में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके परिणामस्वरूप अखिल भारतीय जेल समिति गठित की गई जिसने 3 वर्षों के प्रयास करने के बाद कारागारों के सुधार संबंधी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति के सुझावों में एक सुझाव यह भी था कि भारत में कारागारवासियों पर न्यूनतम भौतिक और शारीरिक निरोध रखते हुए उनमें आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास को जागृत करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

खुले कारागार शिविरों में कारागारवासियों से काम कराने जाने के पीछे मूल भावना यही थी कि ऐसे बंदियों के प्रति अविश्वास की भावना मिट सके और वे खुले वातावरण में काम कर सकें।

इस श्रम कार्य का प्रयोजन कारावासियों को उपयोगी तथा सार्थक काम में लगाने का था, न कि अपमानजनक मेहनत करवाने का जिससे कि वे रिहाई के बाद सम्मानजनक जीवन के लिए तैयार हो सकें।

खुले कारागार शिविर की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं–

1. कारावासियों को छोटे समूहों में रखकर अनौपचारिक संस्थागत जीवन के लिए तैयार करना और न्यूनतम सुरक्षा और अभिरक्षा के उपायों को प्रयोग में लाना।
2. बंदियों के मन में सामाजिक दायित्व के प्रति जागृति पैदा करना।
3. कारावासियों के लिए कृषि तथा अन्य व्यवसायों का प्रशिक्षण देना।
4. कारावासियों को परिवार एवं सगे संबंधियों से मेल के अधिक अवसर उपलब्ध कराना जिससे कि वे अपनी पारिवारिक समस्याओं पर विचार कर सकें और परिवार से उनका संपर्क न टूटे।
5. शिविर में अच्छे आचरण के लिए उन्हें छूट देना।
6. शिविर में उनके स्वास्थ्य तथा मनोरंजन का उचित ध्यान रखना।
7. शिविरों की प्रबंध व्यवस्था का संचालन प्रशिक्षित अधिकारियों द्वारा किया जाना।

टिप्पणी

8. शिविरों में उचित भोजन व्यवस्था तथा बीमार एवं कमजोर कारावासियों के लिए सुविधा।
9. कारावासियों द्वारा किए गए श्रम के बदले उन्हें पारिश्रमिक का भुगतान करना और इस पारिश्रमिक का कुछ हिस्सा उनके परिवारजनों को भेज देने की व्यवस्था करना।
10. बैंक ऋण इत्यादि के रूप में वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।

कारागार से संबंधित शब्दों के स्थान पर परिमार्जित शब्दों का प्रयोग करना जिससे कि बंधुओं को कारागार के साथ जुड़े अपमानजनक वातावरण का एहसास न हो। उदाहरण के लिए शिविरों में कारावासियों को कैदी या बंदी न कहकर अंतःवासी कहा जाता है। इसी प्रकार वार्डन को पर्यवेक्षक कहा जाता है और कारागृह को खुले शिविर कहा जाता है।

खुले शिविरों की कार्य व्यवस्था परिवीक्षा और पैरोल के सिद्धांतों पर ही आधारित है जो कि आधुनिक दंडशास्त्र में उपचारात्मक पद्धति के सर्वोत्तम तरीके माने गए हैं।

भारत में खुले कारागारों का प्रारंभ उत्तर प्रदेश राज्य में हुआ। उत्तर प्रदेश में सन् 1952 में तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ संपूर्णानंद की पहल पर बनारस की चकिया तहसील में प्रथम अस्थाई बंदी शिविर लगाया गया।

शिविर में ले जाने से पूर्व बंदियों को बनारस जेल में प्रशिक्षण दिया गया। इसमें 21 से 50 वर्ष तक की आयु के अच्छे आचरण वाले बंदियों को रखा गया। इस शिविर में लगभग 3000 बंदी न्यूनतम निगरानी में रखे गए थे। इस बंदी शिविर में प्रत्येक 30 बंदियों पर एक निशस्त्र रक्षक की व्यवस्था थी। बंदियों के प्रति सहानुभूति और विश्वास की भावना रखी जाती थी ताकि उन्हें स्वच्छंद विचरण की छूट हो। उन्हें अवकाश पर घर जाने की सुविधा भी उपलब्ध थी। इस शिविर का 3 अक्टूबर, 1953 को समापन हो गया।

अपनी प्रगति जांचिए

5. खुले कारागार के बंदी स्वयं को किससे जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं?
   (क) समाज से (ख) घर से
   (ग) परिवार से (घ) विद्यालय से
6. भारत में खुले कारागारों का आरंभ किस राज्य में हुआ?
   (क) गुजरात (ख) राजस्थान
   (ग) मध्य प्रदेश (घ) उत्तर प्रदेश

5.5 पश्च देखभाल और पुनर्स्थापन

'पश्च देखभाल' शब्द सुधारात्मक संस्थानों से रिहा किए गए कैदियों के पुनर्वास के लिए आयोजित कार्यक्रम और सेवाओं को संदर्भित करता है। यह एक संस्थान में रहने और उपचार की अवधि का अनुमान लगाता है जो सुधारक, प्रमाणित स्कूल, बोर्स्टल या जेल

हो सकता है। चूंकि पूर्व के दो संस्थान भी कुछ राज्यों में गैर–अपराधी को स्वीकार करते हैं, इसलिए एक कैदी का मतलब एक अपराधी नहीं है। इसमें उपेक्षित या अनियंत्रित बच्चों के साथ–साथ नैतिक खतरे में या अन्यथा निराश्रित महिलाएं भी शामिल हैं जो अदालत के आदेश के तहत सुधारात्मक या सुरक्षात्मक संस्थानों में प्रतिबद्ध और हिरासत में हैं। पश्च देखभाल का उद्देश्य किसी संस्था से छूटने के बाद समाज में एक पूर्व कैदी का पूर्ण पुर्नएकीकरण और पुनर्वास है ताकि उसे अपराध या निर्भरता के जीवन में फिर से आने से रोका जा सके।

समय बीतने के साथ पश्च देखभाल की अवधारणा व्यापक हो गई है और अब शारीरिक या सामाजिक अक्षमताओं से पीड़ित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए किए गए उपाय भी इसके दायरे में आते हैं।

सेंट्रल सोशल वेलफेयर बोर्ड द्वारा प्रायोजित एडवाइजरी कमेटी ऑन आफ्टरकेयर की रिपोर्ट बताती है कि पश्च–देखभाल सेवाओं को न केवल पूर्व–कैदियों के लिए बल्कि शारीरिक या सामाजिक बाधाओं से पीड़ित लोगों के लिए भी विस्तारित किया जाना चाहिए। इस प्रकार, अनाथ, अंधे, बहरे, गूंगे, अपंग व्यक्ति, उपेक्षित और निराश्रित बच्चे, परित्यक्त और असहाय महिलाएँ और भिखारी सभी को संस्थागत और गैर संस्थागत देखभाल दोनों का लाभ प्राप्त करना चाहिए क्योंकि वे अपने नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण दयनीय दुर्दशा में हैं। और इस तरह सामाजिक सुरक्षा और सहायता के पात्र हैं। चीजों की प्रकृति से, निराश्रितों की प्रत्येक श्रेणी को अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त एक अलग सेवा की आवश्यकता होगी।

इस प्रकार 'पश्च देखभाल' को किसी भी कार्यक्रम या सेवाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो (ए) संस्थानों से रिहा किए गए कैदियों या (बी) शारीरिक या सामाजिक बाधाओं से पीड़ित व्यक्तियों के नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण पुनर्वास के लिए आयोजित किया जाता है। यह स्वैच्छिक है जब निर्वासित या निराश्रित अपनी स्वतंत्र इच्छा से इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। यह अनिवार्य है जहां कानून एक पूर्व कैदी या एक बेसहारा व्यक्ति के लिए आफ्टरकेयर संगठन की देखरेख में आने के लिए अनिवार्य बनाता है। भारत में आफ्टरकेयर अनिवार्य नहीं है क्योंकि किसी पूर्व कैदी या निराश्रित व्यक्ति के लिए आफ्टरकेयर संस्थान द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं को स्वीकार करने के लिए कोई कानूनी बाध्यता नहीं है। हालाँकि, यूनाइटेड किंगडम में स्थिति भिन्न है जहाँ कानून कुछ श्रेणियों के अपराधियों के लिए अनिवार्य पश्च–देखभाल का प्रावधान करता है। यह अध्ययन केवल कारागारों और सुधारक संस्थानों के बंदियों की देखभाल तक ही सीमित है।

आमतौर पर यह सराहना नहीं की जाती है कि अपराध के लिए सजा सजा देने के साथ समाप्त नहीं होती है। एक आपराधिक रिकॉर्ड एक आजीवन बाधा है, खासकर उन समाजों में जो मोबाइल नहीं हैं। इस प्रकार एक ग्रामीण परिवेश में एक पूर्व–दोषी को अधिक गतिशील शहरी समाज में अपने समकक्ष द्वारा झेले गए कलंक की तुलना में अधिक गंभीर कलंक का सामना करना पड़ता है। उसकी रिहाई के तुरंत बाद एक पूर्व कैदी को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। समाज की मुख्य धारा में उसके पुनः समाहित होने की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं का कुछ विस्तार से परीक्षण करना उचित होगा। ये बाधाएं इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

(1) सामाजिक कलंक

(2) नागरिक अधिकारों का नुकसान

(3) पुलिस द्वारा निगरानी

(4) रोजगार प्राप्त करने में कठिनाइयाँ

(5) समायोजन में मनोवैज्ञानिक कठिनाइयाँ

मुक्ति से पहले के उपाय

आमतौर पर इस बात पर सहमति होती है कि रिहा किए गए कैदियों की पश्च देखभाल सोसाइटी द्वारा सहायता जेल में शुरू होनी चाहिए जिससे ऐसी सोसायटी के सदस्यों को अपने ग्राहकों से परिचित होने का अवसर मिल सके; कि इस तरह की सहायता मुक्त होने पर जारी रहनी चाहिए और इसमें नैतिक और भौतिक सहायता शामिल होनी चाहिए जो एक नौकरी में परिणत हो।

यदि सजा का उद्देश्य कैदी का सुधार है, तो उसके संस्थान में प्रवेश करने के तुरंत बाद सुधारात्मक उपाय अपनाए जाने चाहिए। इनमें से कुछ उपाय इस प्रकार हैं–

1. स्वस्थ परिवेश और मनोरंजन
2. शिक्षा
3. व्यावसायिक प्रशिक्षण
4. धार्मिक निर्देश

पश्च देखभाल संस्थानों के कार्य

इन संस्थानों को रिहा किए गए कैदी को हर तरह की मदद देनी होती है, जिसके परिणामस्वरूप उसका अंतिम पुनर्समायोजन और समाज में पुनर्वास होता है। आफ्टरकेयर कार्यकर्ता को कैदी की रिहाई से पहले उसके साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए और उसकी जरूरतों के अनुसार तैयारी शुरू करनी चाहिए। पश्च देखभाल के विभिन्न पहलू जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है वे हैं–

1. कानूनी सहायता
2. सामाजिक एकीकरण और परिवार कल्याण
3. विवाह
4. वस्त्र, भोजन और आश्रय
5. लड़कियों और बच्चों के लिए विशेष घर
6. रोजगार
7. शैक्षिक अवसर
8. मनोरंजन सुविधाएं
9. कृषि की आधुनिक तकनीकों में प्रशिक्षण सहित अतिरिक्त व्यावसायिक प्रशिक्षण
10. वित्तीय सहायता

पुनर्स्थापन

टिप्पणी

सुधार सीमाओं तथा कारागार प्रशासन का उद्देश्य कारावासियों को पुनर्वासित करके समाज में मुख्यधारा में शामिल करना है।

पुनर्स्थापन का कार्य बंदियों की कारवास से रिहाई के पश्चात उत्तर वीक्षा द्वारा सुचारु रूप से किया जाता है। जिससे कारावास के मुक्त हुए बंदियों को सामाजिक प्रताड़ना, तिरस्कार तथा बहिष्कार की समस्या से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है।

वे अपने अतीत को भूल कर एक बार फिर से सामान्य नागरिक जीवन बिताने की ओर अग्रसर होते हैं। कारागार प्रशासन को बंदियों के पुनर्वास में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह समस्याएं अनेक रूप में होती हैं जैसे कि–

1. कारावास में उपयुक्त वर्गीकरण न होने के कारण किस कारावासी को कौनसी उपचार पद्धति से उपचार किया जाए इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होने से पुनर्वास के कार्य में कठिनाई आती है।
2. कारागार प्रशासन को इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि बंदी के लिए कारागार में रहना अपने आप में एक कष्टप्रद अनुभव होता है, अतः जेल में यातनाएं देना या प्रताड़ित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होता।
3. विधि द्वारा भी निरुद्ध व्यक्तियों को यातना देना निषिद्ध ही नहीं बल्कि एक गंभीर अपराध भी माना गया है।
4. अधिकांश बंदी अशिक्षित या अर्ध शिक्षित या कुशलता हीन होते हैं। इस कारण उनके उचित रोजगार या व्यवसायिक प्रशिक्षण का उचित प्रबंध होना चाहिए जिससे रिहाई के बाद रोजगार प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती हो।
5. कुछ अच्छे बंदियों के लिए अर्थ दंडात्मक तरीके जैसे फर्लो, पैरोल, सजा में कटौती अथवा क्षमा दान उनके पुनर्वास में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।
6. ऐसे बंदी जो आगे पढ़ाई करना चाहते हैं उनके लिए शैक्षणिक साधन जैसे कि वाचनालय, पुस्तकालय, शिक्षक, परीक्षा में सम्मिलित होने की सुविधा इत्यादि उपलब्ध कराई जानी चाहिए इस दिशा में IGNOU कैसे मुक्त विश्वविद्यालय और संस्थान सहायतार्थ होते हैं।
7. अर्ध संस्थागत सुविधाएं जैसे कि दिन में श्रम कार्य के लिए भेजना या पढ़ाई के लिए भेजना या सामुदायिक सेवा में भेजना बंदियों के पुनर्वास के दृष्टिकोण से उपयुक्त है।
8. सुनील बत्रा II के वाद में उच्चतम न्यायालय ने बंदियों की सुधारात्मक चिकित्सा के संदर्भ में विशेष रूप से तीन बातों पर ध्यान दिए जाने पर बल दिया है–
   - अभिरक्षा ज्ञान विरोध के कारण संबंधित व्यक्ति का व्यक्तित्व समाप्त नहीं हो जाता।
   - कारवासी भी मानवाधिकार के अधिकार रखते हैं।
   - कारावधि में बंदियों को प्रताड़ित करना या यातना पहुंचाना प्रतिबंधित है।

अतः कारावास व्यवस्था को इस प्रकार बनाना चाहिए कि सुधार के इच्छुक कारावासी वहां सामान्य जीवन बिता सकें और उन्हें अपराधियों के दूषित संपर्क से बचाकर पुर्स्थापन की ओर अग्रसर करना चाहिए।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. कौन–सा शब्द सुधारात्मक संस्थानों से रिहा किए गए कैदियों के पुनर्वास के लिए आयोजित कार्यक्रम और सेवाओं को संदर्भित करता है?

(क) सहयोग (ख) सहारा

(ग) पश्च देखभाल (घ) निगरानी

8. समय बीतने के साथ पश्च देखभाल की अवधारणा कैसी हो गई है?

(क) असरहीन (ख) बेकार

(ग) धूमिल (घ) व्यापक

5.6 पीड़ितशास्त्रीय दृष्टिकोण

पीड़ितों को अपराध क्षतिपूर्ति में पीड़ित का उत्तरदायित्व (Victim's Responsibility in Crime Compensation to Victims): दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में सन् 2008 के पूर्व 'अपराध पीड़ित' की परिभाषा भी उल्लेखित नहीं थी तत्पश्चात उत्पीड़न शास्त्र को अपराध शास्त्र की एक मुख्य शाखा का स्थान दिया गया और आपराधिक न्याय प्रशासकों को अपराध पीड़ितों की समस्या तथा उनके विधिक अधिकारों की संरक्षा का दायित्व भी सौंपा गया।

जिस व्यक्ति के प्रति कोई अपराध घटित होने के परिणामस्वरूप उसे क्षति या हानि होती है या शारीरिक, मानसिक या आर्थिक नुकसान होता है या यदि ऐसा व्यक्ति कोई संस्थागत इकाई है तो उसके अधिकृत प्रतिनिधि या समूह को इसी तरह कोई नुकसान भुगतना पड़ता है या उसे सिविल या संविधानिक विधि के अधीन आपराधिक न्याय व्यवस्था के अंतर्गत सहायता के लिए पात्र माना गया हो ऐसे व्यक्ति को अपराध पीड़ित व्यक्ति कहा जाता है।

दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 2 (wa) में अपराध पीड़ित को परिभाषित किया गया है जिसके अनुसार, "पीड़ित से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो अभियुक्त के किसी कृत्य या कार्यलोप, जिसके लिए आरोपित है, के कारण क्षतिग्रस्त हुआ है या उसे हानि हुई है और इसमें उसका संरक्षक या विधिक उत्तराधिकारी सम्मिलित है।"

भारतीय दाण्डिक न्याय प्रणाली में अपराध से पीड़ित व्यक्ति के अधिकारों या उपचार के लिए कोई विधिक प्रावधान नहीं था। भारत में लोकहित वादों के उद्भव के कारण उच्चतम न्यायालयों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और सक्रिय सामाजिक जनसेवियों ने लोकहित याचिका के माध्यमों से पीड़ित व्यक्तियों को अपराधी से या सरकार से प्रतिकर दिलवाने के लिए मांग करना आरंभ कर दिया जिसे उचित मानते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक सक्रियता का अवलंबन करके अपराध पीड़ितों को अपराध से हुई क्षति या हानि के लिए उचित मुआवजा दिए जाना न्यायोचित मान लिया गया। इस प्रकार पीड़ितों के वैधानिक अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्रदान करने का श्रेय लोकहितवाद की प्रक्रिया को दिया जाता है जो भारत में 1980 के दशक में प्रारंभ हुई।

टिप्पणी

औद्योगिक इकाइयों में घटने वाली त्रासदी, मोटरयान दुर्घटना के कारण मृत्यु या अपंगता नियोजन के दौरान कर्मकार की दुर्घटना के कारण क्षति, लोक दायित्व बीमा योजना के अंतर्गत प्रतीकात्मक अनुतोष अनेक विशिष्ट अधिनियम के अंतर्गत पूर्व से ही उपलब्ध थे। किंतु अपराध से क्षतिग्रस्त हुए पीड़ित को आपराधिक विधि के अंतर्गत इस प्रकार का वैधानिक उपचार या अनुतोष उपलब्ध नहीं था जिसे सन् 2008 में दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में एक नई धारा 357A को जोड़कर विधिक मान्यता दी गई। इस धारा के अंतर्गत अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकर की योजना लागू की गई।

5.6.1 धारा 357 A अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकर योजना

1. प्रत्येक राज्य सरकार केंद्रीय सरकार के साथ मिलकर ऐसे अपराध पीड़ितों या उनके आश्रितों को जिन्हें अपराध के कारण हानि या क्षति पहुंची है और जिन्हें पुनर्वास की आवश्यकता है, प्रतिकर के प्रयोजन के लिए निधियां उपलब्ध कराने हेतु एक योजना तैयार करेगी।
2. आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय द्वारा प्रतिकर के लिए अनुशंसा की जाएगी तब जिला विधिक सेवा प्राधिकरण या राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण यथास्थिति उप धारा (1) में निर्दिष्ट योजना के अधीन दिए जाने वाले प्रतिकर की मात्रा का विनिश्चय करेगा।
3. यदि विचारण की समाप्ति पर विचारण न्यायालय का समाधान हो जाता है कि धारा 357 के अधीन अधिनिर्णीत प्रतिकर ऐसे पुनर्वास के लिए पर्याप्त नहीं है या जहां पर दोषमुक्ति या उन्मोचन पर मामला समाप्त हो जाता है और पीड़ित को पुनर्वासित करना है वहां वह प्रतिकर के लिए अनुशंसा कर सकेगा।
4. जहां अपराध का पता नहीं चल पाता या उसकी पहचान नहीं हो पाती परंतु पीड़ित या पीड़ित के आश्रितों को प्रतिकर दिए जाने के लिए राज्य या जिला विधिक सेवा प्राधिकरण यथास्थिति को आवेदन कर सकते हैं।
5. उप धारा 4 के अधीन ऐसी अनुशंसा या आवेदन पत्र प्राप्त होने पर राज्य या जिला विधिक सेवा प्राधिकरण सम्यक जांच करने के पश्चात 2 माह के अंदर जांच पूरी करके पर्याप्त प्रतिकर अधिनिर्णीत करेगा।
6. राज्य या जिला विधिक सेवा प्राधिकरण यथास्थिति पीड़ित की यातना को कम करने के लिए पुलिस थाने के भार साधक से अन्यून पंक्ति के पुलिस अधिकारी या संबंद्ध क्षेत्र के मजिस्ट्रेट के प्रमाण पत्र पर निशुल्क उपलब्ध कराई जाने वाली प्रथम सहायता सुविधा या चिकित्सीय प्रसुविधाओं या अन्य अंतरिम अनुतोष जिसे समुचित अधिकरण ठीक समझें के लिए तुरंत आदेश कर सकता है।

न्यायिक सक्रियता द्वारा अपराध पीड़ित को प्रतिकर

आपराधिक न्याय व्यवस्था में अपराध पीड़ितों की उपेक्षा के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर ने कहा था कि "भारत में दंड विधि पीड़ित व्यक्ति मूलक नहीं है जिसके कारण अपराध पीड़ितों की अनगिनत व्यथा, वेदना तथा पीड़ा की इस कारण अनदेखी की जाती है क्योंकि न्याय व्यवस्था में अपराधी के प्रति अपनिहित सहानुभूति दर्शाई गई है।"

टिप्पणी

राष्ट्र संघ द्वारा भी अपराध पीड़ितों के अधिकार तथा पुनर्स्थापन संबंधी घोषणा पत्र में भी अपराधी और पीड़ित पक्षकार के मध्य आपसी वार्तालाप एवं समझौते द्वारा पीड़ितों की व्यथा के निवारण तथा प्रतिकर विनिश्चित किए जाने पर बल दिया है।

5.6.2 अपराध पीड़ितों को प्रतिकरात्मक अनुतोष

भारत में अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकारात्मक अनुतोष का ढांचा दंड प्रक्रिया संहिता 1973, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 तथा मोटरयान अधिनियम 1988 में रेखांकित किया गया है।

इसके अतिरिक्त अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकर की संविधानिक योजना उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक निर्णयों में भी प्रतिबिंबित होती है।

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 32, 136 एवं 142 के अंतर्गत याचिकाओं पर दिए गए अपने निर्णयों में अपराधी या सरकार या दोनों को निदेशित किया है कि वे अपराध पीड़ित को क्षतिपूर्ति के रूप में एक धनराशि का प्रतिकर के रूप में भुगतान करें इसी प्रकार प्रतिकर मूल अधिकारों या नीति निदेशक सिद्धांतों के निर्वाचन संबंधी प्रकरणों में न्यायालय द्वारा आदेशित किया गया है।

अपराध पीड़ितों को दिए जाने वाले प्रतिकर से जुड़े एक मामले में डी. के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि– "अपराध के कारण अपराध पीड़ितों के मूल अधिकार के हनन या उल्लंघन के लिए धनीय प्रतिकार संभवतः एकमात्र उचित एवं प्रभावी उपाय है।"

अपनी प्रगति जांचिए

9. दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में किस वर्ष के पूर्व 'अपराध पीड़ित' की परिभाषा उल्लेखित नहीं थी?

   (क) 2008 (ख) 2007

   (ग) 2009 (घ) 2000

10. पीड़ितों के वैधानिक अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्रदान करने का श्रेय किसे दिया जाता है?

    (क) समाज को (ख) लोकहित वाद की प्रक्रिया को

    (ग) न्यायालय को (घ) जनता को

5.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (घ)
5. (क)

टिप्पणी

6. (घ)
7. (ग)
8. (घ)
9. (क)
10. (ख)

5.8 सारांश

प्रोबेशन अथवा परिवीक्षा शब्द की उत्पत्ति एक लैटिन शब्द 'प्रोबेर' से हुई है इस शब्द का अर्थ है परीक्षा लेना या अपनी विश्वसनीयता को साबित करना।

परिवीक्षा के अंतर्गत अपराधी को जेल भेजने के स्थान पर सुधार के लिए समाज में ही उचित मार्गदर्शनशास्त्र और देखरेख में रखा जाता है जिससे कि वह सदाचारी बन सके। यदि परिवीक्षाधीन अपराधी परिवीक्षा की अवधि में पर्यवेक्षक की किसी भी शर्त का उल्लंघन करता है या कोई अन्य अपराध करता है तो उसे बंदी बनाकर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है जहां उसे दण्ड सुना कर जेल भेजने की प्रक्रिया शुरू की जाती है।

परिवीक्षा व्यवस्था दो तरीके से क्रियान्वित की जाती है, न्यायालय द्वारा अपराधी का दंड निर्धारित करने के बाद उसे परिवीक्षा पर छोड़ा जा सकता है या फिर उसका दंड निर्धारित किए बिना ही उसे परिवीक्षा के अधीन रखे जाने का आदेश दिया जाता है।

इस प्रकार परिवीक्षा में या तो दंड निर्धारित करने पर रोक लगा दी जाती है और यदि दंड निर्धारण किया जा चुका है तो उसका क्रियान्वयन निलंबित किया जाता है और अपराधी को सशर्त या बिना शर्त समाज में अच्छा व्यवहार करने की शर्त के साथ छोड़ दिया जाता है।

आधुनिक दण्डशास्त्र में कैदियों की सुधारात्मक संस्था के रूप में पैरोल सर्वाधिक स्वीकार्य पद्धति मानी जाती है।

पैरोल प्रणाली के द्वारा कैदियों के पुनर्वास तथा समाज में पुनर्स्थापन प्रभावी रूप से किया जा सकता है। इसका एक परिणाम और भी है कि पैरोल के कारण कारागार में कैदियों की भीड़ कम रखने में भी सहायता मिलती है। वर्तमान समय में पैरोल अपराधियों के प्रति समाज के बदले हुए रुझान का प्रतीक है।

जे. एल. गिलिन ने पैरोल की परिभाषा इस प्रकार दी है कि पैरोल किसी अपराधी की दांडिक या सुधार संस्था से ऐसी मुक्ति है जिसके अंतर्गत उस अपराधी को किसी उपचारात्मक प्राधिकारी के नियंत्रण में रखा जाता है जिससे यह पता लगाया जा सके कि वह बिना निगरानी के समाज में विचरने योग्य है या नहीं।

डॉनल्ड टेफ्ट के अनुसार पैरोल को अपराधी की मुक्ति का ऐसा साधन माना गया है जिसमें उस पर कुछ नियंत्रण बना रहने पर भी उसे समाज में सामान्य सामाजिक संबंध स्थापित करने की छूट दी जाती है और उसके पुनर्वास में रचनात्मक सहायता भी की जाती है।

टिप्पणी

सदरलैंड के मत में पैरोल एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत कारावासी द्वारा किसी दाण्डिक संस्था या सुधार गृह में दंड की अधिकतम अवधि का कुछ हिस्सा व्यतीत कर लेने के पश्चात उसे पूर्ण मुक्ति प्रदान की जाने तक अच्छा आचरण बनाए रखने की शर्त पर राज्य द्वारा अधिकृत किसी संस्था के पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण में रखा जाता है।

एंग्लो अमेरिकन दंड शास्त्रियों ने यह कहा कि सिद्धेश अपराधियों हेतु उद्देश्य रहे थे कि दंड दिए जाने के स्थान पर रचनात्मक पुनर्वास द्वारा समाज में पुनर्स्थापित करना चाहिए। परिवीक्षा, पैरोल, अनियत दंड, किशोर न्याय बोर्ड आदि उपचारात्मक प्रक्रियाएं हैं जिनके अच्छे परिणाम मिले हैं। इनके अतिरिक्त कैदियों के लिए खुली जेल की स्थापना भी की गई है। इन खुले शिविरों में कारावासी को निर्माण स्थल, औद्योगिक प्रतिष्ठान, कृषि फार्म आदि में कार्यरत किया जाता है।

सन 1959 उत्तर प्रदेश के जेल महानिरीक्षक डॉ सीपी टंडन ने खुले कारागार की परिभाषा इस प्रकार दी थी– इसमें दीवारें, सशस्त्र गार्ड, बंदूकें आदि सुरक्षात्मक उपायों का न्यूनतम प्रयोग किया जाता है जिससे बंदी को यथासंभव स्वतंत्रता उपलब्ध हो। यह व्यवस्था बंदियों के आत्म अनुशासन और साथी बंदियों के प्रति उनके उत्तर दायित्व पर आधारित होती हैं। खुले कारागार के बंदी स्वयं को समाज से जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं और कारावासी जीवन के तनाव से मुक्त रहते हैं।

यह पद्धति परस्पर सहयोग एवं विश्वास पर आधारित है और इसी कारण इसमें बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहती।

'पश्च देखभाल' शब्द सुधारात्मक संस्थानों से रिहा किए गए कैदियों के पुनर्वास के लिए आयोजित कार्यक्रम और सेवाओं को संदर्भित करता है। यह एक संस्थान में रहने और उपचार की अवधि का अनुमान लगाता है जो सुधारक, प्रमाणित स्कूल, बोर्स्टल या जेल हो सकता है। चूंकि पूर्व के दो संस्थान भी कुछ राज्यों में गैर–अपराधी को स्वीकार करते हैं, इसलिए एक कैदी का मतलब एक अपराधी नहीं है। इसमें उपेक्षित या अनियंत्रित बच्चों के साथ–साथ नैतिक खतरे में या अन्यथा निराश्रित महिलाएं भी शामिल हैं जो अदालत के आदेश के तहत सुधारात्मक या सुरक्षात्मक संस्थानों में प्रतिबद्ध और हिरासत में हैं। पश्च देखभाल का उद्देश्य किसी संस्था से छूटने के बाद समाज में एक पूर्व कैदी का पूर्ण पुर्नएकीकरण और पुनर्वास है ताकि उसे अपराध या निर्भरता के जीवन में फिर से आने से रोका जा सके।

दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में सन् 2008 के पूर्व 'अपराध पीड़ित' की परिभाषा भी उल्लेखित नहीं थी तत्पश्चात उत्पीड़न शास्त्र को अपराध शास्त्र की एक मुख्य शाखा का स्थान दिया गया और आपराधिक न्याय प्रशासकों को अपराध पीड़ितों की समस्या तथा उनके विधिक अधिकारों की संरक्षा का दायित्व भी सौंपा गया।

जिस व्यक्ति के प्रति कोई अपराध घटित होने के परिणाम स्वरुप उसे क्षति या हानि होती है या शारीरिक, मानसिक या आर्थिक नुकसान होता है या यदि ऐसा व्यक्ति कोई संस्थागत इकाई है तो उसके अधिकृत प्रतिनिधि या समूह को इसी तरह कोई नुकसान भुगतना पड़ता है या उसे सिविल या संविधानिक विधि के अधीन आपराधिक न्याय व्यवस्था के अंतर्गत सहायता के लिए पात्र माना गया हो ऐसे व्यक्ति को अपराध पीड़ित व्यक्ति कहा जाता है।

टिप्पणी

5.9 मुख्य शब्दावली

- **आचरण** : व्यवहार।
- **दूषित** : गंदा।
- **उपचार** : इलाज, सुधार।
- **उल्लंघन** : विरुद्धाचरण, अतिक्रमण।
- **सेतु** : पुल।
- **विवश** : बेबस, लाचार।
- **अभ्यस्त** : आदी।
- **उपयुक्त** : उचित।
- **अनुतोष** : राहत।

5.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. परिवीक्षा शब्द की उत्पत्ति किस शब्द से हुई और इसका आशय क्या है?
2. परिवीक्षा की परिभाषा क्या है?
3. पैरोल की परिभाषा लिखिए।
4. खुले कारागार शिविर की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
5. अपराध पीड़ित व्यक्ति किसे कहते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. परिवीक्षा व्यवस्था कैसे क्रियान्वित की जाती है?
2. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 के मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश डालिए।
3. पैरोल और परिवीक्षा में अंतर स्पष्ट करते हुए भारत की पैरोल व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
4. पश्च देखभाल और पुनर्स्थापन की विवेचना कीजिए।
5. अपराध पीड़ितों के लिए प्रतिकर योजना की मुख्य बातों पर प्रकाश डालिए।

5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Taft, D. R. and R.W England. (1964).
2. *Criminology*. New York: Macmillan, 1958.
3. Fox, V. *Introduction to Criminology,* 2nd ed. New Jersey: Prentice Hall, 1985.
4. Sutherland, E.H. and D.R. Cressey. *Principles of Criminology,* 7th ed. Chicago: Lippincott, 1966.

टिप्पणी

5. Barnes, H. E. and N. K. Teeters. *New Horizons in Criminology.* New Jersey: Prentice Hall, 1959.
6. Ashworth Andrew and Mike Redmayne. *The Criminal Process.* USA: Oxford University Press.
7. Cross and Wilkins. *Outlines of the law of Evidence.* USA: Oxford University Press.
8. Hampton, Celia. *Criminal Procedure*. London: Sweet & Maxwell.
9. Lucia Zedner. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
10. Sanders Andrew, Richard Young and Mandy Burton. *Criminal Justice.* USA: Oxford University Press.
11. Sarkar M.C., S.C. Sarkar and Prabas C Sarkar. *Law of Evidence.* New Delhi: LexisNexis Publisher.
12. Moberly, Hamilton, Sir Walter. 1968. *The Ethics of Punishment*. Faber and Faber.
13. Shah, H. Jyotsna. 1973. *Probation Services in India.* N. M. Tripathi.
14. Bhattacharya, B. K. 1958. *Prisons*. S.C. Sarkar.
15. Cross, Rupert. 1981. *The English Sentencing System.* Butterworth (Publishers) Limited.
16. Stewart, S. W. 1969. *A Modern View of Criminal Law*. Pergamon Press.
17. Fitzgerald, John, Patrick. 1962. *Criminal Law and Punishment.* Clarendon Press.